गणितस्कन्ध

मध्यमाधिकार

प्रथम प्रकरण

ज्योतिषग्रन्थों का इतिहास और मध्यमगति इत्यादि

विषयोपक्रम

उपोद्घात मे बतलाये हुए क्रम के अनुसार अब इस द्वितीय भाग मे ज्योतिष-सिद्धान्तकालीन अर्थात् शकपूर्व लगभग ५०० वर्ष से लेकर आज तक के ज्योतिपशास्त्र का इतिहास लिखा जायगा। उसमे सर्वप्रथम गणितस्कन्ध के मध्यमाधिकार के प्रथम प्रकरण मे ग्रहगणितसम्बन्धी ग्रन्थो के इतिहास और मध्यमगति स्थिति इत्यादि का विवेचन करेगे।

प्रथम विभाग मे बतलाया हुआ वैदिककालीन और वेदाङ्गकालीन ज्योतिषज्ञान उस समय की दृष्टि से बहुत है, परन्तु ग्रहो की स्पष्टगतिस्थिति का ज्ञान कराने के लिए वह अपर्याप्त है। कुछ ग्रन्थ इन दोनो के मध्यवर्ती काल के भी होने चाहिए। कुछ सहिताग्रन्थ ऐसे होगे भी, परन्तु वे सम्प्रति उपलब्ध नही ह। हो तो भी मैने नही देखे हे। ज्योतिषसिद्धान्तकाल और उससे प्राचीन काल के ज्योतिपज्ञान का कुछ पारस्परिक सम्बन्ध दिखलाया जा सकता है। आगे उसका विवेचन किया भी जायगा, परन्तु इस बात का पता नही लगता कि ग्रहो की स्पष्टगतिस्थिति लाने की उच्चस्थिति तक ज्योतिषज्ञान क्रमश कैसे आया। प्राचीन लोगो ने वेध कैसे किये और प्रत्येक वेध का सूक्ष्म निरीक्षण करते हुए उन्होने गतिमान किस भाँति निश्चित किये। ज्योतिष के प्राचीन सिद्धान्त ग्रन्थो मे यह ज्ञान एकाएक अत्यन्त उच्चस्थिति मे पहुँचा हुआ दिखाई देता है। उसे जिन्होने यहा तक पहुँचाया उन पुरुषो के विषय मे एक प्रकार की अलौकिकता मालूम होना बिलकुल स्वाभाविक है और सचमुच इसी कारण ग्रहगणित के अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ अपौरुषेय समझे जाते हे। अलौकिक मानने के कारण उन ग्रन्थो मे वेधादि का वर्णन न होना सयुक्तिक ही है, उसका एक और भी प्रबल कारण यह है कि, उस समय, जहा तक हो सकता था, लोग संक्षिप्त ग्रन्थ लिखने का प्रयत्न करते थे, क्योक ऐसा करने से ग्रन्थो को ध्यान मे रखना सुगम होता है। इसीलिए गणितग्रन्थो

मे केवल ग्रहगति के सिद्धान्त ही लिखे है। ग्रन्थ का विस्तार होने के भय से उन सिद्धान्तो की उपपत्ति नही लिखी है।

इस मध्यमाधिकार मे कालक्रम के अनुसार सब ग्रहगणितग्रन्थो का विचार करेगे। भिन्न-भिन्न ग्रन्थो के भिन्न-भिन्न अधिकारो मे यदि कुछ विशेष बाते होगी तो वह सब उन-उन अधिकारो मे लिखी जायँगी, पर उस ग्रन्थ की और सब सामान्य बातो का विवेचन इसी अधिकार मे किया जायगा। गणित के कुछ ग्रन्थ अपौरुषेय माने जाते है। कुछ ग्रन्थकर्ताओ के एक से अधिक ग्रन्थ है। इसलिए इस प्रकरण मे कही ग्रन्थो के नाम आवेगे और कही ग्रन्थकारो के।

ज्योतिषगणित के सबसे प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्तादि पाच सिद्धान्त है। वे अपौरुषेय माने जाते है। उनमे दो भेद है। वराहमिहिर की पञ्चसिद्धान्तिका मे जिन सौरादि पाच सिद्धान्तो का वर्णन है, वे सम्प्रति उपलब्ध नही है। उन ग्रन्थो मे आये हुए मानो का पता पञ्चसिद्धान्तिका द्वारा चलता है। इन पाचो को हम 'प्राची सिद्धान्तपञ्चक' कहेगे। आजकल जो सौरादि पाच सिद्धान्त उपलब्ध है, उन्हे 'वर्तमान सिद्धान्तपञ्चक' कहेगे। पहिले प्राचीन सिद्धान्तपञ्चक का विचार किया जायगा। ये सिद्धान्त शकपूर्व पाचवी शताब्दी मे बने है। उनमे से एक दो शायद इससे भी प्राचीन होगे।

प्राचीन सिद्धान्तपञ्चक

वराहमिहिर की पञ्चसिद्धान्तिका मे पाच सिद्धान्तो का वर्णन है। कहा है—

पौलिशरोमकवासिष्ठसौरपैतामहास्तु पञ्चसिद्धान्ता।

पञ्चसिद्धान्तिका मे बतलाये हुए पाचो सिद्धान्तो के भगणादि मानो द्वारा वे वर्तमान सूर्यादि पाच सिद्धान्तों से भिन्न मालूम होते है। वे ग्रन्थ इस समय उपलब्ध नही है। इतना ही नही, इस प्रान्त मे पञ्चसिद्धान्तिका भी प्राय कही नही मिलती। उसे जाननेवाले बहुत कम है। डेक्कन कॉलेज के सरकारी पुस्तकसग्रह मे कश्मीर से डाक्टर बुल्हर द्वारा लायी हुई पञ्चसिद्धान्तिका की दो प्रतिया है (सन् १८७४–७५, नं० ३७। सन् १८७९–८० नं० ३३८)। वे दोनो बडी अशुद्ध और अपूर्ण है। कहीं-कही तो एक आर्या की समाप्ति के बाद पता नही चलता दूसरी का आरम्भ कहा से हुआ है। उसके आधार पर मैंने एक स्वतन्त्र प्रति तैयार की है। तदनुसार गणित करने से पता चला कि उसमे जिन सूर्यादि सिद्धान्तो का वर्णग है, वे वर्तमान सिद्धान्तो से भिन्न है। उन दोनो मे भेद प्राय: वर्षमान और ग्रहगतिमान मे है। वर्तमान ज्योतिष-ग्रन्थों को देखने से यह नही मालूम होता कि वर्तमान सूर्यसिद्धान्त से भिन्न किसी अन्य

सूर्यसिद्धान्त का गत ८०० वर्षों के भीतर किसी को पता रहा होगा। सन् १८८७ ई० मे मुझे यह बात मालूम हुई। चूँकि गणित से तथा अन्य प्रमाणो द्वारा यह बात उत्पन्न होती है, अत इसमे किसी प्रकार का सदेह नही किया जा सकता। पञ्चसिद्धान्तिका पुस्तक के अत्यन्त अशुद्ध होने से तथा उस पर कोई टीका न होने के कारण उसके बहुत से श्लोको का अर्थ नही लगता। फिर भी जिन बहुत सी महत्वशाली बातो का पता लगा है उनके आधार पर हमे उन सिद्धातो का जो समय उचित मालूम हुआ है, तदनुसार क्रमश यहा पाचो का सक्षिप्त वर्णन कर रहे है।

पञ्चसिद्धान्तिका के प्रथम अध्याय मे ही वराहमिहिर ने कहा है.—

पौलशति[२] विस्फुटोऽसौ तस्यासन्नस्तु रोमक. प्रोक्त ।
स्पष्टतर सावित्र परिशेषौ दूरविभ्रष्टौ ।।

इससे मालूम होता है कि पञ्चसिद्धान्तिका-काल मे पौलिशसिद्धान्त बहुत स्पष्ट था अर्थात् उससे दृक्प्रतीति होती थी और रोमक उसके पास-पास था। सूर्यसिद्धान्त उन दोनो की अपेक्षा अधिक स्पष्ट था और शेष वासिष्ठ तथा पितामह सिद्धान्तो मे बहुत अन्तर पड गया था अर्थात् उनके गणित द्वारा लायी हुई स्थिति आकाशस्थिति से नही मिलती थी। मेरे मतानुसार इन पाचो मे पितामह और वासिष्ठ सिद्धान्त औरो की अपेक्षा अधिक प्राचीन और पितामहसिद्धान्त सबसे प्राचीन होना चाहिए। इस कथन के हेतु आगे बतलाये जायगे। अब यहाँ सर्वप्रथम पितामहसिद्धान्त का विचार करेगे।

पितामहसिद्धान्त

पितामहसिद्धान्त के मूलतत्वो का वर्णन पञ्चसिद्धान्तिका के १२वे अध्याय मे है। इस अध्याय मे केवल पाच आर्याएँ है। पञ्चसिद्धान्तिका मे इस सिद्धान्त की दूसरी बाते और कही भी नही आयी है। पाचो मे से प्रथम दो आर्याएँ यह है—

रविशशिनो पञ्चयुग वर्षाणि पितामहोपदिष्टानि ।
अधिमासस्त्रिंशद्भिर्मासैरवमस्त्रिषष्ट्या ह्लाम् ।।१।।

१. डा० थीबो ने सन् १८८९ मे डेक्कन कॉलेज की प्रति के आधार पर पञ्चसिद्धान्तिका छपवायी है। पं० सुधाकर द्विवेदी ने उस पर नवीन टीका लिखी है। हमे उसे देखने का अवसर अभी तक नही मिला। ऊपर पञ्चसिद्धान्तिका की जो महत्व की बाते बतलायी है वे सब मैने स्वतः निकाली है।

२. हमारी पुस्तक में पञ्चसिद्धान्तिका की आर्याओं का जो पाठ है, यहाँ वही लिखा है। योग्य मालूम होने पर डाक्टर थीबो के कल्पित पाठो से भी कही-कहीं कुछ लिया है।

द्व्यून शकेन्द्रकाल पञ्चभिरुद्धृत्य शेषवर्षाणाम् ।
द्युगण माघसिताद्य कुर्याद्द्युगणस्तदह्न्युदयात् ।।

अर्थ—पितामह के कथनानुसार चन्द्रमा और सूर्य के पाच वर्षो का एक युग, तीस महीनो के बाद एक अधिमास और ६३ दिनो के बाद एक क्षयदिवस (होता है)। शकेन्द्रकाल मे से दो घटाकर शेष मे पाच का भाग दे। अवशिष्ट वर्षो का अहर्गण माघशुक्लादि से बनावे (तो) उस (इष्ट) दिन (जो अहर्गण होगा वह) उदयकाल से (होगा)।

पाचवी आर्या मे दिनमान लाने की रीति बतायी है—

द्विघ्न शशिरस ६१ भक्त द्वादशहीन दिवसमानम् ।।[1]

[उत्तरायण के जितने दिन व्यतीत हो गये हो अथवा दक्षिणायन मे जितने दिन शेष रह गये हो उनमे] दो का गुणा कर, ६१ का भाग दो। उसमे १२ (मुहूर्त) जोड दो। दिनमान हो जायगा।

दूसरी आर्या मे नक्षत्र लाने की रीति बतलायी है। उसमे धनिष्ठा से नक्षत्रारम्भ किया है। इन दोनो बातो से पितामहसिद्धान्त का वेदाङ्गज्योतिषपद्धति से बहुत साम्य मालूम होता है।

रचनाकाल

वराहमिहिर ने पितामहसिद्धान्त की गणितपद्धति शककाल के हिसाब से लिखी है, पर उन्होंने अहर्गणसाधन के लिए ऐसा किया है। अन्य सिद्धान्तो की पद्धतियो मे भी अहर्गण की गणना शके ४२७ से की है। जैसे शके ४२७ मे अहर्गण लाने के कारण यह नही सिद्ध किया जा सकता कि वे ग्रन्थ शके ४२७ मे बने हैं (या वे वराह रचित हैं) उसी प्रकार पितामहसिद्धान्त का भी रचनाकाल शकारम्भ के पश्चात् होना असम्भव है। वेदाङ्गज्योतिष की पद्धति से साम्य होने के कारण उसका निर्माणकाल शकारम्भ से बहुत प्राचीन होना चाहिए, पर उसे ठीक निश्चित करने का कोई साधन नही दिखाई देता।

प्रथम आर्यभट ने दशगीतिका के आरम्भ मे निम्नलिखित मङ्गलाचरण किया है।

१. यहाँ 'हीन' पाठ अशुद्ध है। उसके स्थान मे 'युक्तं' होना चाहिए। अशुद्ध होने के कारण आर्या का पूर्वार्ध यहाँ नही लिखा है, पर कोष्ठक में लिखे हुए अर्थ की अपेक्षा उसमें कोई अधिक वैशिष्ट्य नहीं है।

प्रणिपत्यैकमनेक क सत्या देवता पल ब्रह्म।
आर्यभटस्त्रीणि गदति गणितं कालक्रिया गोलम् ।।

यहा 'क' अक्षर द्वारा पितामह और परब्रह्म की वन्दना की गयी है और अन्त की "आर्यभटीय नाम्ना पूर्व स्वायभुव सदा सद्यत्" इस आर्या मे तो आर्यभटीय को साक्षात् स्वायभुव (ब्रह्मा) का शास्त्र कहा है। इससे आर्यभटकाल (शके ४२०) की अपेक्षा पितामहसिद्धान्त का अत्यधिक प्राचीनत्व सिद्ध होता है।

ब्रह्मगुप्त (शके ५५०) ने अपने सिद्धान्त मे लिखा है—

ब्रह्मोक्त ग्रहगणित महता कालेन् यत् खिलीभूतम् ।
अभिधीयते स्फुट तत् जिष्णुसुतब्रह्मगुप्तेन ।।२।।

अध्याय १।

बहुत समय व्यतीत हो जाने के कारण ब्रह्मोक्त ग्रहगणित शिथिल हो गया है। उसे जिष्णुसुत ब्रह्मगुप्त स्पष्ट कर रहे हैं।

आजकल तीन ब्रह्मसिद्धान्त प्रसिद्ध है। एक ब्रह्मगुप्त का ब्रह्मसिद्धान्त, दूसरा शाकल्योक्त ब्रह्मसिद्धान्त और तीसरा विष्णुधर्मोत्तर पुराणान्तर्गत ब्रह्मसिद्धान्त। बिष्णुधर्मोत्तरब्रह्मसिद्धान्त और शाकल्योक्त ब्रह्मसिद्धान्त ब्रह्मगुप्त के ब्रह्मसिद्धान्त से प्राचीन नही है। मेरे मत मे वे दोनों इसकी अपेक्षा नवीन है। आगे इसका बिचार किया जायगा। इन दोनो को ब्रह्मगुप्त के ब्रह्मसिद्धान्त से प्राचीन मान ले तो भी यह निश्चित है कि उपर्युक्त आर्या मे ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मोक्त ग्रहगणित के विषय मे जिस ब्रह्मसिद्धान्त को खिल (अशुद्ध) कहा है वह इन दोनो से भिन्न है, क्योकि शाकल्योक्त ब्रह्मसिद्धान्त के मूलतत्व सर्वात्मना आधुनिक सूर्यसिद्धान्त के समान है, अर्थात् उसके विषय मे कहा जा सकता है कि वह अभी भी खिल नही हुआ है और आगे चलकर यह सिद्ध करेंगे कि विष्णुधर्मोत्तरब्रह्मसिद्धान्त का ब्रह्मगुप्तसिद्धान्त से साम्य नही है। अत मानना पड़ता है कि वह खिल सिद्धान्त पञ्चसिद्धान्तोक्त पितामहसिद्धान्त ही होना चाहिए। वेदाङ्गज्योतिष मे सूर्य और चन्द्रमा के अतिरिक्त अन्य किसी ग्रह का गणित नही है और पञ्चसिद्धान्तिकोक्त पितामहसिद्धान्त मं भी केवल सूर्य और चन्द्रमा का ही गणित है। सब ग्रहो का गणित वराहमिहिर ने पाचो सिद्धान्तो मे से सूर्यसिद्धान्तोक्त ही लिखा है। पितामहसिद्धान्तोक्त ग्रहगणित के विषय मे कुछ भी नही लिखा है तथापि ब्रह्मगुप्त के कथनानुसार उसमे ग्रहगणित होना चाहिए। अधिक काल व्यतीत हो जाने से दृक्प्रतीति के विरुद्ध होने के कारण वराहमिहिर ने उसे नही लिखा होगा। ब्रह्मगुप्त के पूर्व पञ्चसिद्धान्तिकोक्त पितामहसिद्धान्त से भिन्न अन्य कोई पितामह होने की सम्भा-

बना नही है, अत सिद्ध हुआ कि ब्रह्मगुप्त ने पञ्चसिद्धान्तिकोक्त पितामह सिद्धान्त के ही उद्देश्य से 'ब्रह्मोक्त ग्रहगणितम्' इत्यादि लिखा है। उनके कथनानुसार उसे बने बहुत दिन बीत चुके। अत उसका रचनाकाल शककाल से बहुत प्राचीन होना चाहिए।

आर्यभट और ब्रह्मगुप्त ने पितामहसिद्धान्त का जो इतना आदर किया है, वह औपचारिक मालूम होता है, क्योकि उनके सिद्धान्तो का पञ्चसिद्धान्तिकोक्त पितामह-सिद्धान्त से कुछ भी साम्य नही है। ब्रह्मगुप्त ने तो एक जगह पञ्चवर्षात्मक युगपद्धति मे स्पष्टतया दोष दिखलाया है, जो कि वेदाङ्गज्योतिषविचार मे लिखा जा चुका है, परन्तु यह कथन इस बात का कि 'इन दोनो के पहिले पितामहसिद्धान्त नाम का कोई सिद्धान्त ग्रन्थ था' बाधक नही होगा।

पद्धति

ऊपर पितामहसिद्धान्त सम्बन्धी पञ्चसिद्धान्तिका की जो दो आर्याए लिखी है उनमे प्रथम मे कहा है—

'अधिमासस्त्रिशद्भिर्मासै.'।

वेदाङ्गज्योतिषविचार मे पहिले बता चुके है कि ३० मास के बाद अधिमास मानना बहुत बडी अशुद्धि है। भटोत्पल ने बृहत्सहिता के अष्टमाध्याय के 'एकैकमब्देषु....' श्लोक की टीका मे इस श्लोक का पाठ 'अधिमासो द्व्यग्निसमैर्मासै' लिखा है। इस पाठ से ३२ मास के बाद अधिमास होना सिद्ध होता है। श्रीपतिकृत रत्नमाला की महादेवीटीका मे भी यही बात है। उन्होने प्रथमाध्याय की टीका मे यह श्लोक लिखा है। ऐसे महत्व के स्थानो मे संशययुक्त पाठ बड़ी अडचन डालता है।

यह कथन भी कि 'ग्रन्थ का मूलपाठ त्रिशद्भिर्मासै' ही था पर उत्पल और महादेव ने उसे बदलकर द्व्यग्निसमैर्मासै कर दिया, ठीक नही मालूम होता, क्योकि अधिमास ३२½ मास से कुछ अधिक समय बाद आता है। अत उन्हे यदि पाठभेद करना ही अभीष्ट होता तो ३२½ या ३३ कर देते, पर ऐसा नही किया है। अत मूलपाठ 'द्व्यग्नि-समै.' ही रहा होगा। वेदाङ्गज्योतिष की पद्धति के अनुसार क्षयदिवस ६२ तिनो के बाद आता है, पर यहाँ उपर्युक्त आर्या में ६३ दिनों के बाद बतलाया है, अत पितामहसिद्धान्त का वेदाङ्गज्योतिष से सभी अंशों मे साम्य नही सिद्ध होता। इससे भी 'द्व्यग्निसमै.' पाठ की ही पुष्टि होती है। यदि दोनो का सर्वात्मना साम्य होता तो यहाँ भी 'अधि-मासस्त्रिशद्भिर्मासै.' मानना पड़ता है।

३२ मास मे एक अधिमास मानने से ८ वर्षो मे ३ अधिमास होगे। अत चान्द्र-मास ९९ और तिथिया २९७० होंगी। ६३ तिथियों मे एक क्षयदिवस मानने से

इतनी तिथियों मे ४७$\frac{१}{७}$ क्षय तिथिया और २९२२$\frac{६}{७}$ सावनदिवस होगे। इस प्रकार वर्षमान ३६५ दिन २१$\frac{३}{७}$ घटिका का होगा। वेदाङ्गज्योतिषोक्त वर्षमान की अपेक्षा यह बहुत शुद्ध है।

आर्यभट, वराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त के पहिले भी पितामहसिद्धान्त था और वह उन लोगो के समय निरुपयोगी हो गया था। अत. उसका रचनाकाल आर्यभटादिको से बहुत प्राचीन होना चाहिए। यद्यपि वेदाङ्गज्योतिष से उसका बहुत अशो मे साम्य है, तथापि दोनो मे भेद भी कम नही है। वेदाङ्गज्योतिष मे भौमादि ग्रहो का गणित नही है. परन्तु ब्रह्मगुप्त के कथन से पितामहसिद्धान्त मे उसका अस्तित्व सिद्ध होता है, अत वेदाङ्गज्योतिष के कुछ काल बाद उससे शुद्ध पितामहसिद्धान्त बना होगा। यह बात सिद्ध है और बडे महत्व की है। यदि पितामहसिद्धान्तोक्त भौमादि ग्रहो का गणित ज्ञात होता तो भारतीय ज्योतिषशास्त्र की वृद्धि क्रमश कैसे हुई, यह जानने मे उससे बडी सहायता मिलती, पर अब उस पितामहसिद्धान्त के मूलस्वरूप की उपलब्धि की आशा करना व्यर्थ है।

वसिष्ठसिद्धान्त

पञ्चसिद्धान्तिका मे वसिष्ठसिद्धान्त सम्बन्धी सब १३ आर्याए हैं। उनमे वर्णित पद्धति आधुनिक सिद्धान्तग्रन्थो की पद्धति से भिन्न है। वराहमिहिर ने भी उसे 'दूर-विभ्रष्ट' कहा है, अत पितामहसिद्धान्त को छोडकर शेष तीनो से वह प्राचीन होगा।

उन १३ श्लोको मे सूर्य और चन्द्रमा को छोडकर शेष ग्रहो के विषय मे कुछ नही कहा है। आधुनिक पद्धति से भिन्न तिथिनक्षत्रानयन पद्धति और राशि, अंश, कला के मान उनमे हैं। छाया का विचार विशेष और दिनमान का बहुत थोडा-सा है। लग्न शब्द का सम्प्रति जिस अर्थ मे प्रयोग होता है तत्समान ही किसी अर्थ मे वहा हुआ है। आधुनिक वसिष्ठसिद्धान्त का वराहमिहिर के पूर्व के वसिष्ठसिद्धान्त से कुछ भी साम्य नही है और वह वराह के समय तक नही बना था। आगे इस विषय का विशेष विवेचन किया जायगा।

भिन्न-भिन्न वासिष्ठ और रोमकसिद्धान्त

ब्रह्मगुप्त के समय (शके ५५०) वासिष्ठ और रोमकसिद्धान्त दो-दो थे। दो वसिष्ठसिद्धान्त जिन आधारो से सिद्ध होते हैं, उन्ही द्वारा रोमक सिद्धान्त का भी विवेचन हो जाता है. अत यही उसका भी विचार करेंगे।

ब्रह्मगुप्त ने अपने सिद्धान्त के १४वे अध्याय में एक जगह लिखा है—

पौलिशरोमक वासिष्ठसौरपैतामहेषु यत्प्रोक्तम्।
तन्नक्षत्रानयन नार्यभटोक्त तदुक्तिरत ॥४६॥

अर्थ---पौलिश, रोमक, वासिष्ठ, सौर और पैतामह [सिद्धान्तो] मे बतलाया हुआ नक्षत्रानयन आर्यभट ने नही लिखा, अत उसे मै लिखता हूँ।

२४वे अध्याय के तीसरे श्लोक मे लिखा है---

'अयमेव कृत सूर्येन्दुपुलिशरोमकवसिष्ठयवनाद्यै'

अर्थात् सूर्य, इन्दु, पुलिश, रोमक, वसिष्ठ और यवनादिको ने यही (युगारम्भ) किया है।

इन दोनो स्थलो मे ब्रह्मगुप्त ने स्वानुकूल होने के कारण सूर्यादि सिद्धान्तो को प्रमाण माना है। ब्रह्मगुप्त का सिद्धान्त देखने से मालूम होता है कि उन्होने आर्य भटादिको पर मानो दोषो की वृष्टि की है, पर सूर्यादि सिद्धान्तो मे रोमक को छोडकर अन्य किसी के ऊपर प्रत्यक्ष दोषारोपण नही किया है। रोमकसिद्धान्त मे भी केवल एक ही बार दोष दिखलाया है। वह यह है---

युगमन्वन्तरकल्पा कालपरिच्छेदका स्मृतावुक्ता.।
यस्मान्न रोमके ते स्मृतिबाह्यो रोमकस्तस्मात् ॥१३॥

प्रथमाध्याय

स्मृतिग्रन्थो मे युग, मन्वन्तर और कल्प कालपरिच्छेदक कहे गये है और रोमक मे उनका वर्णन नही है, अत: रोमक स्मृतिबाह्य है।

एकादशाध्याय मे लिखा है---

लाटात्सूर्यशशांकौ मध्याविन्दूच्चचन्द्रपातौ च।
कुजबुधशीघ्रबृहस्पतिसितशीघ्रशनैश्चरान् मध्यान् ॥४८॥
युगयातवर्षभगणान् वासिष्ठान् विजयनन्दिकृतपादान्।
मन्दोच्चपरिधिपातस्पष्टीकरणाद्यमार्यभटात् ॥४९॥
श्रीषेणेन गृहीत्वा रत्नोच्चयरोमक कृत: कन्था।
एतान्येव गृहीत्वा वासिष्ठो बिष्णुचन्द्रेण ॥५०॥

लाटकृत ग्रन्थ से मध्यमरवि, चन्द्र, चन्द्रोच्च, चन्द्रपात, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि, वासिष्ठसिद्धान्त से युगयातवर्ष और भगण, विजयनन्दिकृत ग्रन्थ से पाद और आर्यभटीय से मन्दोच्च, परिधि, पात और स्पष्टीकरण लेकर श्रीषेण ने रोमक की

मानो एक कन्था बनायी है। बिष्णुचन्द्र ने उन्ही मानो द्वारा वासिष्ठसिद्धान्त बनाया है।

यहाँ यह कहा गया है कि भिन्न-भिन्न ग्रन्थों से जिन मानो को लेकर श्रीषेण ने रोमक-सिद्धान्त बनाया, विष्णुचन्द्र ने उन्ही मानो द्वारा वासिष्ठसिद्धान्त की रचना की और श्रीषेण ने युगयातवर्ष तथा भगणमान वासिष्ठसिद्धान्त से लिये हैं। अत सिद्ध हुआ कि विष्णुचन्द्र ने वसिष्ठ सिद्धान्त से युगयातादि और अन्य ग्रन्थो से कुछ अन्य विषय लेकर नवीन वसिष्ठसिद्धान्त बनाया। साराश यह कि ब्रह्मगुप्त के समय दो वसिष्ठसिद्धान्त प्रचलित थे और ब्रह्मगुप्त उन दोनो को जानते थे। एक मूलवसिष्ठसिद्धान्त और दूसरा उसमें से कुछ मूलतत्व लेकर विष्णुचन्द्र का बनाया हुआ।

पहिले बता चुके हैं कि रोमकसिद्धान्त मे युग, मन्वन्तर और कल्पमान न होने का हेतु दिखलाते हुए ब्रह्मगुप्त ने उसे स्मृतिबाह्य कहा है और वही फिर श्रीषेण ने वसिष्ठ सिद्धान्त से युगयातादि लेकर रोमक सिद्धान्त बनाया कहते हुए उसमे युगपद्धति होने का समर्थन कर रहे हैं। और भी लिखा है—

तद्युगवधो महायुगमुक्तं श्रीषेणविष्णुचन्द्राद्यै'।

अध्याय ११ आर्या ५५।

मेषादितः प्रवृत्ता नार्यभटस्य स्फुटा युगस्यादौ।
श्रीषेणस्य कुजाद्याः।

अध्याय २ आर्या ४६।

इसलिए ब्रह्मगुप्त के कथन से ही यह सिद्ध हो जाता है कि रोमकसिद्धान्त मे युग-पद्धति है। अत मानना पडता है कि ब्रह्मगुप्त के समय दो रोमकसिद्धान्त थे। एक मूल रोमकसिद्धान्त और दूसरा श्रीषेणकृत।

ब्रह्मगुप्त के सिद्धान्त मे उनसे प्राचीन जिन ज्योतिषियो के नाम आये है, प्राय वे सभी पञ्चसिद्धान्तिका मे भी हैं, पर उसमे श्रीषेण और विष्णुचन्द्र के नाम नही है। वासिष्ठ और रोमक सिद्धान्त भी एक-एक ही हैं। इससे मालूम होता है कि शके ४२७ के पहिले केवल मूल रोमक सिद्धान्त और वासिष्ठ सिद्धान्त ही थे। श्रीषेण का रोमक और विष्णुचन्द्र का वासिष्ठ दोनो नही थे। पञ्चसिद्धान्तिका मे मूल रोमक और वासिष्ठसिद्धान्तो का साराश लिखा है। ब्रह्मगुप्त के कथनानुसार श्रीषेण और विष्णु चन्द्र ने स्पष्टीकरण इत्यादि विषय आर्यभटीय से लिये हैं। इससे भी उनके सिद्धान्तो का रचनाकाल शके ४२१ के बाद ही सिद्ध होता है और पञ्चसिद्धान्तिकानुसार शके ४२७ के बाद।

रोमकसिद्धान्त

ऊपर बतलाये हुए दो प्रकार के रोमकसिद्धान्तो मे से केवल मूल रोमकसिद्धान्त का ही पञ्चसिद्धान्तिकाल मे प्रचार था। यहा उसी का विचार किया जायगा।

पञ्चसिद्धान्तिका का बहुत-सा भाग रोमकसिद्धान्त सम्बन्धी बातो से व्याप्त है। प्रथमाध्याय की अष्टम, नवम और दशम आर्याओ मे उसके अनुसार अहर्गणसाधन बतलाया है और १५वी मे अधिमास और तिथिक्षय का वर्णन है। आठवे अध्याय मे सब १८ श्लोक है। सारे अध्याय मे रोमकसिद्धान्त सम्बन्धी ही बाते है। उसमे सूर्य और चन्द्रमा का साधन, उनका स्पष्टीकरण और सूर्यचन्द्र के ग्रहणो का आनयन है। रोमकसिद्धान्तानुसार अहर्गण लाने की जो रीति बतलायी है, उसमे पहिली आर्या यह है—

सप्ताश्विवेद ४२७ सख्य शककालमपास्य चैत्रशुक्लादौ।
अर्धास्तमिते भानौ यवनपुरे भौमदिवसाद्य.॥८॥

अध्याय १।

इससे मालूम होता है चैत्र शुक्ल प्रतिपदा मगलवार को थी।

प्रत्येक करणग्रन्थ मे ग्रहस्थिति लाने के लिए करणारम्भकालीन ग्रहस्थिति लिखनी पडती है। उन ग्रहादिको को क्षेपक कहते है। शके ४२७ को गतवर्ष मानकर आधुनिक पद्धति के अनुसार गणित करने से उस वर्ष मध्यममेषसक्रान्ति के दिन अर्थात् शके ४२७ अमान्त चैत्रकृष्ण १४ रविवार तदनुसार तारीख २० मार्च सन् ५०५ ईसवी के दिन जो स्पष्ट ग्रहादिक आते है वे पञ्चसिद्धान्तिकोक्त क्षेपक के तुल्य है। उनमे कुछ मध्याह्नकालिक है और कुछ मध्यरात्रिकालिक। यह बात बिलकुल नि सन्देह है। आगे सूर्यसिद्धान्त के विवेचन मे इसका विशेष स्पष्टीकरण किया जायगा। इस चैत्रकृष्ण चतुर्दशी के आगेवाली शुक्ल प्रतिपदा अर्थात् वैशाख शुक्ल प्रतिपदा भौमवार को आती है। मालूम होता है वराहमिहिर ने इसी को चैत्र शुक्ल प्रतिपदा कहा है और उसी दिन से अहर्गण का आरम्भ किया है। अन्य किसी भी पद्धति द्वारा शके ४२७ की चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के दिन मंगलवार नही आता। शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से अहर्गण लाने में सुभीता होता है, इसीलिए वराहमिहिर ने ऐसा किया है। किसी भी करण ग्रन्थ से अहर्गण लाइए, उसमे कभी-कभी एक का अन्तर पड जाया करता है और वार की संगति लगाते हुए उस त्रुटि का सशोधन किया जाता है, यह बात गणितज्ञ समाज मे सर्वत्र प्रसिद्ध है, पर यहा सन्देह यह होता है कि पूर्वोक्त वैशाख शुक्ल-प्रतिपदा को वराहमिहिर ने चैत्रशुक्ल प्रतिपदा कैसे कहा। क्षेपक के आगेवाली शुक्ल-प्रतिपदा, शके ४२७ के अमान्त वैशाखशुक्ल की प्रतिपदा है। इस बात मे तिलमात्र भी सन्देह नही

किया जा सकता। "रवि के मेषराशि मे स्थित रहने पर जिस चान्द्रमास की समाप्ति होती है उसे चैत्र कहते है।"[1] इस परिभाषा द्वारा क्षेपक के दूसरे दिन समाप्त होने वाला चान्द्रमास चैत्र ही सिद्ध होता है, क्योकि मध्यम मेष लीजिए या स्पष्ट मेष, दोनो स्थितियो मे क्षेपक के आगेवाली अमावास्या के अन्त मे रवि मेष राशि ही मे रहता है। इसके बाद अग्रिम भौमवार से वैशाख का आरम्भ हो जाता है। यदि पूर्णिमान्त मास ले तो क्षेपक के पश्चात् जिस शुक्ल पक्ष का आरम्भ होता है, उसकी पूर्णिमा समाप्त हो जाने पर मास की समाप्ति समझी जायगी, क्योकि पूर्णिमान्त चान्द्रमास की समाप्ति पूर्णिमा मे होती है पञ्चसिद्धान्तिकोक्त क्षेपको द्वारा गणित करने से उस पूर्णिमा के अन्त मे भी रवि मेष राशि ही मे आता है, अत उस मास को चैत्र कह सकते है। इसके अतिरिक्त हमे और कोई ऐसी उपपत्ति नही दिखाई देती, जिसके अनुसार उस मास को चैत्र सिद्ध कर सके। उत्तर भारत मे पूर्णिमान्त मास मानने की प्रथा बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है, पर आजकल पूर्णिमान्त मान का प्रचार होते हुए भी वहा मासो के नाम उपर्युक्त रीति से नही रखे जाते। वराहमिहिर के समय शायद शुद्ध रीति का प्रचार रहा होगा।

अष्टम अध्याय की निम्नलिखित प्रथम आर्या मे रोमक सिद्धान्तानुसार सूर्यसाधन बतलाया है।

> रोमकसूर्यो द्युगणात् खतिथिघ्नात् १५० पञ्चकर्तु ६५ परिहीनात्।
> सप्ताष्टकसप्तकृतेन्द्रियोद्धृतात् ५४७८७ मध्यमार्क स ॥

अहर्गण मे १५० का गुणाकर, उसमे से ६५ घटाकर शेष मे ५४७८७ का भाग देने से सूर्य आता है। यहा क्षेपक के लिए ६५ घटाने को कहा है। इस प्रकार से लाया हुआ सूर्य भगणादि होता है। यद्यपि यह बात श्लोक मे नही बतायी है, फिर भी इसमे किसी प्रकार का सन्देह नही है। ५४७८७ दिनो मे सूर्य के १५० भगण पूर्ण होते है, अत एक भगण भोगने मे उसे ठीक-ठीक ३६५ दिन १४ घटी ४८ पल लगेगे। यही रोमक सिद्धान्तीय वर्षमान है। आधुनिक सूर्यसिद्धान्त का वर्षमान ३६५ दिन १५ घटी ३१ पल ३१.४ विपल है। ब्रह्मगुप्त ने रोमक सिद्धान्त मे यह दोष दिखलाया है कि उसमे अन्य सिद्धान्तो की भाँति युगादिमान नही है और निम्नलिखित विवेचन द्वारा

१. मेषादिस्थे सवितरि यो यो मासः प्रपूर्यते चान्द्रः।
चैत्रादिः स ज्ञेयः॥
स्पष्टाधिकार मे इस परिभाषा का विषेष विचार किया जायगा।

यह स्पष्ट हो जायगा कि उनका यह कथन ठीक भी है। अन्य सिद्धान्तो से तुलना करने मे सौकर्य होने के लिए रोमकसिद्धान्त के एक महायुगसम्बन्धी भगणादिमान नीचे लिखे जाते है।

पञ्चसिद्धान्तिका के निम्नलिखित श्लोको के आधार पर वे मान निश्चित किये गये है।

रोमकयुगमर्केन्दोर्वर्षाण्याकाशपञ्चवसुपक्ष २८५०।
रवेन्द्रियदिशो १०५०ऽधिमासा स्वरकृतविषयाष्टयः १६५४७ प्रलया ॥१५॥
प्रथमाध्याय.।

२८५० वर्षों का एक रोमक-युग होता है। उसमे १०५० अधिमास और १६५४७ प्रलय अर्थात् तिथिक्षय होते हैं।

शून्यैकैकाम्यस्ताश्रवशून्यरसा ६०६ ऽन्विताद्दिनसमूहात्।
रूपत्रिखगुण ३०३१ भक्तात् केन्द्र शशिनोस्तगमवन्त्याम् ॥५॥
त्र्यष्टक २४ गुणिते दद्याद्रसर्तुयमषट्कपञ्चकान् ५६२६६ राहो।
भवरूपाग्न्यष्टि १६३१११ हृते... ....॥८॥
अध्याय ८।

इन श्लोको द्वारा, उपर्युक्त सूर्यसाधन की आर्या द्वारा और अहर्गणानयनोपयोगी श्लोको द्वारा निम्नलिखित मान आते है—

महायुग (४३२०००० वर्षों) मे।		२८५० वर्षात्मक युग मे
नक्षत्रभ्रम	१५८२१८५६००	१०४३८०३
रविभगण	४३२००००	२८५०
सावनदिवस	१५७७८६५६००	१०४०९५३
चन्द्रभगण	५७७५१५७८$\frac{१८}{१९}$	३८१००
चन्द्रोच्चभगण	४८८२२८$\frac{१३७०८}{५७५८९}$	३२२$\frac{२२८}{३०३१}$
चन्द्रपात (राहु) भगण	२३२१६५$\frac{१०९०८५}{१६३१११}$	१५३$\frac{२६८८९}{१६३१११}$
सौरमास	५१८४००००	३४२००
अधिमास	१५९१५७८$\frac{१८}{१९}$	१०५०
चान्द्रमास	५३४३१५७८$\frac{१८}{१९}$	३५२५०
तिथि	१६०२९४७३६८$\frac{८}{१९}$	१०५७५००
तिथिक्षय	२५०८१७६८$\frac{८}{१९}$	१६५४७

यहा चन्द्रादिको के महायुगीय भगण पूर्ण नही है, अत अन्य सिद्धान्तों की तरह कलियुगारम्भ मे या किसी महायुग के आरम्भ मे रोमकसिद्धान्त के सूर्य और चन्द्रमा एकत्र नही होंगे। इसी प्रकार चान्द्रमास भी पूर्ण नही हो सकेगा। इन सब बातो द्वारा रोमकसिद्धान्त मे युग २८५० वर्षो का होने के कारण मालूम होता है कि उसमे ४३२०००० वर्षो का महायुग मानने की पद्धति नही है।

जिस आर्या मे चन्द्रसाधन की रीति है वह अत्यन्त अशुद्ध है। उससे चन्द्रभगण-सख्या नही लायी जा सकी। अन्य रीति से लायी गयी है। गणित द्वारा लाये हुए करणारम्भकालीन राश्यादि क्षेपक ये है—

	राशि	अश	कला	विकला
सूर्य	११	२६	३४	२३
चन्द्रमा	११	२६	१८	५०
चन्द्रकेन्द्र	२	१२	१६	५७
राहु	७	२५	४६	३

ये क्षेपक चैत्र कृष्ण १४ रविवार, शके ४२७ तदनुसार २० मार्च सन् ५०५ ई० के उज्जयिनी के सूर्यास्तकाल के है।

ग्रीक ज्योतिषी हिपार्कस का समय ईसा के लगभग १५० वर्ष पूर्व है। उनका वर्षमान बिलकुल रोमक सिद्धान्त के वर्षमान (३६५ दिन १४ घटी ४८ पल) सरीखा है। सम्प्रति हिपार्कस का ग्रन्थ उपलब्ध नही है, पर मान्य यूरोपियन ज्योतिषियो का कथन है कि उन्होने केवल सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति लाने के कोष्ठक बनाये थे। ग्रहसाधन के नही। बाद मे टालमी ने उनके मूल तत्वो का अनुसरण करते हुए ग्रह-साधन के कोष्ठक बनाये और वे यह भी स्वीकार करते है[1] कि ग्रीकज्योतिषपद्धति के मूलतत्त्व टालमी के पहले ही भारतवर्ष मे आ चुके थे। रोमक सिद्धान्त मे केवल सूर्य और चन्द्रमा का गणित है, उसका वर्षमान अन्य किसी भी सिद्धान्त ग्रन्थ से नही मिलता, सर्वमान्य युगपद्धति उसमे नही है और उसका यह नाम भी पाश्चात्य ढग का है। अत इन सब कारणो का विचार करने से विदित होता है कि मूल रोमक सिद्धान्त हिपार्कस के ग्रन्थानुसार बना होगा और उसका रचनाकाल ईसवी सन् पूर्व १५० के पश्चात् और टालमी के समय (ईसवी सन् १५०) के पूर्व होगा।

१. Grant's History of physical Astronomy Introduction. p iii and p. 439 देखिए। Burgess के सूर्यसिद्धान्त का इंगलिश अनुवाद पृ० ३३० देखिए।

पैतामह और वासिष्ठसिद्धान्त रोमक से प्राचीन है, यह तो पहिले बता ही चुके है, पर हमे पञ्चसिद्धान्तिकोक्त सूर्यसिद्धान्त और पुलिशसिद्धान्त भी रोमक से प्राचीन मालम होते है । इसका कारण यह है कि ब्रह्मगुप्त की दृष्टि मे रोमक की अपेक्षा अन्य चार सिद्धान्त अधिक पूज्य है क्योकि उन्होने अपने ग्रन्थ मे उन चारो मे कही भी दोष नही दिखलाया है। ब्रह्मगुप्त के बाद तो मालूम होता है कि रोमकसिद्धान्त बिलकुल निरुपयोगी हो गया था, चाहे वह मूल रोमकसिद्धान्त हो या श्रीषेणकृत। बृहत्सहिता की टीका मे भटोत्पल ने पुलिशसिद्धान्त, सूर्यसिद्धान्त, प्रथमार्यभटसिद्धान्त और ब्रह्मगुप्तसिद्धान्त का आश्रय लिया है, पर ग्रहगणित के किसी भी प्रसङ्ग मे रोमकसिद्धान्त के वचन उद्धृत नही किये है । इससे मालूम होता है कि उत्पल के समय मूल रोमकसिद्धान्त लुप्त हो गया होगा । इस समय भी एक रोमकसिद्धान्त उपलब्ध है, पर उसके मान सूर्यसिद्धान्त सरीखे ही है और वह भी विशेष प्रचलित नही है। अतः सिद्ध हुआ कि अन्य चारो सिद्धान्तों के पूज्यत्व का कारण है रोमक से उनका प्राचीन होना ।

निम्नलिखित एक और भी महत्वशाली प्रमाण है, जिससे रोमक का औरो की अपेक्षा नवीनत्व सिद्ध होता है [नीचे भिन्न-भिन्न ग्रन्थो के वर्षमान लिखे है । उनके अङ्क क्रमश दिन, घटी, पल, विपल और प्रतिविपल के द्योतक है]।

पञ्चसिद्धान्तिकोक्त	पितामहसिद्धान्त	३६५।२१।२५।०।०
	वासिष्ठसिद्धान्त	०।०।०।०।०
	पुलिशसिद्धान्त	३६५।१५।३०।०।०
	सूर्यसिद्धान्त	३६५।१५।३१।३०।०
	रोमकसिद्धान्त	३६५।१४।४८।०।०
	आधुनिक सूर्य, वसिष्ठ, शाकल्य, रोमक और सोमसिद्धान्त	३६५।१५।३१।३१।२४
	द्वितीय आर्यसिद्धान्त	३६५।१५।३१।१७।६
	राजमृगाङ्क करणकुलूहल इत्यादि	३६५।१५।३१।१७।१७½
	वेदाङ्गज्योतिष	३६६।०।०।०।०

इनमे रोमक को छोडकर अन्य किसी भी सिद्धान्त का वर्षमान ३६५ दिन १५ घटी ३० पल से कम नही है और वेदाङ्गज्योतिष तथा पितामहसिद्धान्त के अतिरिक्त किसी का भी ३६५।१५।३२ से अधिक नही है। साराश यह कि वेदाङ्गज्योतिष और पितामहसिद्धान्तो को छोडकर अन्य किसी भी दो सिद्धान्तो के वर्षमान में २ पल से अधिक अन्तर नही है, पर रोमकसिद्धान्त की स्थिति इसके विपरीत है। यदि रोमकसिद्धान्त पञ्चसिद्धान्तिकोक्त पुलिश और सौरसिद्धान्तो से प्राचीन होता तो सब ने इसी का वर्षमान ज्यो का त्यो या उसमें कुछ नवीन सस्कार करके लिया होता, अन्य

सिद्धान्त उससे बहुत दूर कभी भी न जाते। इससे यह बात नि सशय सिद्ध होती है कि पुलिश और सौरसिद्धान्त रोमक से प्राचीन है। इस प्रकार यह बात उपपन्न हो जाती है कि पञ्चसिद्धान्तिकोक्त पाचो मिद्धान्त शककाल से प्राचीन हैं।

डा० थीबो के मतानुसार पञ्चसिद्धान्तिका के रोमक और पौलिश सिद्धान्त ईसवी सन् ४०० से प्राचीन हैं। उनके कहने का अभिप्राय यह है कि रोमक सिद्धान्त और पञ्चसिद्धान्तिकोक्त अन्य सिद्धान्तो का भी निर्माणकाल सन् ४०० ईसवी के आसपास ही है, परन्तु उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका मत युक्ति-शून्य है।

सम्प्रति जो रोमकसिद्धान्त प्रसिद्ध है उसके भगणादिमान आगे लिखे हैं और वे उपर्युक्त रोमकसिद्धान्त के मानो से बिलकुल भिन्न हैं, अत आधुनिक रोमकसिद्धान्त शक ४२७ से प्राचीन नही सिद्ध होता।

आधुनिक रोमकसिद्धान्त और वसिष्ठसिद्धान्तो के रचयिता श्रीषेण और विष्णुचन्द्र है या अन्य कोई, इसका विवेचन आगे किया जायगा।

पुलिशसिद्धान्त

पञ्चसिद्धान्तिका का बहुत-सा भाग पुलिशसिद्धान्त के वर्णन से सम्बन्ध रखता है। प्रथमाध्याय की १०वी आर्या में कहा है कि रोमकसिद्धान्त का अहर्गण पौलिश अहर्गण के आसपास होता है। इसके बाद तदुक्त सुर्यादिसाधन और चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहण का आनयन है।

पुलिशसिद्धान्तानुसार भौमादि ग्रहो की गतिस्थिति बिलकुल नही बतायी है, परन्तु मालूम होता है अन्त की लगभग १६ आर्याओ मे ग्रहो के वक्रत्व, मार्गीत्व उदय और अस्त इत्यादि का कुछ विवेचन किया है, क्योकि अन्तिम श्लोक में कहा है "पौलिश-सिद्धान्ते तारा ग्रहा एवम्।"

पुलिशसिद्धान्तोक्त निम्नलिखित मान ज्ञात है—

> खार्क १२०घ्नेऽग्निहुताशन ३३ मपास्य रूपाग्निवसु-
> हुताशकृतै ४३८३१। हृत्वा क्रमाद्दिनेशो मध्य ।।१४।।
> अष्टगुणे दिनराशौ रूपेन्द्रियशीतरश्मि १५१ भिर्भक्ते।
> लब्धा राहोरशा भगणसमाश्च क्षिपेल्लिप्ता ।।४१।।
> वृश्चिकभागा राहो षड्विशतिरेकलिप्तिकालुप्ता ।।४२।।

सर्वप्रथम एक २५ श्लोको का प्रकरण है। उपर्युक्त श्लोक उसके आगेवा॰,

प्रकरण मे है। इनकी गणना पुलिशसिद्धान्तोक्त श्लोको मे है। इनसे निम्नलिखित मान ज्ञात होते है—

वर्षमान ३६५ दिन १५ घटी ३० पल।
महायुगीयसावनदिवस १५७७९१६००० ।
महायुगीयराहुभगण २३२२२७ $\frac{६५७०३९१५}{६७९४६८५५}$ ।

राहु के एक भगण का काल ६७९४ दिन ४१ घटी १८ पल है।

यह वर्षमान अन्य सिद्धान्तो के वर्षमान से भिन्न है और राहुभगणकाल मे भी कुछ अन्तर है।

पञ्चसिद्धान्तिका मे पुलिशसिद्धान्तसम्बन्धी अन्य भी बहुत-सी बाते है। सूर्य और चन्द्रमा का स्पष्टीकरण तथा पलभा से चरखण्ड और चरखण्ड से दिनमान का आनयन बतलाया है। देशान्तर का विचार किया है। उसमे वर्तमान पद्धति सरीखी ही तिथि और नक्षत्रानयन पद्धति है। करण लाये है। सूर्य और चन्द्रमा के क्रान्तिसाम्य अर्थात् महापात का विवेचन किया है। ग्रहणो का आनयन प्राय आधुनिक इतर सिद्धान्तो के समान ही है। ग्रहो के वक्रत्व और मार्गीत्व का विचार खण्डखाद्य के अनुसार है। अग्रिम श्लोक मे चर का विचार किया है।

यवनाच्चरजा नाड्य सप्तावन्त्यास्त्रिभागसयुक्ता ।
वाराणस्या त्रिकृति ९ साधनमन्यत्र वक्ष्यामि ।।

यहा अवन्ती (उज्जयिनी) का चर ७ घटी २० पल और वाराणसी का ९ घटी बतलाया है। मालूम होता है वेदाङ्गज्योतिष की भाँति यहाँ दक्षिणायन समाप्तिकालीन दिनमान की अपेक्षा उत्तरायणसमाप्तिकालीन दिनमान का अधिकत्व बतलाया है।

सायन पञ्चाङ्ग मे उज्जयिनी का परमाल्पदिनमान २६ घटी २६ पल और परमाधिक दिनमान ३३ घटी ३४ पल है। इस प्रकार दोनो का अन्तर ७ घटी ८ पल होता है। ग्रहलाघव द्वारा उज्जयिनी का परमाल्पदिनमान २६ घटी २१ पल और परमाधिक दिनमान ३३ घटी ३९ पल होता है, अर्थात् दोनो का अन्तर ७ घटी १८ पल है उज्जयिनी की पलभा ५।८ मानने से यह स्थिति होती है। पण्डित बापूदेवशास्त्री के पञ्चाङ्गानुसार काशी की पलभा ५।४० मानने से परमाल्प दिनमान २६।४ और परमाधिक दिनमान ३३।५६ तथा दोनो का अन्तर ७।५२ होता है। इसी पलभा से ग्रहलाघव द्वारा दोनो का अन्तर ८।४ होता है। ६।१५ पलभा मानने से पञ्चसिद्धान्तिकोक्त पुलिशचरखण्डों द्वारा लगभग ९ घटी अन्तर आता है।

पञ्चसिद्धान्तिका की तीसरी आर्या से मालूम होता है कि लाटदेव ने पौलिश-सिद्धान्त की व्याख्या की है।

सम्प्रति उपलब्ध किसी प्रकार की भी पुलिशसिद्धान्त न तो मैने देखा है, न सुना ही है। भटोत्पल ने बृहत्संहिता की टीका मे प्रसङ्गवशात् लगभग २५ श्लोक पुलिश-सिद्धान्त के नाम पर लिखे है, उनमे पुलिशसिद्धान्तोक्त भगणमान प्रभृति कुछ महत्व की बाते आयी है। अत उन्हे यहाँ उद्धृत करते है—

> अष्टाचत्वारिंशत्पादविहीना क्रमात् कृतादीनाम्। अशास्ते शतगुणिता ग्रहतुल्ययुग तदेकत्वम्।। सावनमकृत १५५५२०००००० चान्द्र सूर्येन्दुसङ्गमान् दिनीकृत्य १६०३००००८०। सौर भूदिनराशि १५७७९१७८०० शशिभगणदिनानि १७३२६०००८० नाक्षत्रम्। परिवर्तैर-युतगुणैर्द्वित्रिकृतै ४३२०००० भास्करो युग भुङक्ते। रसदहनहुतवहानलशरमुन्यद्रीषवश्चन्द्र ।। ५७७५३३३६ ।। अधिमासका षडग्नित्रिकदहनछिद्रशररूपा. १५९३३३६। भगणान्तरशेष यत् समागमास्ते द्वयोर्ग्रहयो ।। तिथिलोपा. खवसुद्विकदस्राष्टकशून्यशरपक्षा २५०८२२८० ।। दस्रार्थबाणतिथयो लक्षहता १५५५२०००००० सावने ते दिवस ।। विषया (?)ष्टौ खचतुष्क विश्व.. . षोडशचान्द्रमानेन। वसुसप्त रूपनवमुनिनगतिथय. १५७७९१७८०० शतगुणाश्च सौरेण । आर्क्षेण खाष्टरवत्रयरसदस्रगुणानिल (?) शशाक ।। १७३२६०००८० ।। षट् प्राणास्तु विनाडी, तत्षष्ट्या नाडिका, दिन षष्टचा। एतासा तु त्रिशन्मासस्तैर्द्वादशभिरब्द.।। षष्ट्या तु तत्पराणा विकला, तत्षष्टिरपि कला, तासाम।। षष्टयाशस्ते त्रिशद्राशिस्ते द्वादश भचक्रम्।। चान्द्रै सावनवियुतै. प्र ४७८००००८० चयस्तैरपचयोर्कदिनै २५०८२२८० ।। युगवत्सरै प्रयच्छति यदि मानचतुष्टय किमेकेन।। यदवाप्त ते दिवसा विज्ञेया सावनादीनाम्।। वेदाश्विवसुरसान्तरलोचनदस्रै २२९६८२४ रवनिसूनुः।। अम्बरगगनवियन्मुनिगुणविवरनगेन्दुभि. १७९३७००० शशिसुतस्य।। आकाशलोचनेक्षणसमुद्रषट्कानलै ३६४२२० जींव.।। अष्टवसु-

हुटवहानल (?) यमखनगै ७०२२३८८ भर्गिवस्यापि ।।
कृतरसशरर्तुमनुभि १४६५६४ सौरो बुधभार्गवौ दिवाकरवत् ।।

अथ कक्षामानानि

अकाशशून्यतिथिगुणदहनसमुद्रैर्बुधार्कशुक्राणाम् ४३३१५०० । इन्दो सहस्रगुणितै समुद्रनेत्राग्निभिश्च ३२४००० स्यात्-भूसूनोर्मुनिरामच्छिद्रर्तुसमुद्रशशिवसुभि ८१४६९३७ ।। रुद्र-यमाग्निचतुष्कव्योमशशाङ्कै १०४३२११ बुधोच्चस्य ।। जीव-स्यवेदषट्कस्वरविषयनगाग्निशीतकिरणार्थ ५१३७५७६४ ।। शुक्रोच्चस्य यमानलषट्कसमुद्रर्तुरसदस्रै २६६४६३२ ।। भगणोर्कजस्य नवशिखिमुनीन्दुनगषट्कमुनिसूर्ये १२७६७१७३९ ।। रविखवियन्नववसुनवविषयेक्षण २५९८९००१२ योजनैर्भकक्षाया ।। इष्टग्रहकक्षाभ्यो यल्लब्ध चन्द्रकक्षया भक्त्वा । ता मध्यमा ग्रहाणा सौरा-दीना कलाश्चान्द्रा ।। पञ्चदशाहतयोजनसख्या ततस-गुणोर्धविष्कम्म । योजनकर्णार्धस्याद्भूयोजनकर्णविधिना-वा ।। वसुमुनिगुणान्तराष्टकषट्के ६८९३७८ दिन-नाथशुक्रसौम्यानाम् । द्वादशदलषट्केन्द्रियशशाङ्कभूतै-५१५६६ रजनिकर्तु ।। दस्राब्धिषट्करसनवलोचनचन्द्रैर-१२९६६४२ वनिसूनो । रूपाग्निशून्यषट्काष्टिसम्मित १६६०३१ स्याद् बुधोच्चस्य । अष्टकवसुरसषण्मु-निशशाङ्कवसुभिस्तु ८१७६६८८ जीवस्य ।। वसुवसु-शून्याष्टद्विकवेदैरपि ४२८०८८ भार्गवोच्चस्य । एकार्णवार्थ-नवशशिदहनखदस्रै २०३१९५४१ रविसुतस्य ।। त्रिवसुरस-द्विरसानलशशिवेदैरार्क्षपरिधिकर्णार्धम् ।। ४१३६२६८३ ।। वृत्ता चक्रवदवनिस्तमसस्पारे विनिर्मिताधात्रा । पञ्चमहाभूतमया तमध्ये मेरुरमराणाम् ।। तस्यो-परि ध्रुव. खे न द्वन्द्वे पवनरश्मिभिश्चक्रम् । पवनाक्षिप्त भानामुदयास्तमय परिभ्रमति ।। सर्वे जयिन उदक्स्था दक्षिणदिक्स्थो जयी शुक्र ।।

यद्यपि पञ्चसिद्धान्तिका द्वारा तदन्तर्गत पुलिशसिद्धान्त मे युगपद्धति का अस्तित्व

सिद्ध नही होता, परन्तु उन श्लोकों को देखने से जिनमे कि अधिमास और तिथिक्षय का वर्णन है, उसमे युगपद्धति का अभाव भी नही मालूम होता। ब्रह्मगुप्त ने भी इस विषय मे रोमक के अतिरिक्त अन्य किसी सिद्धान्त पर दोषारोपण नही किया है, अत पञ्च-सिद्धान्तिकोक्त पुलिशसिद्धान्त मे युगपद्धति होनी चाहिए और भटोत्पल द्वारा उद्धृत पुलिशसिद्धान्त के वचनो मे है ही। उन वचनो मे जिसे सावन कहा है उसे अन्य सिद्धान्तो मे सौर कहते है और उसका सौर अन्य सिद्धान्तो का सावन है। सावन शब्द का अन्य ग्रन्थोक्त अर्थ स्वीकार करने से उत्पलोद्धृत पुलिशसिद्धान्त के भगणादि मान ये आते है—

नक्षत्रभ्रम १५८२२३७८००। रविभगण ४३२००००।
सावन दिन १५७७९१७८००। चन्द्रभगण ५७७५३३३६।
चन्द्रोच्च ४८८२१९। राहु २३२२२६। मगल २२९६८२४।
बुधशीघ्र १७९३७०००। गुरु ३६४२२०। शुक्रशीघ्र
७०२२३८८। शनि १४६५६४। सौरमास ५१८४००००।
अधिमास १५९३३३६। चान्द्रमास ५३४३३३३६।
तिथि १६०३००००८०। क्षयाह २५०८२२८०। वर्षमान
३६५ दिन १५ घटी ३१ पल ३० विपल।

इससे पञ्चसिद्धान्तिकोक्त तथा उत्पलोद्धृत पुलिशसिद्धान्तो के वर्षमान एक दूसरे से भिन्न मालूम होते है। अत वे दोनो पुलिशसिद्धान्त भी भिन्न-भिन्न होने चाहिए। दूसरी एक विचित्र बात यह है कि भटोत्पल ने निम्नलिखित श्लोक को मूल-पुलिशसिद्धान्तोक्त कहते हुए उद्धृत किया है—

खखाष्टमुनिरामाश्विनेत्राष्ट १५८२२३७८०० शर-
रात्रिपा॰। भाना चतुर्युगेनैते परिवर्ता प्रकीर्तिता ॥

इसमे महायुगीय नक्षत्रभ्रमसख्या बतायी है और वह उपर्युक्त आर्या मे बतलायी हुई नक्षत्रभ्रमसख्या से मिलती है। ऐसा होते हुए भी उत्पल ने इसे मूल पुलिशसिद्धा-न्तोक्त कहा है और इसका छन्द भी अनुष्टुप् है, अत उत्पल के समय (शके ८८८) पञ्चसिद्धान्तिकोक्त पुलिशसिद्धान्त के अतिरिक्त दो और पुलिशसिद्धान्त रहे होगे। इस प्रकार सब मिलाकर तीन हुए। उत्पलोद्धृत आर्याओ के अन्त की ढाई आर्याओ मे से पहिली दो में सृष्टिसंस्था का वर्णन है, जो कि आधुनिक सूर्यसिद्धान्तादि ग्रन्थो के सृष्टिवर्णन सरीखा ही है और अन्त की आधी आर्या मे ग्रहयुति का विचार है। इससे ज्ञात होता है कि उत्पलकालीन आर्याबद्ध पुलिशसिद्धान्त अन्य सिद्धान्तों की भाँति पूर्ण था और उपर्युक्त हेतुओ से पञ्चसिद्धान्तिकोक्त पुलिशसिद्धान्त भी पूर्ण मालूम होता है।

पञ्चसिद्धान्तिकोक्त सूर्यसिद्धान्त के मान आगे लिखे है। उत्पलोद्धृत पुलिश-सिद्धान्त के भगणादि मान उससे ठीक ठीक मिलते है। युगीय सावनदिवस और उस पर अवलम्बित रहने वाले अन्य क्षयाहादि विषय तथा बुध और गुरु के भगण-मान को छोडकर उसकी सभी बाते प्रथम आर्यभट के मानो से मिलती है।

अलबेरुनी नामक एक प्रसिद्ध मुसलमान विद्वान् यात्री गजनी के महमूद के साथ हिन्दुस्तान मे आया था। वह ई० सन् १०१७ से १०३० तक यहा रहा। उसने यहा के शास्त्रो का और विशेषत ज्योतिषशास्त्र का बडी मार्मिकतापूर्वक अन्वेषण किया। वह लिखता है कि पौलस यूनानी (अर्थात् पोलस ग्रीक) ने पुलिशसिद्धान्त बनाया अर्थात् तत्पश्चात् उसके ग्रन्थानुसार हिन्दुओ ने बनाया। प्रो० बेबर के कथनानुसार अलबेरुनी को भारतवर्ष मे ब्रह्मगुप्तसिद्धान्त और पुलिशसिद्धान्त के अतिरिक्त अन्य कोई भी सिद्धान्त ग्रन्थ नही मिला था।

ऊपर बतलाये हुए तीन प्रकार के पुलिशसिद्धान्तो मे से अलबेरुनी को कौन-सा मिला था और पौलस ग्रीक के ग्रन्थ मे बतलाये हुए मान (यदि उनका ग्रन्थ उपलब्ध हो तो) उन तीनो मे से किसी एक के साथ कहा तक मिलते है, इत्यादि बातो का विचार किये बिना अलबेरुनी के लेख के विषय मे विशेष रूप से कुछ नही कहा जा सकता। प्रो० बेबर का कथन यह है कि "पौलस आलेक्जाण्ड्रिकस (Paulus Alexandricus) का ग्रन्थ इस समय उपलब्ध है, पर वह ग्रहगणित ग्रन्थ नही है, बल्कि उसमे फलज्योतिष का विषय है। अत पुलिशसिद्धान्तोक्त मान उसमे नही मिलते, परन्तु उसमे हिन्दू ग्रह-गणित से सम्बन्ध रखनेवाले कुछ पारिभाषिक शब्द अवश्य है", परन्तु बेबर के लेख से यह स्पष्ट नही होता कि वे शब्द कौन-से है और किस प्रकार आये है। पौलस का गणित ग्रन्थ इस समय उपलब्ध नही मालूम होता और उसे प्रत्यक्ष देखे बिना कुछ अनुमान करना ठीक नही है।

शाकल्योक्त ब्रह्मसिद्धान्त मे तीन-चार जगह पुलिशसिद्धान्त का उल्लेख है। अत: शाकल्य के समय पुलिशसिद्धान्त उपलब्ध था, पर पता नही चलता कि वह कौन-सा था। ब्रह्मसिद्धान्त की पृथूदकटीका (शके ९००) के प्रथमाध्याय की टीका में एक जगह लिखा है 'देशान्तररेखा' च पौलिशे पठ्यते'। इससे विदित होता है कि उस समय कोई आर्याबद्ध पुलिशसिद्धान्त उपलब्ध था।

सूर्यसिद्धान्त

पञ्चसिद्धान्तिका मे पाचों सिद्धान्तो का सूर्यचन्द्रानयन पृथक्-पृथक् दिखलाया

है, परन्तु शेष ग्रह केवल सूर्यसिद्धान्त के ही हैं। इससे मालूम होता है कि सूर्यसिद्धान्त को औरो की अपेक्षा अधिक महत्व दिया है। आरम्भ की ही चतुर्थ आर्या मे सावित्र को सब से स्पष्ट कहा है। उसे सबसे अधिक महत्व देने के कारण दृक्प्रतीति मे आनेवाली स्पष्टता ही मालूम होती है।

पञ्चसिद्धान्तिका की १४वी आर्या मे सूर्यसिद्धान्तानुसार अधिमास इत्यादि बताये हैं। नवमाध्याय की २६ और दशमाध्याय की सब ७ आर्याओ मे सूर्यचन्द्रानयन और ग्रहणादि का उल्लेख है। ११वें अध्याय के सब ६ श्लोको मे ग्रहण का ही विचार है। और वह भी सूर्यसिद्धान्तानुसार ही मालूम होता है। १६वे अध्याय मे सब २७ श्लोक है। उनमे भौमादि सब मध्यम ग्रहो का आनयन, उनका स्पष्टीकरण और उनके वक्रत्व, मार्गित्व, उदय तथा अस्तादि का गणित है।

जिन श्लोको मे सूर्यसिद्धान्तानुसार अधिमास इत्यादि के मान, सूर्य, चन्द्रमा तथा अन्य ग्रहो के भगण और करणकालीन क्षेपको का वर्णन है, उन्हे यहाँ लिखते हैं। इनसे उत्पन्न मान आगे लखेगे।[1]

> वर्षायुतेधृतिघ्ने १८००० नववसुगुणरसरसा ६६३८९ स्युरधिमासाः। सावित्रे शरनवखेन्द्रियार्णवाशा १०४५०९५ स्तिथिप्रलयाः ॥१४॥ द्युगणेऽर्कोष्टशतघ्ने ८०० विपक्षवेदा-र्णवे ४४२ऽर्कसिद्धान्ते। स्वरखाश्विद्विनवयमो २९२२०७ द्धृते क्रमाद्दिनदलेऽवन्त्याम् ॥१॥ नवशतसहस्र ९००००० गुणिते स्वरैकपक्षाम्बरस्वरतू ६७०२१७ने। षड्व्योमेन्द्रियनववसु-विषयजिनै २४५८९५०६ र्भाजिते चन्द्र ॥२॥ नवशत ९०० गुणिते दद्याद्रसविषयगुणाम्बरर्तुयमपक्षान् २२६०३५६। नववसुसप्ताष्टाम्बरनवाश्वि २९०८७८९ भक्ते शशाङ्कोच्चम् ॥ शशिविषय ५१ घ्नानीन्दो खार्काग्नि ३१२० हृतानि मण्डलानि ऋणम्। स्वोच्चे दिग्घ्नानि धनं स्वरदस्रयमोद्धृते २२७ विकला ॥४॥
>
> अध्याय ९
>
> एष निशार्धेवन्त्या ताराग्रहणेर्कसिद्धान्ते। तत्रेन्दुपुत्रशु-क्रौ तुल्यगतौ मध्यमार्केण ॥११॥ जीवस्य शताभ्यस्तं १००

---

१. पञ्चसिद्धान्तिका की मूल पुस्तक बड़ी अशुद्ध है। उपपत्ति की दृष्टि से श्लोकों का जो स्वरूप शुद्ध मालूम हुआ है, वही यहाँ लिखा है।

द्वित्रियमाग्नित्रिसागरै ४३३२३२ विभजेत्। द्युगण कुज-
स्य चन्द्रा १ हतन्तु सप्ताष्टषड् ६८७ भक्तम् ।।२।। सौरस्य
सहस्रगुण ऋतुरसशून्यर्तुषट्कमुनिरवैकैः १०७६६०६६। य-
ल्लब्ध ते भगणा शेषा मध्या ग्रहा क्रमेणैव ।।३।। राशिचतुष्ट-
यमशद्वयकलाविशतिर्वसुसमेता. ४।२।२८। नववेदाश्च ४९
विलिप्ता शनेर्धनं मध्यमस्यैवम् ।।५।। अष्टौ भागा
लिप्तर्तव खमक्षी गुरौ विलिप्ताश्च। क्षेप कुजस्य
यमतिथिपञ्चत्रिशच्च राश्याद्यः ।।२।१५।३५।। शतगुणि-
त बुधशीघ्र स्वरनवसप्ताष्टभाजिते ८७९७ क्रमश.। अ-
त्रार्धपञ्चमा ४।३० स्तत्पराश्च भगणा हता क्षेप्याः ।।७।।
सितशीघ्र दशगुणिते द्युगणे भक्ते स्वरार्णवाश्वियमैः
२२४७। अर्धैकादश देया विलिप्तिका भगणसगुणिता।
सिहस्य वसुयमाशाः २८ स्वरेन्दवो १७ लिप्तिका ज्ञशीघ्र-
धनम्। शोध्याः सितस्य विकला. शशिरसनवपक्षगुणदह-
ना. ३३२९६१ ।।९।।

अध्याय १६।

इनमे आरम्भ की दो आर्याओ द्वारा वर्षमान ३६५ दिन १५ घटी ३१ पल ३० विपल सिद्ध होता है. कलियुग का आरम्भ यदि गुरुवार की मध्यरात्रि से माने (अर्थात् उस समय सूर्य और चन्द्रमा का भोग पूर्ण स्वीकार कर ले) तो इस वर्षमान द्वारा शके ४२७ में मध्यम मेष सक्रान्ति चैत्र कृष्ण १४ रविवार को ४८ घटी ९ पल पर आवेगी (अर्थात् उस समय मध्यम रवि शून्य होगा)। 'द्युगणेऽर्कोष्टशतघ्ने. ' श्लोक द्वारा रविक्षेपक ११ राशि २९ अश २७ कला २० विकला आता है। यह अवन्ती के मध्याह्न-काल का है, परन्तु श्लोक में यह नही बताया कि यह क्षेपक किस दिन का है। चैत्र कृष्ण १४ रविवार का मध्याह्नकालिक अर्थात् मध्यम मेषसक्रान्ति काल से ३३ घटी ९ पल पहिले का गणितागत मध्यम रवि क्षेपक से ठीक मिलता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि पञ्चसिद्धान्तिकोक्त सूर्यसिद्धात मे युगारम्भ मध्यरात्रि से माना गया है और उसमे युगपद्धति है। मध्यरात्रि से युगारम्भ मानने से आगे बतलाये हुए भगणो की क्षेपको से ठीक सगति लगती है। यह बात भी उपर्युक्त कथन की पुष्टि करती है।[1]

१. पहिले गुरुवार की मध्यरात्रि मे युगारम्भ मानकर गतिस्थिति की संगति लगा लेने के बाद संगति लगने का हेतु दिखलाते हुए पहिले की कल्पित बात को सिद्ध करने में अन्योन्याश्रय दोष आ जाता है, परन्तु ज्योतिषगणित में बहुत-सी ऐसी बातें है जिनके

उपर्युक्त श्लोको द्वारा निम्नलिखित मान ज्ञात होते है --

वर्षमान = ३६५ दिन १५ घटी ३१ पल ३० विपल।

महायुग मे (४३२०००० वर्षो मे)

नक्षत्रभ्रम	१५८२२३७८००		
रविभगण	४३२००००		
सावनदिन	१५७७९१७८००		
चन्द्रभगण	५७७५३३३६		
चन्द्रोच्चभगण	४८८२१९		
राहु	×	×	
मगल	२२९६८२४		
बुध	१७९३७०००	सौरमास	५१८४००००
गुरु	३६४२२०	अधिमास	१५९३३३६
शुक्र	७०२२३८८	चान्द्रमास	५३४३३३३६
शनि	१४६५६४	तिथि	१६०३०००००८०
		क्षयाह	२५०८२२८०

विषय में निश्चित रूप से कुछ मालूम न होने के कारण इसी पद्धति का आश्रय लेना पडता है । उपर्युक्त श्लोकों में बताये हुए सब विषयों के विचार द्वारा निश्चित किये हुए फल ऊपर लिखे हैं। उन्हें सिद्ध करने में मुझे कितना श्रम हुआ, कितना विचार करना पड़ा, कितनी भिन्न-भिन्न रीतियों द्वारा तथा भिन्न-भिन्न बातों को प्रमाण मान कर उनके अन्तरों का निरीक्षण करना पड़ा, इसे तज्ज्ञ लोग ही समझ सकते हैं । पहिले पञ्चसिद्धान्तिका ग्रन्थ ही १४०० वर्ष पुराना है, उसने भी उसकी कोई टीका नहीं, तिस पर भी हमें जो ग्रन्थ मिला वह बिलकुल अशुद्ध। पुस्तक अशुद्ध होने के कारण ऊपर लिखे हुए श्लोकों में जिन शब्दों के सामने तद्‌बोधक अंक लिखे हैं, उनकी सत्यता के विषय मे प्रत्येक स्थान मे सन्देह होता था और इस पुस्तक में लिखे हुए भगणादिमान और वर्षमान आजकल के प्रचलित किसी भी सिद्धान्त से सर्वात्मना नहीं मिलते थे। इन सब अड़चनों के होते हुए भी गणित द्वारा (सन् १८८७ के अगस्त और १८८८ के फरवरी महीनों के बीच में) गुणक, भाजक और क्षेपकों की संगति लग गयी। विशेषतः भास्वती-करण और खण्डखाद्य ग्रन्थों की ग्रहस्थिति का पञ्चसिद्धान्तिकोक्त सूर्यसिद्धान्त की ग्रहस्थिति से बहुत अंशों में साम्य दिखलाई पड़ा। इसी कारण तीनों के विषय में जो सन्देह था, वह जाता रहा, और उनकी सत्यता के विषय में निश्चय हो गया। उस समय हमें जो आनन्द हुआ वह वर्णनातीत है, परन्तु यहां यह कह देना भी आवश्यक है कि ऐतिहासिक दृष्ट्या इस कार्य का कुछ महत्व होने के अतिरिक्त इसमें और कोई

उपर्युक्त श्लोको द्वारा निष्पन्न क्षेपक अर्थात् पञ्चसिद्धान्तिकोक्त सूर्यसिद्धान्त द्वारा लायी हुई करणारम्भकालीन ग्रहस्थिति यहा लिखी जाती है। इसमे सूर्य, चन्द्र और चन्द्रोच्च के क्षेपक शके ४२७ चैत्र कृष्ण १४ रविवार के मध्याह्नकाल के है और शेष भौमादिको के क्षेपक मध्यरात्रि के है। इनमे राहु नही है। क्षेपक राश्यादि है।

सूर्य	११।२९।२७।२०	बुध	४।२८।१७।७
चन्द्र	११।२०।११।१६	गुरु	०।८।६।२०
चन्द्रोच्च	९।९।४४।५३	शुक्र	८।२७।३०।३५
मंगल	२।१५।३५।४	शनि	४।२।२८।४९

नवम अध्याय की पाचवी आर्या मे राहु की गतिस्थिति का वर्णन है, परन्तु उसका अर्थ नही लगता। १६वे अध्याय की प्रथम आर्या मे स्पष्ट कहा है कि क्षेपक मध्यरात्रि के है, पर उसमे यह नही बतलाया है कि वे किस दिन के है। उपर्युक्त भगणो द्वारा लाये हुए चैत्र कृष्ण १४ रविवार की मध्यरात्रि के अर्थात् उस दिन होनेवाली मध्यम मेष सक्रान्ति से ३ घटी ९ पल पहिले के ग्रह इन श्लोको में लिखे हुए क्षेपको से मिलते है। छठी आर्या मे मगल का क्षेपक है। मालूम होता है उसकी विकलाएँ छोड दी गयी है। नवे श्लोक मे बुधक्षेपक की विकलाएँ भी छोड़ दी गयी है और शुक्र का क्षेपक ४ विकला कम है। म समझता हूँ, इन त्यक्त विकलाओ का कोई विशेष मूल्य नही है। इन्हे छोड देने से कोई हानि न होगी।

उपर्युक्त भगणादिको की संख्या और वर्षमान आगे लिखे हुए वर्तमान सूर्यसिद्धान्त के भगणादिमान और वर्षमान से नही मिलते। इससे पञ्चसिद्धान्तिकोक्त सूर्यसिद्धान्त और वर्षमान सूर्यसिद्धान्त भगणादि मूलतत्त्वों के विषय मे एक दूसरे से भिन्न मालूम होते हैं। इनमे से दूसरा पहिले की अपेक्षा नवीन है, क्योकि वराहमिहिर ने केवल पहिले का ही संग्रह किया है। द्वितीय सूर्यसिद्धान्त के रचनाकाल का विचार आगे किया जायगा।

पञ्चसिद्धान्तिकोक्त सूर्यसिद्धान्त के उपर्युक्त भगणादिमान उत्पलोद्धृत पुलिश सिद्धान्त के मानो से, जो कि पहिले लिखे जा चुके हैं, ठीक-ठीक मिलते है। आगे चलकर दिखायेंगे कि ब्रह्मगुप्त ने चन्द्रोच्च और राहु को छोडकर इसके शेष सभी मान 'खण्डखाद्य' मे लिये है। वर्षमान तथा बुध और गुरु के भगणों को छोड़कर इसके अवशिष्ट सभी मान आगे लिखे हुए आर्यभटोक्त मानों से मिलते है। गुरु के अतिरिक्त अन्य मानो मे वराह-मिहिर द्वारा आविष्कृत, पञ्चसिद्धान्तिका के १६वे अध्याय की दशम और एकादश

विशेषता नहीं है। यह ग्रन्थ लिखते समय इस प्रकार के और भी कई आनन्ददायक प्रसंग आये।

आर्याओ मे बतलाये हुए बीज का संस्कार कर भास्वतीकरणोक्त मध्यमग्रहो के क्षेपक लाये गये है। आगे इन सब बातों का विशेष विवेचन किया जायगा।[1]

अलबेरुनी का कथन है कि 'सूर्यसिद्धान्त लाटकृत है'[2] परन्तु पञ्चसिद्धान्तिकोक्त सूर्यसिद्धान्त लाटकृत नही है। प्रो० बेबर[3] के कथनानुसार सूर्यसिद्धान्त का टालमी से सम्बन्ध होना चाहिए। आगे वर्तमान सूर्यसिद्धान्त का विवेचन करते समय इन दोनो का भी विचार किया जायगा।

यहा तक पाचो सिद्धान्तो का विचार किया गया। उसमे उनके रचनाकाल का भी निर्णय हो चुका। रचनाकाल के अनुसार इन पाचो का क्रम यह है—पैतामह, वासिष्ठ, पौलिश, सौर और रोमक। मेरे मतानुसार इनमे रोमक शकारम्भ के पहिले का है और शेष चार उससे भी प्राचीन हैं।

शके ४२० से पूर्व के पौरुष ज्योतिष ग्रन्थकार

पञ्चसिद्धान्तिका के अतिरिक्त शके ४२० से प्राचीन ज्योतिष ग्रन्थकारो के नाम जानने का अन्य कोई भी साधन नही है। उसमे कुछ ग्रन्थकारो के नाम बताये हैं। कहा है—

पञ्चभ्यो द्वावाद्यौ (पौलिशरोमकसिद्धान्तौ)
व्याख्यातौ लाटदेवेन ।।३।। अध्याय १।

---

१. गुरुभगण ३६४२२० मानने से भास्वतीकरणोक्त क्षेपक नही आता। ३६४२२४ मानने से आता है, परन्तु पञ्चसिद्धान्तिका के १६वें अध्याय की द्वितीय आर्या के पूर्वार्ध में बतलाये हुए गुणकभाजको द्वारा गुरुभगण ३६४२२० ही सिद्ध होते हैं। भगणसंख्या ३६४२२४ मानने से ४३३२७ दिनों में १०० भगण पूर्ण होंगे। उत्पलोद्धृत पुलिश-सिद्धान्त और वर्तमान सूर्यसिद्धान्त में गुरुभगण ३६४२२० ही हैं। इसी संख्या द्वारा खण्डखाद्योक्त गुरुक्षेपक मिलता है। प्रथम आर्यभट के सिद्धान्त में गुरुभगण ३६४२२४ है। वराहमिहिर ने बृहत्संहिता के अष्टम अध्याय में इष्ट शक मे बार्हस्पत्यसंवत्सर लाने की रीति लिखी है। उसमें बतलाया हुआ क्षेपक गुरुभगण ३६४२२४ मानने से मिलता है।

२. डा० कर्न की बृहत्संहिता-प्रस्तावना और बर्जेश के सूर्यसिद्धान्त के अनुवाद का द्वितीय पृष्ठ देखिए।

३. बर्जेश के सूर्यसिद्धान्त के अनुवाद का पृ० ३ देखिए।

लाटाचार्येणोक्तो यवनपुरे चास्तगे सूर्ये।
रव्युदये लङ्कायां सिंहाचार्येण दिनगणोऽभिहित ॥४४॥
यवनाना निशि दशभिर्गतैर्मुहूर्तैश्च तद्गुरुणा।
लङ्कार्धरात्रसमये दिनप्रवृत्ति जगाद चार्यभट ॥४५॥
भूय. स एव सूर्योदयात्प्रभृत्याह लङ्कायाम् ॥ अध्याय १४

१४वे अध्याय के ये श्लोक बडे महत्व के है। इनका तात्पर्य यह है कि लाटाचार्य के कथनानुसार अहर्गणारम्भ यवनपुर के सूर्यास्तकाल से होना चाहिए। (यवनपुर का सूर्यास्त लङ्का की अर्धरात्रि के समय होता है)' सिहाचार्य ने लङ्का के सूर्योदय से और उनके गुरु ने यवनो के देश मे रात्रि के १० मुहूर्त (=२० घटी) बीत जाने के बाद अहर्गण का आरम्भ किया है। आर्यभट ने एक बार लङ्का की आधी रात से और दूसरी बार वही के सूर्योदयकाल से दिनप्रवृत्ति बतायी है।[1] यहा पता नही चलता कि सिहाचार्य के गुरु का नाम क्या है ?

अन्तिम अध्याय मे कहा है—

प्रद्युम्नो भूतनये जीवो सौरे च विजयनन्दी।

पञ्चसिद्धान्तिका मे बतलाये हुए ये नाम ब्रह्मगुप्त के सिद्धान्त मे भी आये है। उन्होने इनके गुणो का वर्णन कही भी नही किया है। सब मे कुछ न कुछ दोष ही दिखलाये है। इनमे से आर्यभट का वर्णन आगे लिखा है। श्रीषेण ने भी रोमक मे कु,छ मान लाट द्वारा लिये है, यह पहिले बता चुके है। वराहमिहिर का कथन है कि लाट ने पुलिश और रोमक सिद्धान्तो की व्याख्या की है। व्याख्या में प्राय' लाट के स्वतन्त्र मत नही होगे, अत. उनका अन्य कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ होना चाहिए। निम्नलिखित ब्रह्मगुप्त के श्लोक से भी इस बात की पुष्टि होती है—

श्रीषेणविष्णुचन्द्रप्रद्युम्नार्यभटलाटसिंहानाम्।
ग्रहणादि विसंवादात् प्रतिदिवस सिद्धमकृतत्वम् ॥४६॥
[2]अङ्कचिति विजयनन्दि प्रद्युम्नादीनि पादकरणानि।
यस्मात्तस्मात्तेषा न दूषणान्यत्र लिखितानि ॥५८॥

अध्याय ११

---

१. लङ्कोदय से दिनप्रवृत्ति बतलानेवाला आर्यभट का वचन आगे लिखा जायगा, पर आर्यभटीय में लङ्का की अर्धरात्रि से दिनप्रवृत्ति सूचित करनेवाला वचन कहीं भी नहीं मिलता।

२. अङ्कचिति भी किसी व्यक्ति विशेष का नाम जान पड़ता है।

मालूम होता है कि पहले सिंहाचार्य का भी कोई ग्रन्थ था। ऊपर लिखी हुई एक आर्या में वराहमिहिर ने कहा है कि मगल के विषय में प्रद्युम्न और गुरु तथा शनि के विषय में विजयनन्दी भग्न हो गया। ब्रह्मगुप्त ने इन दोनो के ग्रथो को पादकरण कहा है। पूर्वोक्त "युगयातवर्षभगणान्. श्रीषेणेन गृहीत्वा " आर्या में भी ब्रह्मगुप्त ने कहा है कि 'विजयनन्दी कृत पाद श्रीषेण ने लिया।' इसका अभिप्राय कुछ समझ में नही आता। मालूम नही, पाद शब्द का अर्थ युगपाद है या और कुछ।

अस्तु, यह सिद्ध हो गया कि लाट[1] सिंह, प्रद्युम्न और विजयनन्दी शके ४२० से प्राचीन ज्योतिष ग्रन्थकार हैं।

वर्तमान सिद्धान्तपञ्चक

सूर्यसिद्धान्त, सोमसिद्धान्त, वसिष्ठसिद्धान्त, रोमशसिद्धान्त और शाकल्यसंहितोक्त ब्रह्मसिद्धान्त

इन पाचो में से एक सोमसिद्धान्त को छोडकर शेष चार नाम के सिद्धान्तो का वर्णन पञ्चसिद्धान्तिका में आया है। पहिले बता चुके हैं और अग्रिम विवेचन द्वारा भी यह विदित हो जायगा कि इस समय जिन सूर्यादि सिद्धान्तो का वर्णन करने जा रहे हैं वे पञ्चसिद्धान्तिकोक्त सिद्धान्तो से भिन्न हैं। ये सम्प्रति उपलब्ध हैं और पञ्चसिद्धान्तिकोक्त सिद्धान्तो से भिन्न हैं, अत इन्हे वर्तमान सिद्धान्तपञ्चक कहेंगे। यद्यपि सोमसिद्धान्त भी दो प्रकार का है या था, इसका कोई स्पष्ट प्रमाण नही मिलता, परन्तु वह अन्य चारो से पूर्णतया साम्य रखता है, अत उसका भी यही विचार करना अच्छा होगा। पहिले पाचो का सामूहिक रूप से थोडा विचार करने के बाद प्रत्येक का पृथक्-पृथक् विवेचन करेंगे।

इन पाचों सिद्धान्तो में लिखा है कि ये अपौरुषेय हैं और लोग ऐसा ही मानते भी हैं। ये पाँच सिद्धान्त, पञ्चसिद्धान्तिकोक्त पाच सिद्धान्तो में से कुछ या सब और विष्णुधर्मोत्तरसिद्धान्तो को छोडकर आजकल अन्य कोई भी सिद्धान्त अपौरुषेय नही माना जाता। कदाचित् पहले किसी अन्य ग्रन्थ को भी अपौरुष मानते रहे हो, पर अब वह उपलब्ध नही है। व्याससिद्धान्त, गर्गसिद्धान्त, पराशरसिद्धान्त और नारदसिद्धान्त भी

---

१. वेदाङ्गज्योतिष का अवलोकन करने से तथा उपर्युक्त विवेचन द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रो० बेबर की यह शंका कि 'लाट ही लगध होगा' बिलकुल भ्रमपूर्ण है।

अपौरुषेय ही है, पर उन्हें सिद्धान्त कहने की अपेक्षा संहिता कहना अच्छा होगा। इस समय इन व्यावसादिकों के नाम का किसी ऐसे सिद्धान्तग्रन्थ का उपलब्ध होना, जिसमे विषयक्रम सिद्धान्तग्रन्थों की भाँति हो, हमें असम्भव मालूम होता है। हो तो भी अभी तक हमे ऐसा ग्रन्थ देखने का अवसर नही प्राप्त हुआ है। यूरोपियन विद्वानों ने पाराशरसिद्धान्त के भगणादि मानों का उल्लेख किया, पर वे मान वही है जो कि द्वितीय आर्यभट ने पाराशरसिद्धान्तोक्त बतलाते हुए अपने सिद्धान्त के एक अध्याय मे लिखे है। स्वतन्त्र पाराशरसिद्धान्त उपलब्ध नही है। द्वितीय आर्यसिद्धान्त का विचार करते समय इस विषय का विशेष विवेचन किया जायगा। विष्णुधर्मोत्तरब्रह्मसिद्धान्त का भी आगे थोडा विचार करेंगे। पौरुष सिद्धान्तो मे सबसे प्राचीन प्रथम आर्यभट का सिद्धान्त है। उसका रचनाकाल शके ४२१ है। उपर्युक्त पाचो सिद्धान्त इससे प्राचीन ही होगे, यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता, पर हम समझते है, इनमे से कोई न कोई इससे प्राचीन अवश्य होगा। ये सभी सिद्धान्त समान है और अपौरुषेय माने जाते है, अतः पञ्चसिद्धान्तिकोक्त सिद्धान्तो के बाद इनका विचार करना क्रमप्राप्त और योग्य है। पहिले इन (सूर्यसिद्धान्त, सोमसिद्धान्त, वसिष्ठसिद्धान्त, रोमक और शाकल्योक्त ब्रह्मसिद्धान्त) पाचो के भगणादि मान लिखते है। ये सब मे समान है।

सृष्ट्युत्पत्तिवर्षसख्या १७०६४०००।

एक महायुग मे

नक्षत्रभ्रम	१५८२२३७८२८	गुरु	३६४२२०
रविभगण	४३२००००	शुक्र	७०२२३७६
सावनदिवस	१५७७९१७८२८	शनि	१४६५६८
चन्द्रभगण	५७७५३३३६	चान्द्रमास	५३४३३३३६
चन्द्रोच्च	४८८२०३	चान्द्रतिथि	१६०३००००८०
चन्द्रकेन्द्र	५७२६५१३३	सौरमास	५१८४००००
चन्द्रपात	२३२२३८	अधिमास	१५९३३३६
मगल	२२९६८३२	क्षयाह	२५०८२२५२
बुध	१७९३७०६०		

कल्प मे

	उच्चभगण	पातभगण
सूर्य	३८७	×
मंगल	२०४	२१४
बुध	३६८	४८८

गुरु	९००	१७४
शुक्र	५३५	९०३
शनि	३९	६०

युगपद्धति

उपोद्घात मे युगपद्धति का सामान्य वर्णन कर चुके है। यहा सृष्ट्युत्पत्ति की वर्ष सख्या १७०६४००० बतायी है। इसका थोडा विचार करना होगा। ब्रह्मगुप्त और उनके अनुयायियो का मत यह है कि सृष्टि की उत्पत्ति ब्रह्मदिन अर्थात् कल्प के आरम्भ मे ही हुई। उस समय सब ग्रह, उनके उच्च और पात मेषारम्भ मे एकत्र थे। आधुनिक सूर्यसिद्धान्त और उसके अनुयायी अन्य सिद्धान्त कल्पारम्भ मे सृष्टि का आरम्भ नही मानते। वे कहते है कि ब्रह्मा को सृष्टि रचने मे दिव्य ४७४०० वर्ष अर्थात् कलियुग ऐसे ३९$\frac{1}{2}$ युग लगे। कल्पारम्भ के इतने समय बाद सब ग्रह उनके उच्च और पात एकत्र थे, और तत्पश्चात् ग्रहो की गति आरम्भ हुई। द्वितीय आर्य भट का भी प्राय यही मत है, पर उनकी सृष्ट्युत्पत्ति की वर्षसख्या इससे भिन्न है। उसका वर्णन आगे करेगे। प्रथम आर्य भट का मत भी आगे दिखलायेगे। पञ्चसिद्धान्तिकोक्त सूर्यादि सिद्धान्तो का मत जानने का कोई मार्ग नही है।

आधुनिक सूर्यसिद्धान्तानुसार वर्तमान कलियुग के आरम्भ मे मध्यम मान से सब ग्रह एक स्थान मे आते है। इसी प्रकार कृतयुग के अन्त मे भी जब कि सूर्यसिद्धान्त बना, सब ग्रह एकत्र थे। ग्रहो की महायुगीय भगणसख्या ४ से निःशेष हो जाती है अत. (महायुग − ४ =) २$\frac{1}{2}$ कलियुग मे सबके भगण पूर्ण हो जाते है अर्थात् २$\frac{1}{2}$ कलियुग तुल्य समय के बाद सब ग्रह एकत्र हो जाया करते है। ब्रह्मदिन के आरम्भ से वर्तमान कलियुगारम्भ पर्यन्त (७१ × ६ × १० + ७ × ४ + २७ × १० + ९ =) ४५६७ कलियुग तुल्य समय बीत चुका है। यह संख्या २$\frac{1}{2}$ से नही कटती। यदि इसमे से कुछ वर्ष सृष्ट्युत्पत्ति सम्बन्धी न माने तो कल्पारम्भ मे सब ग्रह एक स्थान में नही आते। इसमे से सृष्टिरचना का ३९$\frac{1}{2}$ कलियुग तुल्य समय निकाल देने से ४५२७ $\frac{1}{2}$ कलियुग शेष रह जाते है। यह सख्या २$\frac{1}{2}$ से नि.शेष हो जाती है। इस प्रकार सृष्ट्यारम्भ मे सब ग्रह एकत्र मानने से वर्तमान कलियुग के आरम्भ में और उसके पूर्व कृतयुग के अन्त मे भी सब एक स्थान मे आते है। इसी प्रकार ग्रहो के उच्च तथा पातों की एक कल्प सम्बन्धी उपर्युक्त भगणसख्या के अनुसार वे सृष्ट्यारम्भ के अतिरिक्त अन्य किसी भी समय एकत्र नही होते हैं।

सामान्य वर्णन

इन पांचों सिद्धातो मे सूर्य सिद्धान्त बहुत प्रसिद्ध है। उस पर कई टीकाए हुई है और वह मुद्रित भी हो चुका है। शेष चार सिद्धान्तो की विशेष प्रसिद्धि नही है। इनमे वसिष्ठसिद्धान्त काशी में विन्ध्यश्वरीप्रसाद शर्मा ने छपाया है। इसमे ४ अध्याय और ९४ श्लोक है। अन्य कोई भी सिद्धान्त मैंने मुद्रित रूप मे नही देखा है। इन चारो सिद्धान्तो की पुस्तक मुझे बडे परिश्रम से प्राप्त हुई है। वसिष्ठसिद्धान्त भूगोलाध्याय नाम की एक पुस्तक डेक्कन कालेज के सग्रह मे है (न० ७८ सन् १८६९–७०)। इसकी शब्दरचना काशी मे छपे हुए वसिष्ठसिद्धान्त से भिन्न है। इसमे दो अध्याय और सब १३३ श्लोक है। प्रथमाध्याय के १२१ श्लोकों मे सृष्टिसस्था का वर्णन है। वह अन्य सिद्धान्तो सरीखा ही है। द्वितीयाध्याय मे केवल ग्रहों के कक्षामान है। इन दोनो वसिष्ठसिद्धातो के भगणादि मान बिलकुल समान है। अत दो वसिष्ठसिद्धान्त न कहकर एक ही कहना अच्छा होगा। आगे इसका थोडा विशेष विवेचन करेंगे।

पांचो सिद्धान्तो के भगणादि मान यद्यपि समान है, तथापि उनमे थोडी भिन्नता भी पायी जाती है। उसका भी विचार करना आवश्यक है। इस छपे हुए वसिष्ठसिद्धान्त की ही एक हस्तलिखित प्रति डेक्कन कॉलेज के संग्रह में है (न० ३६ सन् १८७०-७१)। उसके प्रथमाध्याय मे निम्नलिखित श्लोक मिला है—

> नृपेषुसप्तवह्नच[1] श्वि (?) यमेभेषुधरोन्मिता: १५८२२३७५१६।
> भभ्रमा. पश्चिमायाञ्च दिशि स्युर्वै महायुगे ।।१७।।

इस श्लोक मे नक्षत्र भ्रम बतलाया है। इसके अनुसार महायुग मे १५७७९१७५१६ सावन दिवस आते है, अर्थात् वर्षमान ३६५ दिन १५ घटी ३१ पल १५ विपल ४८ प्रतिविपल होता है। यह वर्षमान अन्य सभी सिद्धान्तो से भिन्न है। काशी की छपी हुई पुस्तक मे यह श्लोक नही है। वसिष्ठसिद्धान्त की उपर्युक्त दूसरे प्रकार की प्रति (डे० का० सं० नम्बर ७८ सन् १८६९–७०) मे भी नक्षत्रभ्रम नही लिखा है और दूसरी बात यह कि सिद्धान्ततत्त्वविवेककार कमलाकर (शके १५८०) ने सूर्यसिद्धान्त से सर्वात्मना साम्य रखनेवाले जो सिद्धान्त बताये है[2] उनमे यही वसिष्ठसिद्धान्त भी है। इससे डे० का० सं० की प्रति का उपर्युक्त श्लोक प्रक्षिप्त मालूम होता है।

---

१. मूल पुस्तक में आठवां अक्षर नहीं है। वहां कोई ऐसा अक्षर होना चाहिए, जिसका अर्थ २ हो, इसलिए मैंने उसके स्थान में 'श्वि' रखा है।

२. भगणमागाध्याय श्लोक ६५।

इसीलिए मैने ऊपर वसिष्ठसिद्धान्त के भगणादि मान अन्य सिद्धातों के समान ही लिखे है।

रचनाकाल

अब इन पाचो सिद्धान्तो के रचनाकाल का थोड़ा-सा विचार करेगे।

बेटली ने ज्योतिष सिद्धान्तो का रचनाकाल जानने के लिए एक नियम बनाया है। उसके अनुसार उन्होने वर्तमान सूर्यसिद्धान्त का रचनाकाल सन् १०९१ ई० (शके १०१३) निश्चित किया है। वह नियम यह है—

जिस सिद्धान्त का रचनाकाल निश्चित करना हो उसके द्वारा सूर्य के सम्बन्ध से मध्यम ग्रहो की जो स्थिति आती हो, उसका आधुनिक यूरोपियन ग्रन्थो द्वारा लाई हुई सूर्यसम्बन्धी मध्यम ग्रहस्थिति से तुलना करते हुए यह देखना चाहिए कि उसका कौन सा ग्रह किस शक में शुद्ध आता है। इसके बाद उन समयो की सगति लगाते हुए ग्रन्थ का रचनाकाल निश्चित करना चाहिए।

सामान्यत. यह पद्धति ठीक मालूम होती है और बेटली ने जो बाते पहिले कल्पित कर ली है उन्हे भी मान लेने मे कोई त्रुटि नही है, परन्तु सब प्रकार विचार करने से इस रीति का उपयोग करना अनुचित प्रतीत होता है, अत इस रीति द्वारा निश्चित किये हुए काल विश्वसनीय नही होगे। इसके कई कारण है। एक तो बेटली का सबसे बडा दोष यह है कि उन्होने हिन्दू-ग्रहगणित-ग्रन्थ और यूरोपियन शुद्ध कोष्ठको द्वारा लाये हुए मध्यम ग्रहो की तुलना की है। वस्तुत आकाश मे मध्यम ग्रह नही दिखाई देते अर्थात् गणित द्वारा जो मध्यम भोग आता है तदनुसार आकाश मे उनका दर्शन नही होता। वहा उनके स्पष्टभोग दिखाई देते है। भारतीय ज्योतिषियो ने जब जब अपने मूल ग्रन्थ बनाये अथवा मूलग्रन्थोक्त ग्रहस्थिति का आकाश की प्रत्यक्ष स्थिति से विरोध देख कर जब जब उनमे बीजसस्कार कर उन्हे स्वकालानुसार शुद्ध किया तब तब उन्होने वेध द्वारा आकाश मे स्पष्ट ग्रहो का ही निरीक्षण किया होगा, न कि मध्यम ग्रहो का। मध्यम और स्पष्ट ग्रहो के अन्तर को सामान्यत फलसस्कार कह सकते है। यदि यूरोपियन और भारतीय ग्रन्थो के फलसस्कार तथा उनका सस्कार करने की रीति, ये दोनो बाते समान हो तो मध्यम ग्रहो की तुलना द्वारा ग्रन्थ का रचनाकाल निश्चित करना असगत न होगा, परन्तु वास्तविक स्थिति ऐसी नही है। किसी भी भारतीय ग्रन्थ द्वारा सूर्य का फलसंस्कार २ अश १० कला से कम नही आता, परन्तु यूरोपियन ग्रन्थो के अनुसार वह इस समय १ अश ५५ कला है,। यूरोपियन ग्रन्थकार कहते है कि यह संस्कार सर्वदा एकरूप नही रहता। शक के ३००० वर्ष पहिले इसका मान

२ अश १० कला था और उसके बाद से क्रमश कम होता जा रहा है। चद्रमा का फल-सस्कार हिन्दू ग्रन्थो के अनुसार लगभग ५ अश है, परन्तु यूरोपियन ग्रन्थानुसार कभी-कभी ८ अश तक चला जाता है। हिन्दुओ के फलसस्कार मे अशुद्धि बहुत अधिक है। इसी प्रकार अन्य ग्रहो के फलस्सस्कार भी कुछ-कुछ भिन्न है। मध्यम ग्रह द्वारा स्पष्ट-ग्रह लाने की रीति और उसके मन्दोच्च शीघ्रोच्चादि उपकरण भी दोनो के किञ्चित् भिन्न है, अत भारतीय ग्रन्थ और यूरोपियन ग्रन्थो के मध्यम ग्रह समान हो तो भी यह नही कहा जा सकता कि दोनो के स्पष्टग्रह भी समान ही होगे अथवा यदि दोनों के स्पष्टग्रह समान हो तो उनके द्वारा लाए हुए मध्यम ग्रह भी समान ही आवेगे, इसका कोई निश्चय नही है। इसी प्रकार उन दोनो का अन्तर भी सर्वदा नियमित नही रहेगा। किसी विवक्षित स्थिति मे यदि दोनो के मध्यम ग्रह और साथ ही साथ स्पष्टग्रह भी समान हो, तो किसी अन्य परिस्थिति मे वे भिन्न भी हो सकते है। उदाहरणार्थ, शनि सिह राशि मे हो और उस समय यदि दोनो के मध्यम और स्पष्ट परस्पर समान हो जायँ तो शनि के वृश्चिक राशि मे रहने पर भी वे समान ही होगे, यह नही कहा जा सकता। इस प्रकार फलसस्कार के मान तथा उसे लाने की रीति मे विभिन्नता होने के कारण दोनो ग्रन्थो के फलो में किसी समय थोडा अन्तर होते हुए भी उसके अनुसार रचनाकाल निश्चित करने मे शताब्दियो का अन्तर पड सकता है। उदाहरण के लिए बेटली की बतलायी हुई आधुनिक सूर्यसिद्धान्त की अशुद्धियां नीचे लिखी जाती है—

	सन् ५३८ मे				सन् १०६१ मे				अशुद्धिरहित
१		अ०	क०	वि०		अ०	क०	वि०	ईसवी सन्
चन्द्रमा	—	०	१८	३०	—	०	०	११	१०६७
मगल	+	२	२६	३०	+	०	५८	२६	१४५८
गुरु	—	१	२१	४७	+	०	४१	१४	६०६
शनि	+	१	५०	१०	—	१	४	२५	८८७

इससे मालूम होता है कि ईसवी सन् ५३८ में मगल की अशुद्धि लगभग २½ अश और अन्य ग्रहो की २ अंश से कम थी। चन्द्रमा की तो बहुत ही कम थी। सम्भवतः उस समय एक भगण की पूर्ति होने के मध्यवर्ती काल मे स्पष्टमान से ये सब ग्रह कभी

१. यूरोपियन कोष्ठकों द्वारा लाए हुए ग्रहों की अपेक्षा सूर्यसिद्धान्तीयग्रह जहाँ अधिक है वहाँ धन चिह्न (+) और जहाँ न्यून है वहाँ ऋण चिह्न (−) बनाया है। सन् ५३८ ई० में बुध और शुक्र में ३ अंश से अधिक अशुद्धि थी, इसलिए यहाँ उन्हें नहीं लिखा है।

न कभी यूरोपियन कोष्ठको द्वारा लाये हुए स्पष्टग्रहो के समान अर्थात् शुद्ध रहे होगे। इस प्रकार सन् ५३८ के आसपास दस-पाच वर्ष आगे या पीछे के सूर्यसिद्धान्तीय[1] ग्रह यदि यूरोपियन ग्रहो के समान सिद्ध हो जाय तो सूर्यसिद्धान्त का रचनाकाल सन् ५३८ कहा जा सकता है। भारतीयो के मूलग्रन्थ अथवा उनमे दिये हुए सस्कारो की रचना कम से कम २५, ३० वर्षों के अनुभव के बाद हुई होगी। इतने समय के बीच में उन्होने किस ग्रह का वेध किस दिन किस प्रकार किया, इसे जानने का कोई साधन नही है, अत बेटली की इस रीति द्वारा ग्रन्थरचना का समय निश्चित करना निर्दोष नही है। प्रो० विटने ने बेटली की रीति में कुछ दोष दिखलाये है, परन्तु उनमे उपर्युक्त मुख्य महत्वशाली दोष नही है। स्वत बेटली ने भी साधक-बाधक विषयो का विचार किया है परन्तु इस आक्षेप के सम्बध में कुछ नही लिखा है।

दूसरी बात यह कि भारतीय और यूरोपियन ग्रहो की तुलना करते समय बेटली ने सब ग्रहो का सूर्य से अन्तर तो लाया है, परन्तु इस बात का विचार नही किया है कि भारतीय ग्रन्थो का निरयन वर्षमान किञ्चित् अशुद्ध होने के कारण उनकी सूर्य की ही स्थिति अशुद्ध है। इसका विचार करते हुए प्रो० विटने ने बतलाया है कि सूर्यसिद्धान्त का सूर्य सन् २५० मे शुद्ध था। भारतीय ग्रन्थो के बीज संस्कार[2] मे दो भेद होने की संभावना है। एक बीजसंस्कार उन्होने ग्रह और नक्षत्रो की युति का अवलोकन कर किया होगा और दूसरा नलिकावेध द्वारा। हमारे ग्रन्थो का वर्षमान निरयन वर्षमान के पास-पास होते हुए भी उससे लगभग ८ पल अधिक है। इस कारण नक्षत्रों के भोग उत्तरोत्तर अशुद्ध होते जा रहे हैं। इस समय वह अशुद्धि लगभग ४$\frac{1}{2}$ अश हो गयी है (पटवर्धनीय तथा अन्य निरयन पञ्चागो मे अन्तर पडने का कारण यही है)। इसलिए यदि युति द्वारा बीजसस्कार लाया होगा तो जिस तारा से ग्रहयुति का विचार किया स्वत. उसी का स्थान अशुद्ध होने के कारण बीज अशुद्ध होने की सभावना है, अत उसके द्वारा लाया हुआ रचनाकाल भी अशुद्ध ही होगा। दूसरी रीति है ग्रहो का नलिकावेध। इसमे ग्रह सायन करने पडते है। यद्यपि सम्पातगति थोडो अशुद्ध है तो भी सूर्य या

---

१. इस बात का मुझे पूर्ण निश्चय है कि दोनों ग्रन्थो के गणित द्वारा भिन्न-भिन्न दिनों के सब ग्रह लाकर यह दिखलाया जा सकता है कि दस-पॉच या कदाचित् ३० वर्षों में दोनों के ग्रह अमुक दिन समान होंगे, परन्तु इतना गणित करने के लिए अत्यधिक परिश्रम और समय की आवश्यकता है। इसलिए मैंने नहीं किया।

२. जब किसी सिद्धान्त के गणितागत ग्रह वेध से नहीं मिलते तब उनकी गति-स्थिति में कोई संस्कार किया जाता है। उसे बीजसंस्कार कहते हैं।

शुक्र	४०६	४०६
शनि	५७४	५७४
	३३०७ – ७ = ४७२	४१२७ – ८ = ५१६

इससे सिद्ध होता है कि पञ्चसिद्धान्तिकोक्त सूर्यसिद्धान्त शके ४७२ मे और प्रथम आर्यसिद्धान्त शके ५१६ मे बना, परन्तु प्रथम आर्यसिद्धान्त का रचनाकाल शके ४२१ निर्विवाद सिद्ध है[1] और पञ्चसिद्धान्तिकोक्त सूर्यसिद्धान्त के विषय मे भी ऊपर बता चुके है कि वह शके ४२१ से बहुत प्राचीन होना चाहिए। बेटली ने १८ अध्यायो के आर्यसिद्धान्त अर्थात् द्वितीय आर्यसिद्धान्त का समय सन् १२८८ (शके १२१०) और पाराशरसिद्धान्त का रचनाकाल सन् १३८४ (शके १३०६) बताया है[2], परन्तु द्वितीय आर्यसिद्धान्त शके १०७२ से पहिले का है क्योकि उसकी कुछ बातो का उल्लेख सिद्धान्तशिरोमणि मे आया है और पाराशरसिद्धान्त का उल्लेख द्वितीय आर्यसिद्धान्त मे है, अत वह उससे भी प्राचीन होना चाहिए (आगे इसका विशेष विवेचन किया जायगा)।

इससे यह स्पष्ट है कि बेटली के निश्चित किये हुए काल बिलकुल अविश्वसनीय हैं। अत उनका बतलाया हुआ सूर्यसिद्धान्त का रचनाकाल (शके १०१३) भी उपेक्षणीय है।

अब इन पाचो सिद्धान्तो के रचनाकाल का स्वतन्त्रतया विचार करेगे।

ब्रह्मगुप्त ने कहा है :—

अयमेव कृत सूर्येन्दुपुलिशरोमकवसिष्ठयवनाद्यै· ॥३॥

अध्याय २४।

यहा इन्दुसिद्धान्त सोमसिद्धान्त को कहा है। इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्मगुप्त के पहिले भी एक सोमसिद्धान्त था। प्रचलित सोमसिद्धान्त से भिन्न सोमसिद्धान्त का पहिले किसी समय प्रचार था, इसका कोई प्रमाण नही मिलता। इस समय भी ऐसा कोई सिद्धान्त उपलब्ध नही है और न तो उसकी उपलब्धि का कोई प्रमाण ही मिलता

---

१. वस्तुतः ये ग्रह यूरोपियन ग्रन्थो द्वारा लाने चाहिए थे, परन्तु मैंने केरोपन्तीय ग्रहसाधनकोष्ठकों द्वारा लाये हैं। उससे सूक्ष्म अन्य किसी ग्रन्थ द्वारा गणित करने से कदाचित् दस-पांच वर्षों का अन्तर पड़ेगा।

२. बेटली का ग्रन्थ (सन् १८२३ ई०) Part II, Section III देखिए।

है। अत यह निश्चित है कि ब्रह्मगुप्त के पहिले भी वही सोमसिद्धान्त था जो कि इस समय उपलब्ध है। हो सकता है, ब्रह्मगुप्त के समय का सोमसिद्धान्त कदाचित् आधुनिक सोमसिद्धान्त से कुछ भिन्न अथवा विस्तार मे कुछ न्यून या अधिक रहा हो पर दोनो के भगणादि मान तुल्य होने चाहिए।

ऊपर बता चुके है कि ब्रह्मगुप्त के समय पञ्चसिद्धान्तिकोक्त रोमक और वासिष्ठ से भिन्न श्रीषेणकृत रोमक और विष्णुचन्द्रकृत वासिष्ठ उपलब्ध थे और यह भी बता चुके है कि पञ्चसिद्धान्तिकोक्त रोमक और वासिष्ठ से आधुनिक रोमक और वासिष्ठ भिन्न है। भगणादि मानो द्वारा भी इस कथन की पुष्टि होती है अत यह सहज ही ध्यान मे आ जाता है कि ब्रह्मगुप्तकालीन श्रीषेणकृत रोमक और विष्णुचन्द्रकृत वासिष्ठ ही आधुनिक रोमक और वासिष्ठ होने चाहिए क्योकि पञ्चसिद्धान्तिकोक्त तथा आधुनिक रोमक वासिष्ठ सिद्धातो से भिन्न तीसरे प्रकार के कई रोमक और वासिष्ठसिद्धान्त पहिले कभी प्रचलित थे, इसका कोई प्रमाण नही मिलता। इस समय भी ऐसा कोई सिद्धान्त उपलब्ध नही है और दूसरी बात यह कि श्रीषेण और विष्णुचन्द्र ने अपने रोमक और वासिष्ठसिद्धान्त जिन ग्रन्थो के आधार पर बनाये उनके सम्बन्ध मे ब्रह्मगुप्त की "लाटात् सूर्यशशाङ्कौ. .विष्णुचन्द्रेण" ये ३ आर्याए ऊपर लिखी है। इनसे ज्ञात होता है कि वे दोनो ग्रन्थ एक ही प्रकार के होने चाहिए अर्थात् इनके भगणादि मान समान होने चाहिए जैसे कि वर्तमान रोमक और वासिष्ठसिद्धान्तो के है। तीसरी बात यह कि ब्रह्मगुप्त ने कहा है कि विष्णुचन्द्र ने दूसरा सिष्ठसिद्धान्त बनाया। आधुनिक सिष्ठसिद्धान्त मे (काशी की छपी हुई प्रति मे) निम्नलिखित श्लोक[1] है—

> इत्थ माण्डव्य सक्षेपादुक्त शास्त्र मयोदितम् ।।
> विस्तृतिर्विष्णुचन्द्राद्यैर्भविष्यति युगे युगे ।।८०।।

यह माण्डव्य के प्रति वसिष्ठ का कथन है। यहा इस सिद्धान्त से विष्णुचन्द्र का सम्बन्ध स्पष्ट है। श्लोक में विष्णुचन्द्र का नाम गौणरूप में आया है, अत यह सिद्धान्त साक्षात् विष्णुचन्द्र रचित न हो तो भी यह स्पष्ट है कि अन्य किसी ने विष्णुचन्द्र के ही मानो द्वारा इसे बनाया है। रोमकसिद्धान्तसम्बन्धी उपर्युक्त ब्रह्मगुप्त की आर्याओ मे कहा है कि वह लाट, वसिष्ठ और विजयनन्दी के आधार पर बना है और आधुनिक रोमकसिद्धान्त के आरम्भ में ये श्लोक है—

---

१. डे० का० संग्रह की प्रति में भी यह श्लोक है। उसमें उत्तरार्द्ध का आरम्भ 'विस्मतिश्चेच्च चन्द्राद्यैः' इस प्रकार है, परन्तु यह अशुद्ध मालूम होता है।

वसिष्ठो रोमशमुनि[1] कालज्ञानाया तत्त्वतः।
उपवास ब्रह्मचर्यं प्रागेकं विष्णुतत्परौ ।।२।।
वसिष्ठसदभिप्राय ज्ञात्वापि मधुसूदन ।
अर्पयामास तत्सिद्धयै तावच्छास्त्रार्थपारग ।।३।।
उभाभ्या तोषितो विष्णुर्योगीय तन्मुखद्वयात् ।
उच्चारयामास .. ।।४।।

यद्यपि ये श्लोक कुछ अशुद्ध है तथापि आधुनिक रोमकसिद्धान्त से रोमक और वसिष्ठ दोनो का सम्बन्ध इनमे स्पष्ट है और ब्रह्मगुप्तकालीन रोमकसिद्धान्त भी वसिष्ठ का आधार था ही। इससे अनुमान होता है कि ब्रह्मगुप्तकालीन श्रीषेणकृत रोमक और विष्णुचन्द्रकृत वासिष्ठ तथा आधुनिक रोमश और वसिष्ठसिद्धान्त एक ही है। आधुनिक लोमशसिद्धान्त मे श्रीषेण का नाम नही है, पर सिद्धान्त का नाम वही है। उसमे रोमश को एक मुनि माना है। सम्भव है श्रीषेणकृत रोमक की शब्द रचना आधुनिक रोमक से कुछ भिन्न रही हो, पर दोनो के भगणादिमान एक होने चाहिए।

आधुनिक सोम, रोमश और वासिष्ठ सिद्धान्तो के सर्वथा समान अथवा केवल भगणादिमानो मे साम्य रखने वाले इन्ही नामो के सिद्धान्त यदि ब्रह्मगुप्त (शके ५५०) के पूर्व भी थे तो फिर भगणादि मानो के विषय मे इनके बिलकुल समान, परन्तु सम्प्रति इन तीनो से अत्यन्त अधिक महत्वशाली तथा पूज्य माना जानेवाला आधुनिक सूर्य-सिद्धान्त ब्रह्मगुप्त के पहिले नही रहा होगा, यह कैसे कह सकते है ? आधुनिक सूर्य-सिद्धान्त अथवा सोम, रोमक या वासिष्ठसिद्धान्तो के भगणादिमान ब्रह्मगुप्त से पूर्व के प्रथम आर्यसिद्धान्त अथवा उससे भी प्राचीन पञ्चसिद्धान्तिकोक्त पाच सिद्धान्तो के समान नहीं है । पहिले बता चुके है कि लाटाचार्य का एक स्वतन्त्र ग्रन्थ था। ब्रह्मगुप्त के कथनानुसार श्रीषेण के रोमक और विष्णुचन्द्र के वासिठ मे सब मध्यम ग्रह[2] लाट के ग्रन्थ से लिये गये है, अत ब्रह्मगुप्त से प्राचीन ग्रन्थो मे आधुनिक रोमक वासिष्ठ और सोम सिद्धान्तो से साम्य रखनेवाला केवल एक लाटाचार्य का ही ग्रन्थ दिखाई देता है। यह बात और ऊपर लिखे हुए अन्य विचार एवं अलबेरुणी का यह कथन

१. रोमश के स्थान में लोमश और 'सदभिप्राय' के स्थान में 'तदभि०' पाठ भी मिलते है। सिद्धान्त के भी 'रोमक' और 'रोमश' दो नाम पाये जाते है।

२. कोलब्रूक इसका अर्थ लगाते है कि कुजादि ग्रह वासिष्ठ से लिये, परन्तु सब बातों के पूर्वापर सन्दर्भ का विचार करने से मुझे अपना ही अर्थ ठीक मालूम होता है।

कि सूर्यसिद्धान्त लाटकृत है, इन सबका एकत्र विचार करने से मुझे यही अनुमान होता है कि वर्तमान सूर्यसिद्धान्त के मध्यमग्रह (भगणादि मान) लाटाचार्य के ग्रन्थ के है और लाटाचार्य का समय वराहमिहिर से पूर्व है। अत मेरे मतानुसार वर्तमान सूर्य सिद्धान्त के भगणादि मूलतत्व शके ४२७ से प्राचीन है। आधुनिक सूर्यसिद्धान्त लाटकृत न हो तो भी आधुनिक सोम, रोमक और वासिष्ठ सिद्धान्त ब्रह्मगुप्त के पहिले के है और उन तीनो से अत्यधिक पूज्य तथा महत्वशाली होने के कारण वर्तमान सूर्यसिद्धान्त उनसे भी प्राचीन है, अत उसका रचनाकाल शक की पाचवी शताब्दी से अर्वाचीन नही हो सकता।

अब पाचो सिद्धान्तो का पृथक्-पृथक् विशेष विचार करेगे।

सूर्यसिद्धान्त (आधुनिक)

आधुनिक सूर्यसिद्धान्त मे १४ अधिकार और सब मिलकर अनुष्टुप् छन्द के ५०० श्लोक है। इसके भगणादि मान ऊपर लिखे है। आरम्भ के श्लोको से मालूम होता है कि कृतयुग के अन्त मे सूर्य की आज्ञा से सूर्याशभूत पुरुष ने इसे मय नामक असुर से कहा अर्थात् शके १८१७ के आरम्भ मे इसे बने २१६४९९६ वर्ष हुए।

यद्यपि ऊपर यह अनुमान किया है कि आधुनिक सूर्यसिद्धान्त लाटकृत होगा। अत उसका रचनाकाल शके ४२७ से बहुत प्राचीन होना चाहिए तथापि वराहमिहिर के समय तक उसका यह नाम नही पडा रहा होगा क्योकि पञ्चसिद्धान्तिका मे एक ही सूर्यसिद्धान्त का वर्णन है और वह इससे भिन्न है। ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त मे सूर्यसिद्धान्त का उल्लेख दो स्थानों मे आया है। वे दोनो श्लोक ऊपर वसिष्ठसिद्धान्त के वर्णन मे लिखे ही है। उनमे ऐसा कोई प्रमाण नहीं दिखाई देता जिसके आधार पर कह सके कि ब्रह्मगुप्त के समय दो सूर्यसिद्धान्त थे, अत उस समय भी आधुनिक सूर्यसिद्धान्त का नाम सूर्यसिद्धात पड चुका था, यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। पड चुका रहा हो तो भी यह स्पष्ट है कि उसे प्राधान्य नही प्राप्त हुआ था क्योकि उन्होने खण्डखाद्य मे स्वकीयसिद्धान्त, प्रथम आर्यसिद्धान्त या वर्तमान सूर्यसिद्धान्त के मान न लेते हुए पञ्चसिद्धान्तिकोक्त सूर्यसिद्धान्त के लिए है, अत वर्तमान सूर्यसिद्धान्त के विषय मे निश्चय पूर्वक नही कहा जा सकता कि इसका यह नाम कब पडा और यह कब से पूज्य माना जाने लगा। हा अनुमान कर सकते है।

आधुनिक सूर्यसिद्धान्त लाटकृत हो तो भी उसके सब श्लोक लाटकृत नही होगे। मध्यमाधिकार के भगणादि मानो को छोडकर बचे हुए श्लोको मे से अधिकतर या कुछ मूलग्रन्थ पञ्चसिद्धान्तिकोक्त सूर्यसिद्धान्त के ही होगे अथवा यह भी सम्भव है

कि वर्तमान सूर्यसिद्धान्त का यह स्वरूप लाटकृत न हो बल्कि पञ्चसिद्धान्तिका के थोडे ही दिनों बाद किसी ने भगणादि मान लाट के तथा शेष श्लोक मूल सूर्यसिद्धान्त के लेकर इसे बनाया हो और उसके दो तीन वर्ष बाद ग्रन्थकर्त्ता का पता न लगने के कारण उसका विस्मरण हो जाने के बाद लोग उसे पूज्य मानने लगे हो।

ब्रह्मगुप्त कहते है कि रोमक और वसिष्ठ सिद्धान्तो मे ग्रहो का स्पष्टीकरण आर्यभटीय से लिया गया है, परन्तु वर्तमान सूर्य, रोमकादि सिद्धान्तो के परिध्यंश जो कि ग्रहस्पष्टीकरण के एक मुख्य उपकरण हैं, आर्यभटीय से नही मिलते। मूल सूर्यसिद्धान्त से प्राय. मिलते है (आगे स्पष्टाधिकार के प्रथम प्रकरण मे वे सब एकत्र लिखे है)। इससे अनुमान होता है कि लाटाचार्य ने अथवा सूर्यसिद्धान्त के कर्ता अन्य किसी व्यक्ति ने इस ग्रन्थ मे केवल भगणादि मान अन्य ग्रन्थ से लिये है, पर शेष बाते मूल सूर्यसिद्धान्त की है अथवा यो कहिए कि शेष सभी बाते अक्षरश मूल सूर्यसिद्धान्त की ही रखी है।

इसी प्रकार श्रीषेणकृत रोमक और विष्णुचन्द्रकृत वासिष्ठ के विषय मे ब्रह्मगुप्त ने स्पष्ट कहा है कि उनके भगणादि मान लाट के हे। मालूम होता है, शेष विषयो मे से जितनी बाते प्रथम आर्यभट के सिद्धान्त मे बतलायी है उन्हे छोडकर अवशिष्ट सभी मूलतत्व सूर्यसिद्धान्त के समान रखते हुए किसी ने पीछे से आधुनिक वासिष्ठ और रोमक सिद्धान्त बनाये है। उत्पल ने बृहत्संहिता के १८ वे अध्याय की टीका में "तथा च आचार्य विष्णुचन्द्र" कहकर अग्रिम श्लोक लिखा है—

दिवसकरेणास्तमय.. समागम: शीतरश्मिसहितानाम्।
कुसुतादीना युद्धं निगद्यतेऽन्योन्ययुक्तानाम्॥

यह श्लोक आर्या छन्द का है, परन्तु आधुनिक दोनो प्रकार के वासिष्ठसिद्धान्त अनुष्टुप् छन्द के है। इससे भी यही अनुमान होता है कि विष्णुचन्द्रोक्त वासिष्ठसिद्धान्त के आधार पर अन्य किसी ने आधुनिक वसिष्ठसिद्धान्त बनाया है। यही स्थिति आधुनिक रोमकसिद्धान्त की भी होगी।

मय

पूने के आनन्दाश्रम में सूर्यसिद्धान्त की कुछ सटीक तथा कुछ केवल मूल मात्र की प्रतिया है। उनमे एक टीकारहित पुस्तक (न० २९०९) के प्रथम (मध्यम) अधिकार का सातवां श्लोक सटीक पुस्तको में नही है। पूर्वापर सन्दर्भ का ज्ञान होने के लिए यहा उसे आगे पीछे के श्लोक भाग सहित लिखते है।

न मे तेज सह कश्चिदाख्यातु नास्ति मे क्षण ।
मदश पुरुषोऽय ते नि·शेष कथयिष्यति ।।६।।
तस्मात् त्व स्वा पुरी गच्छ तत्र ज्ञानं ददामि ते ।
रोमके नगरे ब्रह्मशापान्म्लेच्छावतारधृक् ।।७।।
इत्युक्वान्तर्दधे देव ।

अर्थ—(हे मय !) मेरे तेज को कोई सहन नही कर सकता (और) मुझे बतलाने के लिये समय (भी) नही है। मेरा अशभूत यह पुरुष तुझसे सब कुछ कहेगा ।।६।। इसलिए तू अपने नगर को जा। ब्रह्मशाप के कारण मे म्लेच्छ का अवतार धारणकर वहा रोमक नगर मे तुझे ज्ञान दूगा ।।७।। इतना कह कर (सूर्य) देव अदृश्य हो गये ।

यहा का सातवा श्लोक सटीक पुस्तकों के छठे और सातवे श्लोकों के मध्य में है। पूर्वापर सन्दर्भ का विचार करने से सातवा श्लोक बीच मे बिल्कुल असगत मालूम होता है। सूर्यसिद्धान्त के अग्रेजी अनुवादकर्ता रे० बर्जेस के पास की टीकारहित दो पुस्तको मे यह श्लोक था, पर सटीक पुस्तको मे नही था। उपर्युक्त अनुवाद की टिप्पणी में विटने ने इस श्लोक के सम्बन्ध मे अपना निम्नलिखित मत प्रदर्शित किया है ।

"यद्यपि यह कथन ठीक है कि वर्तमान छठे और सातवे श्लोको के बीच मे यह श्लोक असंगत मालूम होता है तथापि यह बहुत-सी पुस्तको मे मिलता है और यह भी सम्भव नही है कि किसी ने जानबूझकर नवीन श्लोक बनाकर प्रक्षिप्त कर दिया हो, अत· आधुनिक सटीक पुस्तकों के आरम्भ के सात-आठ श्लोक जिनमे कि मय को सूर्य-सिद्धान्त की प्राप्ति का वर्णन है किसी ने नवीन बनाकर किसी समय प्रक्षिप्त कर दिये होंगे। उनके स्थान मे उपर्युक्त श्लोक अथवा उसके साथ साथ उसी सरीखे कुछ और श्लोक होने चाहिए। इससे मालूम होता है कि सूर्यसिद्धान्त का यवनो से कोई न कोई सम्बन्ध अवश्य होना चाहिए। किं बहुना, यह शास्त्र हिन्दुओ को यवनो से ही मिला होगा। सूर्यसिद्धान्त मयासुर को मिला, यह बात वर्तमान सूर्यसिद्धान्त मे भी लिखी ही है। तो फिर सूर्योपदेश के लिए पात्र असुर ही मानने का कारण क्या है ? इस बात से भी यवनो से उसका सम्बन्ध दिखाई देता है।"

टालमी

वेबर महोदय लिखते है कि 'ईजिप्ट' के राजा तालमयस (Ptolemaias) का नाम हिन्दुस्तान के खुदे हुए लेखो मे तुरुमय पाया जाता है, अत असुरमय तुरमय

का स्वरूपान्तर होना चाहिए और आलमाजेस्ट (Almajest) ग्रन्थ का कर्ता टालमी ही मय होना चाहिए।[1] परन्तु हम ऊपर बता चुके है कि टालमी के ग्रन्थ का मूल सूर्यसिद्धान्त से कोई सम्बन्ध नही है और ऊपर लिखे हुए आधुनिक सूर्यसिद्धान्त के भगणादि मानो का भी टालमी के मानो से किसी प्रकार साम्य नही है। अत यह बिलकुल स्पष्ट है कि वर्तमान सूर्यसिद्धान्त से टालमी का कोई सम्बन्ध नही है।

उत्पल ने बृहत्संहिता की टीका मे निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किये है। उन्होने इन्हे सूर्यसिद्धान्तोक्त कहा है—

महतश्चाप्यध स्थस्य नित्य भासयते रवि ।
अर्धं शशाकबिम्बस्य न द्वितीय कथञ्चन ।।
तेजसा गोलक सूर्यो ग्रहर्क्षाण्यम्बुगोलका ।
प्रभावन्तो हि दृश्यन्ते सूर्यरश्मिविदीपिता ।।
विप्रकर्षं यथा याति ह्यध स्थश्चन्द्रमा रवे ।
तथा तस्य च भूदृश्यमंश भासयते रवि ।।

अध्याय ४, चन्द्रचार

भूछाया शशिकक्षागा खौभावा (?) न्तरस्थिते ।
यदा विशत्यविक्षिप्तश्चन्द्र स्यात्तद्ग्रहस्तदा ।।
इन्दुना छादितं सूर्यमधोविक्षिप्तगामिना ।
न पश्यन्ति यदा लोके तदा स्याद् भास्करग्रह ।।
तमोमयस्य तमसो रविरश्मिपलायिन ।
भूछाया चन्द्रबिम्बस्थोर्द्धे[2] परिकल्पित ।।

अध्याय ५, राहुचार

ये श्लोक आधुनिक सूर्यसिद्धान्त मे नही है। पता नही चलता ये मूल सूर्यसिद्धान्त के है या अन्य किसी ग्रन्थ के, यदि मूलसूर्यसिद्धान्त के होगे तो कहना पडेगा कि भटोत्पल के समय (शके ८८८) आधुनिक सूर्यसिद्धान्त का पूज्यत्व नही था।

भटोत्पल ने बृहत्सहिता के गुरुचार की टीका मे महाकार्तिकादि सवत्सरो के विचार में लिखा है कि —

---

१. बर्जेसकृत सूर्यसिद्धान्त के अनुवाद का तृतीय पृष्ठ देखिए ऊपर बेबर के लेख का केवल सारांश लिखा है।

२. एक हस्तलिखित पुस्तक में यें श्लोक जैसे थे, वैसे ही यहाँ लिखे है।

'केचित् कृत्तिकादियुक्ते गुरौ यच्चन्द्रयुक्त नक्षत्र चैत्रमासादितो भवति ततो महाकार्तिकादीनि सवत्सराणि प्रभवादीनि च गणयन्ति ।'

आधुनिक सूर्यसिद्धान्त मे महाकार्तिकादि सवत्सरो का नाम रखने की रीति इस प्रकार है —

वैशाखादिषु कृष्णे च योग· पञ्चदशे तिथौ ।
कार्तिकादीनि वर्षाणि गुरोरस्तोदयात् तथा ।।१७।।

मानाध्याय ।

इन दोनो रीतियो का बहुत कुछ साम्य है और महाकार्तिकादि सवत्सरो का नाम रखने की यह रीति सूर्यसिद्धान्त के अतिरिक्त अन्य किसी भी ग्रन्थ मे नही मिलती । मूल सूर्यसिद्धान्त मे थी या नही, इसका पता पञ्चसिद्धान्तिका द्वारा नही चलता और इसे जानने का दूसरा भी कोई मार्ग दिखाई नही देता । यदि भटोत्पल का लेख मूल सूर्यसिद्धान्तानुसार होगा तो इससे यह बात सिद्ध करने मे अच्छी सहायता मिलेगी कि मूल सूर्यसिद्धान्त के श्लोक आधुनिक सूर्यसिद्धान्त मे है ।

लाट

अलबेरूणी (लगभग शके ९५२) सूर्यसिद्धान्त को लाटकृत बतलाते है, परन्तु इसमे किसी प्रकार का सन्देह नही है कि मूल सूर्यसिद्धान्त (पञ्चसिद्धान्तिकोक्त) लाटकृत नही है क्योकि ऐसा होता तो वराहमिहिर ने लिखा होता कि यह लाटकृत है और पञ्चसिद्धान्तो मे उसका समावेश न किया होता । ब्रह्मगुप्त के कथन से तो यह बिलकुल स्पष्ट है कि लाट का ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त से भिन्न है और उन्होने लाट के ग्रन्थ मे दो-तीन जगह दोष भी दिखाये है, पर सूर्यसिद्धान्त मे कही दोषारोपण नही किया है । इससे सिद्ध होता है कि अलबेरुणी जिस सिद्धान्त को लाटकृत बतला रहे है वह मूलसूर्यसिद्धान्त नही, बल्कि आधुनिक है । अत सिद्ध हुआ कि वर्तमान सूर्यसिद्धान्त का महत्व शके ९५२ के पहिले स्थापित हुआ था ।

भास्वतीकरणकार ने आरम्भ ही मे लिखा है —

'अथ प्रवक्ष्ये मिहिरोपदेशात् तत्सूर्यसिद्धान्तसम समासात् ।।३।।'

अधिकार १ ।

मिहिर के उपदेश द्वारा उनके सूर्यसिद्धान्त के समान सक्षिप्त (करण) बना रहा हूँ ।

यहा 'तत्सूर्यसिद्धान्त' शब्द से मालूम होता है कि भास्वतीकार के समय वराह-मिहिर के सगृहीत सिद्धान्त से भिन्न एक और भी सूर्यसिद्धान्त रहा होगा ।

सिद्धान्तशिरोमणि के स्वयं भास्कराचार्यकृत वासनाभाष्य मे सूर्यसिद्धान्त के ये श्लोक है —

अदृश्यरूपा कालस्य मूर्तयो भगणाश्रिता ।
शीघ्रमन्दोच्चपाताख्या ग्रहाणा गतिहेतव ।।१।।
तद्वातरश्मिभिर्बद्धास्तै सव्येतरपाणिभि ।
प्राक्पश्चादपकृष्यन्ते यथासन्न स्वदिङ्मुखम् ।।२।।

ये श्लोक वर्तमान सूर्यसिद्धान्त मे है (स्पष्टाधिकार, श्लो० १-२)। गोलबन्धाधिकार मे भास्कराचार्य सम्पातगति के विषय मे लिखते है —

विषुवत्क्रान्तिवलययो सम्पात क्रान्तिपात स्यात् ।
तद्भगणा सौरोक्ता व्यस्ता अयुतत्रय कल्पे ।।१७।।

इसके भाष्य मे उन्होने लिखा है —

'क्रान्तिपातस्य भगणा कल्पेऽयुतत्रय तावत् सूर्यसिद्धान्तोक्ता'

वर्तमान सूर्यसिद्धान्त मे बतलाये हुए भचक्रभ्रमण के उद्देश्य से ही यहा ऐसा कहा है । इसी प्रकार सूर्यग्रहणाधिकार के अन्त मे लिखा है 'तस्मान्नेद पूर्वैरर्काशाद्यैस्तथा कृत कर्म'। इसमे अर्काश शब्द मालूम होता है वर्तमान सूर्यसिद्धान्त के उद्देश्य से कहा है।

इससे सिद्ध होता है कि अलबेरुणी, भास्वतीकार और भास्कराचार्य के पूर्व अर्थात् शक की दसवी शताब्दी के आधे के पहिले आधुनिक सूर्यसिद्धान्त को मान्यत्व और पूज्यत्व प्राप्त हो चुका था। सम्प्रति ऐसा कोई प्रमाण उपलब्ध नही है जिससे जाना जाय कि शके ५५० (ब्रह्मगुप्तसिद्धान्तकाल) और ९५० के मध्य मे उसे पूज्यत्व कब प्राप्त हुआ ?

वर्तमान सूर्यसिद्धान्त के अनुयायी ग्रन्थ

तैलगण के वाविलालकोच्चन का शके १२२० का करण ग्रन्थ सभी अगो मे वर्तमान सूर्यसिद्धान्त के अनुसार है। इसके पहिले के सूर्यसिद्धान्तानुयायी करणग्रन्थ मुझे देखने मे नही आये। शके १३३९ के भटतुल्यकरण की अयनगति वर्तमान सूर्यसिद्धान्तानुसार है। शके १४४५ या उसके आसपास का 'ताजकसार' नाम का एक ग्रन्थ मैंने देखा है। उसमे ग्रहानयन के विषय मे लिखा है —

'श्रीसूर्यतुल्यात् करणोत्तमाद्वा स्पष्टा ग्रहा राजमृगाङ्कतो वा।'

इससे सिद्ध होता है कि शके १४४५ के पहिले सूर्यतुल्य नाम का एक करणग्रन्थ था अर्थात् उसमें ग्रह सूर्यसिद्धान्त के लिये गये थे। वह सूर्यसिद्धान्त वर्तमान सूर्यसिद्धान्त

ही रहा होगा। शके १४१८ मे बने हुए ग्रहकौतुककरण मे ग्रन्थकार ने लिखा है कि इसके वर्षमानादि सूर्यसिद्धान्त के है। वे मान वर्तमान सूर्यसिद्धान्त के है। गणेश दैवज्ञ ने ग्रहलाघव के मध्यमाधिकार मे लिखा है—

'सौरोऽर्कोऽपि　　विधूच्चमङ्ककलिकोनाब्ज ।'

अर्थात् मैने सूर्यसिद्धान्त से सूर्य, चन्द्रोच्च और ६ कला न्यून चन्द्रमा लिया है। ग्रहलाघव के ये मान वर्तमान सूर्यसिद्धान्त के ही है। तिथिचिन्तामणि की सारणिया भी आधुनिक सूर्यसिद्धान्त के रव्यादिको द्वारा ही बनायी गयी है (आगे ग्रहलाघव का विचार करते समय इसका विशेष विवेचन किया जायगा)। भास्वतीकरण की माधव-कृत टीका शके १४४२ की अर्थात् जिस वर्ष ग्रहलाघव बना उसी वर्ष की है। उसमे लिखे हुए सूर्यचन्द्रादिको की अथवा राहु को छोडकर शेष ग्रहो की भगणसख्या के श्लोक या उनमे बतलायी हुई भगणसख्या आधुनिक सूर्यसिद्धान्त के श्लोको और भगणमानो से पूर्णतया मिलती है।

मकरन्द नाम का एक पञ्चाङ्गसाधक ग्रन्थ है। उत्तर हिन्दुस्तान के बहुत से प्रदेशो मे आजकल उसके अनुसार पञ्चाग बनाये जाते है। उसमे वर्षमान तथा सब ग्रहों के भगणादि मान आधुनिक सूर्यसिद्धात के है। काशी के छपे हुए मकरन्द मे उसका रचना-काल शके १४०० लिखा है, पर शक पद्यबद्ध नही है। पुस्तक मे इसके सत्यत्व की प्रतीति दिलाने वाला अन्य कोई साधन न होने के कारण इसके विषय मे थोडा सन्देह होता है, परन्तु विश्वनाथ इत्यादि गणको ने मकरन्द का उल्लेख किया हैं, अत. उपर्युक्त काल विश्वसनीय हो सकता है। आर्यभटीय की परमादीश्वरकृत टीका मे वर्तमान सूर्य-सिद्धान्त में भिन्न-भिन्न अधिकारो के १२ श्लोक आये है।[1] उनमे मध्यमाधिकार के ४ श्लोक विशेष महत्व के है। उनमें सब ग्रहो के मन्दोच्च और पातो के भगण पठित है। इन परमादीश्वर का समय ज्ञात नही है। इन्होने जहा जहा सूर्यसिद्धान्त के वचन उद्धृत किये हैं वहा-वहा पहिले 'तथा च मय:' लिखा है।

गोदा नदी के पास पार्थपुर (पाथरी) नामक ग्राम के निवासी ढुण्ढिराज के पुत्र गणेश दैवज्ञ का शके १४८० के आसपास का एक ताजिकभूषण नामक ग्रन्थ है। उसमे उन्होने वर्षमान मूल सूर्यसिद्धान्त का लिया है। मूल सूर्यसिद्धान्त का वर्षमान (३६५।१५।३१।३०) आधुनिक सूर्यसिद्धान्तोक्त वर्षमान (३६५।१५।३१।३१।२४) की अपेक्षा

१. मध्यमाधिकार ४१ से ४४ तक। पात० २। भूगोलाध्याय ३५ से ४० तक। मानाधि० १।

गणित के लिए सरल होने के कारण मालूम होता है शक की १५वी शताब्दी के अन्त तक प्रचलित रहा है।

'ज्योतिषदर्पण' नाम का एक शके १४७९ का मुहूर्त ग्रन्थ है। उसमे प्रसगवशात् उदाहरण के लिए सृष्ट्यारम्भ से कलियुगारम्भ पर्यन्त का अहर्गण दिया है और कल्पारम्भकालीन गुरुवार की मध्यरात्रि के मध्यमग्रहादि भी बतलाये है। वे सब आधुनिक सूर्यसिद्धान्तानुसार है।

'रामविनोद' नाम का शके १५१२ का एक करणग्रन्थ है। उसका वर्षमान वर्तमान सूर्यसिद्धान्तानुसार है। सिद्धान्ततत्त्वविवेककार कमलाकर (शके १५८०) तो वर्तमान सूर्यसिद्धान्त के अत्यन्त अभिमानी है। 'वार्षिकतन्त्र' नाम का एक ग्रन्थ वर्तमान सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार शके १४०० और २६३४ के मध्य मे बना है।

टीकाएँ

वर्तमान सूर्यसिद्धान्त पर रङ्गनाथकृत गूढार्थप्रकाशिका नाम की शके १५२५ की एक टीका है। काशी और कलकत्ता मे इसके सहित सूर्यसिद्धान्त छपा है। दूसरी नृसिहदैवज्ञ की सौरभाष्य नाम्नी शके १५४२ की टीका है। तीसरी गहनार्थप्रकाशिका नाम की विश्वनाथ दैवज्ञकृत उदाहरणात्मक टीका है। यह शके १५५० के आसपास बनी है। चौथी दादाभाई की शके १६४१ की किरणावली टीका है। इन चारो मे रङ्गनाथ की टीका अधिक विस्तृत है। उसकी उपपत्ति भी अच्छी है। रङ्गनाथ की टीका मे दो-तीन जगह लिखा है 'इति साम्प्रदायिक व्याख्यानम्'।[१] दो-तीन स्थलो मे 'केचित्तु' लिखकर दूसरो के मत दिये है।[२] एक जगह लिखा है 'नव्यास्तु इत्यर्थ कुर्वन्ति'।[३] इससे विदित होता है कि रङ्गनाथ के पहिले की कुछ टीकाएँ उनके समय उपलब्ध थी। उन्होने 'पर्वत' नाम के टीकाकार का उल्लेख चार स्थलो मे किया है। एक जगह नार्मदोक्त बतलाते हुए एक श्लोकार्ध उद्धृत किया है।[४] अत नार्मद का कोई ऐसा गणितग्रन्थ होना चाहिए जिसमे सूर्यसिद्धान्त का उल्लेख या आधार हो। मेरे मतानुसार नार्मद का समय लगभग शके १३०० होना चाहिए।[५] कोलब्रूक ने सूर्य-सिद्धान्त की एक भूधरकृत

१. काशी की छपी हुई पुस्तक का पृष्ठ १५६, १६३, २०१ देखिए।

२. काशी की मुद्रित पुस्तक का पृष्ठ ४८, ९५, १४७ देखिए।

३. काशी की मुद्रित पुस्तक का पृष्ठ २०१ देखिए।

४ काशी की मुद्रित पुस्तक का पृष्ठ २१२ देखिए।

५ सी प्रकरण में आगे नार्मद का वर्णन पढ़िए।

टीका का उल्लेख किया है। प्रो० विटने विलसन के कैटलाग के आधार पर लिखा है[1] कि मैकेंजीसग्रह मे सम्पूर्ण सूर्यसिद्धान्त या उसके कुछ भाग पर मल्लिकार्जुन, येल्लया, आर्यभट, मम्मट और तम्मया की टीकाए थी । सिद्धान्तकार दोनो आर्यभटो मे से एक की भी किसी भी सूर्यसिद्धान्त पर टीका होना असम्भव प्रतीत होता है। अत ये टीका-कार आर्यभट उन दोनो से भिन्न कोई तृतीय व्यक्ति होगे।

बापूदेव शास्त्री ने सन् १८६० मे सूर्यसिद्धान्त का इगलिश अनुवाद किया था । वह बिब्लिओथिका इण्डिका मे छपा है (न्यू सीरीज नम्बर १)। उसमे केवल मूल श्लोको का अनुवाद और कही-कही टिप्पणिया हैं। सूर्यसिद्धान्त का रेवरेन्ड बर्जेस (Rev. Ebenzer Burjess) कृत अग्रेजी अनुवाद अमेरिकन ओरिएन्टल सोसाएटी की पुस्तक ६ सन् १८६० मे छपा है और वह अलग छपा है । पहिले बर्जेश ने यह अनुवाद किया है और उस पर कुछ टिप्पणिया लिखी हैं । बाद मे प्रो० विटने ने विस्तृत टिप्पणिया की हैं। इस पुस्तक की टिप्पणियो से सम्बन्ध रखनेवाले तथा अन्य प्रकार के सब मतो का उत्तरदायित्व प्रो० विटने ने अपने ऊपर लिया है। हिन्दुओ ने ज्योतिष ग्रीक लोगो से लिया है, यह विटने का मत है[2] और वर्जेस के मतानुसार ग्रीको ने ज्योतिष हिन्दुओ से लिया है। उन्होने अपना मत ग्रन्थ के अन्त मे अलग लिखा है।

प्रक्षेप

रङ्गनाथ ने ग्रहयुत्यधिकार के २३वे श्लोक के आगे टीका मे एक श्लोकार्ध लिखा है। उसे वे प्रक्षिप्त बताते है । लिखते है कि यह श्लोकार्ध सब पुस्तको मे नही मिलता, इसलिए मैने इसकी टीका नही की है। इसी प्रकार शृङ्गोन्नति अधिकार के १३ श्लोको के बाद आगे के दो श्लोको की टीका तो की है, परन्तु उनके विषय मे लिखा है कि ये दोनो श्लोक असगत है, इनमे बतलायी हुई रीति अशुद्ध है और लल्ल के 'धीवृद्धिदतन्त्र' पर विश्वास रखने वाले किसी सुबुद्धिमन्य ने इन्हे प्रक्षिप्त कर दिया है। त्रिप्रश्नाधिकार के पाचवे, छठे, सातवे और आठवे श्लोको के विषय मे लिखा है कि इन्हे कोई प्रक्षिप्त कहे यह नही हो सकता । इससे ज्ञात होता है कि उस समय इन चारों श्लोको को प्रक्षिप्त कहनेवाला समुदाय या टीकाए थी। 'ज्योतिषदर्पण' नाम के मुहूर्तग्रन्थ मे आधुनिक सूर्यसिद्धान्त के मध्यमाधिकार और मानाध्याय के लगभग १९ श्लोक है । वे आधुनिक

---

१. बर्जेसकृत सूर्यसिद्धान्त के अनुवाद का पृष्ठ २७८ देखिए ।

२. विटने का मरणकाल ई० स० १८९४ है।

ग्रन्थ से मिलते है परन्तु उनमे आगे-पीछे के श्लोक रहते हुए बीच मे ३ श्लोक ऐसे हैं जो कि आधुनिक रङ्गनाथीय टीका की पुस्तक मे नही मिलते और उनमे कोई पूर्वापर विरोध नही है।

प्रसार

सूर्यसिद्धान्तोक्त भगणादि मानो को स्वीकार करनेवाले करणादि ग्रन्थ तथा उसकी जो टीकाए ऊपर बतलायी गयी उनके रचयिताओ मे ग्रहलाघवकार और उनके पिता केशव कोकण प्रान्त के है। भास्वतीटीकाकार माधव कान्यकुब्ज अर्थात् कन्नौज के निवासी है। मकरन्दकार काशीस्थ है। आर्यभटीय के टीकाकार परमादीश्वर मलावार प्रान्त के मालूम होते है। ज्योतिपदर्पणकार कोडपल्ली के है। यह ग्राम कही कर्नाटक प्रान्त मे है। ग्रन्थ द्वारा इसका उत्तर अक्षाग १६।४३ आता है। वार्षिक तन्त्रकार विद्दण कार्नाटक हैं। वाविलाल तैलगण के हैं। येल्लया इत्यादि टीकाकार तैलगण मालूम होते हैं। रङ्गनाथ और विश्वनाथ दोनो की टीकाएँ काशी मे बनी हैं। दादाभाई दक्षिण कोकण के हैं। रामविनोद ग्रन्थ अकबर के समय दिल्ली मे बना है। इसमे मालूम होता है कि शक की १३वी शताब्दी से १५वी पर्यन्त सूर्यसिद्धान्त का प्रसार प्राय भारतवर्ष के सभी प्रान्तो मे था। यद्यपि यह समय बहुत प्राचीन नही है, तथापि सूर्यसिद्धान्त भास्कराचार्य के समय और उसके पहिले भी सर्वमान्य था। दूसरी बात यह कि जैसे-जैसे समय वीतता जाता है, नवीन करणग्रन्थ बनते जाते है और प्राचीन करण गणित मे सर्वदा उपयुक्त न होने के कारण लुप्त हो जाया करते हैं। इसलिए शके १२२० के पूर्व भी आधुनिक सूर्यसिद्धान्तानुसार बने हुए करणग्रन्थ रहे होगे, पर उनका लोप हो गया होगा।

शब्दयोजना

ज्योतिषग्रन्थो मे तीन के अर्थ मे राम, नव के अर्थ मे नन्द और चौबीस के अर्थ मे जिन या सिद्ध शब्द अनेको स्थानो मे मिलते हैं, परन्तु सूर्यसिद्धान्त के विषय मे यह एक बडी आश्चर्यजनक बात है कि उसका रचनाकाल कृतयुग का अन्त बतलाया है, तदनुसार कृतयुग के बाद राम, नन्द और जिनके वाचक शब्द सख्या का बोध कराने के लिए उसमे कही भी नही आये है और ग्रहो के जो नाम यावनी भाषा के माने जाते है उनमे से उसमे एक भी नही आया है, परन्तु लिप्ता या लिप्तिका (स्पष्टाधिकार ४५, ६४, ६५, ६६) होरा (भूगोलाध्याय १९) और केन्द्र (स्पष्टाधिकार २९, ४५) शब्द जो कि ग्रीक भाषा के समझे जाते है उसमे हैं। पञ्चसिद्धान्तिकोक्त मूल सूर्यसिद्धान्त और अन्य चार सिद्धान्तो मे ये शब्द थे या नही, यह जानने का कोई साधन नही है क्योंकि वराहमिहिर ने उन सिद्धान्तो का मूलस्वरूप नही लिखा है।

बीज

मकरन्द मे सूर्यसिद्धान्तोक्त ग्रहादिको मे निम्नलिखित बीजसस्कार दिया गया है।

ग्रह इत्यादि	महायुग मे		ग्रह इत्यादि	महायुग मे	
	भगणों मे बीजसस्कार	बीजसंस्कृत-भगण		भगणो मे बीजसस्कार	बीज सस्कृत-भगण
सूर्य	० भगण	४३२००००	बुध	−१६ भगण	१७९३७०४४
चन्द्र	० ,,	५७७५३३३६	गुरु	− ८ ,,	६३४२१२
चन्द्रोच्च	−४ ,,	४८८१९९	शुक्र	−१२ ,,	७०२२३६४
चन्द्रपात	+४ ,,	२३२२४२	शनि	+१२ ,,	१४६५८०
मगल	० ,,	२२९६८३२			

सूर्य के सम्बन्ध से अन्य ग्रहो के स्थान लाकर उनकी तुलना करने की बेटली की रीति द्वारा प्रो० विटनी ने इस बीज का समय सन् १५४१ (शक १४६३) निश्चित किया है परन्तु यह स्पष्ट है कि इसका समय शके १४०० से पूर्व है। रङ्गनाथ, नृसिहदैवज्ञ और विश्वनाथ ने अपनी टीकाओ मे इसकी चर्चा नही की है, पर उन्हे यह मालूम अवश्य रहा होगा, क्योकि उनका समय मकरन्द सर्वत्र प्रसिद्ध था। मूलग्रन्थ में न होने के कारण उन्होने नही लिखा होगा। रामविनोद (शके १५१२) करण मे यह सस्कार दिया हुआ है। उसमे भगण सख्याएँ उपर्युक्त ही ह, परन्तु चन्द्रोच्च और बुध के सस्कार धनात्मक है। मेरी देखी हुई पुस्तक (डे० का० स० न० २०४ सन् १८८३।४) के लेखक का यह कदाचित् प्रमाद हो सकता है। शेष बाते समान है। वार्षिकतन्त्र नामक ग्रन्थ मे भी प्राय इसके समान ही बीजसस्कार है। वह आगे उस ग्रन्थ के वर्णन मे लिखा जायगा।

रङ्गनाथ ने लिखा है कि कुछ पुस्तको के मानाध्याय (अन्तिम अध्याय) मे आधुनिक ग्रन्थ का २२वा श्लोक नही है। उसके आगे के श्लोक है। मानाध्याय की समाप्ति के बाद बीजोपनयन नाम का अध्याय है। उसमे २१ श्लोको के बाद उपर्युक्त मानाध्याय का २२वा श्लोक है। इसके बाद मानाध्याय के ४ श्लोक लिखकर ग्रन्थसमाप्ति की गयी है। रङ्गनाथ ने २१ श्लोको के बीजोपनयनाध्याय को प्रक्षिप्त कहा है और उसकी टीका नही की है। केवल मूल श्लोक लिखे है। वे श्लोक विश्वनाथी टीका मे भी है। उनमे ग्रहो और मन्दशीघ्रपरिध्यशो के लिए बीजसस्कार बताया है।[२] बीज लाने की रीति से सिद्ध होता है कि वह कलियुगारम्भ मे शून्य था। उसके बाद ९०००० वर्षो तक क्रमश बढता जाता है और फिर उतने ही वर्ष पर्यन्त घटता रहता है अर्थात् आरम्भ से १८०००० वर्षो बाद फिर शून्य हो जाता है। एक वर्ष मे मध्यमग्रहो में निम्नलिखित विकलात्मक बीजसस्कार आता है।

सूर्य	+	१/७५०	गुरु	−	१०/७५०
चन्द्र	−	३/७५०	शुक्रशीघ्र	−	९०/७५०
मगल	+	२४/७५०	शनि	+	७/७५०
बुधशीघ्र	−	२२/७५०			

इसमे रवि का बीज १/७५० विकला धन होने के कारण वर्षमान लगभग ५ प्रतिविपल कम हो जायगा अर्थात् असस्कृत वर्षमान ३६५।१५।३१।३१।२४ बीज से सस्कृत

१. बर्जेसकृत सूर्यसिद्धान्त के अनुवाद का पृष्ठ २० देखिए।

२. इन श्लोकों में संख्या बतलाने के लिए 'राम' और 'जिन' शब्द आये है

होने पर ३६५।१५।३१।३१।१६ हो जायगा। यह बीज मुझे किसी भी करणग्रन्थ मे नही मिला।

प्रमेय

हमारे ज्योतिषसिद्धान्तग्रन्थो मे बतलाया हुआ ज्ञान मुख्य तीन भागो मे विभाजित किया जा सकता है। प्रथम मे भुवनसस्था और आकाशस्थ ज्योतियो की गति के कारण इत्यादि होगे। द्वितीय मे किसी विवक्षितकाल मे ग्रहो की मध्यमगति और किसी इष्ट समय उनकी मध्यमस्थिति तथा तृतीयभाग मे उनकी स्पष्टगति और स्पष्टस्थिति अर्थात् मध्यममान से जो स्थिति आती है उसमे कुछ अन्तर पड जाने के कारण आकाश मे उससे भिन्न दिखाई देने वाली प्रत्यक्ष स्थिति होगी। अन्तर पडने के कारण और किसी इष्ट समय उस अन्तर का प्रमाण लाने के उपकरण और रीतियाँ तृतीय भाग मे ही आवेगी। इस प्रकार तीन भागो मे सब प्रमेय आ जायेंगे। इगलिश म ज्योतिषशास्त्र की जिस शाखा को Physical Astronomy कहते है उसके बहुत से विषयो की गणना हम प्रथम विभाग अर्थात् भुवनकोश मे करते है। इस शाखा का ज्ञान जैसे-जैसे बढता जाता है वैसे-वैसे उपर्युक्त तीन भेदो मे से दूसरे और तीसरे प्रकार के उसमे भी विशेषत. तीसरे प्रकार के ज्ञानो की वृद्धि होती जाती है, परन्तु यूरोपियन ज्योतिषशास्त्र के इतिहास मे जैसे कोपर्निकस के समय से अनेको महत्वशाली आविष्कार होते गये वैसे हमारे देश मे कुछ भी नही हुआ। इसलिए सृष्टि सस्थातत्व का इतिहास जैसे यूरोपियन ज्योतिष मे एक महत्व का विषय समझा जाता है वैसे भारतीय ज्योतिष मे नही। यहा के सब ग्रन्थो के मत प्राय. समान है और उनमे कोई सशोधन नही हुआ है, अत. उपर्युक्त प्रथम प्रकार के हमारे ग्रन्थो के प्रमेयो को एक ही जगह लिखना ठीक होगा। उनमे से कुछ बाते उपोद्घात मे लिखी जा चुकी है, कुछ आगे लिखी जायगी। दूसरे भेद के विषय प्रत्येक सिद्धान्त मे भिन्न-भिन्न है। उनका विवेचन वे जहा के है उसी प्रकरण में किया गया है। तीसरे भेद की कुछ बाते सृष्टिसस्था के विवेचन मे और शेष स्पष्टाधिकार मे लिखी जायेगी। वे भी सब सिद्धान्तो मे प्राय सरीखी ही है, अत उन सबका स्पष्टाधिकार मे एकत्र विचार करना ठीक होगा। जहा सिद्धान्तो मे कोई मतभेद है वहा तुलनात्मक दृष्टि से विचार करना अच्छा होगा। इस प्रकार सब सिद्धान्तो के प्रमेयो का विवेचन हो जायगा।

पञ्चसिद्धान्तिकोक्त सिद्धान्त और इस प्रकरण के पांच सिद्धान्तो के भगणादि मान ऊपर लिखे है। पञ्चसिद्धान्तिकोक्त सिद्धान्तो द्वारा लायी हुई मध्यम ग्रहों की स्थिति की यरोपियनग्रन्थागत ग्रहस्थिति से तुलना भी पहिले कर चुके है।

सूर्यसिद्धान्तादि वर्तमान पाच सिद्धान्तो द्वारा लाये हुए मध्यमग्रहो की यूरोपियन ग्रन्थो मे लाये हुए ग्रहो से तुलना आगे आर्यभट के वर्णन मे करेंगे।

सोमसिद्धान्त

चन्द्रमा ने शौनकऋषि को जो सिद्धान्त सिखलाया उसे सोमसिद्धान्त कहते है। इस सिद्धान्त के अहर्गणानयन मे पहिले सृष्ट्यारम्भ मे वर्तमान कलियुगारम्भ पर्यन्त वर्षसख्या लायी गयी है। उसमे वर्तमान कलियुग के आरम्भ से इष्टवर्ष पर्यन्त की वर्ष सख्या मिलानी पडती है। इससे मालूम होता है, यह सिद्धान्त कलियुग में बना है। इसका वास्तव समय ऊपर निश्चित किये हुए सूर्यसिद्धान्तकाल के तुल्य या उससे कुछ अर्वाचीन है। इसमे १० अध्याय और ३३५ अनुष्टुप् श्लोक है।

उपर्युक्त 'ज्योतिषदर्पण' नामक ग्रन्थ मे सोमसिद्धान्त का एक श्लोक मिलता है और एक श्लोक सूर्यसिद्धान्त की रङ्गनाथकृत टीका मे भी है। सिद्धान्ततत्वविवेककार कमलाकर ने निम्नलिखित श्लोक मे सोमसिद्धान्त का उल्लेख किया है।

ब्रह्मा प्राह च नारदाय हिमगुर्यच्छौनकायामलम्।
माण्डव्याय वसिष्ठसज्ञकमुनि सूर्यो भयायाह यत्॥६५॥

भगणमानाध्याय।

इसके मध्यमाधिकार मे 'गार्ग्यश्लोकौ' कहकर अग्रिम श्लोक लिखे है—

अथ माहेश्वरायुष्ये ब्रह्मणोऽधुना।
सप्तमस्य मनोर्याता द्वापरान्ते गजाश्विन॥२८॥
खचतुष्केभनागार्थशररन्ध्रनिशाकरा १९५५८८०००० ।
सृष्टेरतीता सूर्याब्दा वर्तमानात्कलेरथ॥

ये ही श्लोक रोमशसिद्धान्त मे भी 'गर्ग' कहकर लिखे है। उसमे प्रथम श्लोक का पूर्वार्ध 'परार्धप्रथमाहेस्मिन्नायुषोब्रह्मणोधुना' इस प्रकार है।

इस सिद्धान्त मे 'नन्द' शब्द एक जगह आया है। पहिले बता चुके है कि यह वर्तमान सूर्यसिद्धान्त के बिलकुल समान है।

वसिष्ठसिद्धान्त

सम्प्रति दो वसिष्ठसिद्धान्त उपलब्ध है। मूलतत्वो में किसी प्रकार का भेद न होते हुए भी दोनों के स्वरूप भिन्न है। उनमे से एक काशी मे छपा है। उसमें ५ अध्याय और सब मिलकर अनुष्टुप् छन्द के ४९ श्लोक है। उसके आदि और अन्त मे लिखा है

कि वसिष्ठ ने माण्डव्य ऋषि से यह सिद्धान्त कहा था। यह ग्रन्थ अत्यन्त संक्षिप्त है। अन्य सिद्धान्तग्रन्थों मे भगणादि मानो के रहते हुए भी ग्रहो के कक्षामान अलग लिखे रहते है, पर इसमे केवल कक्षामान ही लिखे है। उनके द्वारा युगीय ग्रहभगणसख्या लानी पडती है और वह सूर्यसिद्धातोक्त भगणसख्या से मिलती है। कुछ विषयो का अभाव होने के कारण यह ग्रन्थ अपूर्ण भी है। इसमे युगीय सावनदिवससख्या[1] नही बतायी है। अहर्गण का आरम्भकाल भी नही बताया है। उत्क्रमज्याओ का उपयोग तो बतलाया है, पर उनके मान नही लिखे है।[2] मन्दोच्च और पातो के विषय मे केवल इतना ही लिखा है कि--

मन्दोच्चपातभगणानुपपत्यानयेद्युगे।
यत्र मन्दफल शून्य मन्दोच्चस्थानमुच्यते ।।३१।।
याम्यकेन्द्रफल शून्य पातस्तत्र विनिर्दिशेत् ।।--मध्यमाधिकार ।

अर्थात् गणित करनेवाले को उच्च और पात वेध द्वारा लाने चाहिए। इसका अभिप्राय तो इस कथन सरीखा ही होता है कि उसे नवीन सिद्धान्तग्रन्थ बनाना चाहिए। कर्ण लाने की रीति बतलायी है, पर वह अपूर्ण है। इसमे मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, छायाधिकार (त्रिप्रश्न) प्रकीर्ण और भूगोल ये केवल पाच अध्याय है। प्रकीर्णाध्याय मे ग्रहो का दिग्दर्शनमात्र कराया है। छायाधिकार भी सक्षिप्त ही है। स्पष्टाधिकार मे आधुनिक सूर्यसिद्धान्त का एक श्लोक है। उसमे अहर्गणारम्भ लङ्का की आधीरात से बताया है। इस बात से भी इसका सूर्यसिद्धान्त से साम्य सिद्ध होता है। इसमे राम, नन्द और सिद्ध शब्द आये है।

भिन्न-भिन्न वसिष्ठसिद्धान्त

रङ्गनाथ ने इसका एक श्लोकार्ध उद्धृत किया है और उसे लघुवसिष्ठसिद्धान्त का बतलाया है। इसी कारण ग्रहण के सम्बन्ध मे एक श्लोक वृद्धवसिष्ठसिद्धान्त के नाम से लिखा है। पता नही चलता, रङ्गनाथ के समय वसिष्ठसिद्धान्त से भिन्न कोई वृद्धवसिष्ठसिद्धान्त भी था या नही। उन्होने ग्रहण विषयक जो श्लोक उद्धृत किया है, वह अनुष्टुप् नही बल्कि उपजाति छन्द का है। कमलाकर ने जिस वसिष्ठसिद्धान्त का उल्लेख किया है वह लघुवसिष्ठसिद्धान्त ही ज्ञात होता है।

---

१. डे० का० सं० की प्रति में नक्षत्रभ्रमसंख्या लिखी है। उसके द्वारा लाये हुए सावन दिन भिन्न आते हैं।

२. क्रमज्यायों के मान लिखे हैं। उनके द्वारा उत्क्रमज्याएं लायी जा सकती है।

दूसरे वसिष्ठसिद्धान्त में जो कि डेक्कन कॉलेज के सग्रह मे है केवल सृष्टिसस्था और ग्रहो की कक्षाए लिखी है अर्थात् उसमे केवल मध्यमाधिकार ही है। सिद्धान्तग्रन्थो के अन्य अधिकार उसमे बिलकुल नही है। श्लोक सभी अनुष्टुप् छन्द के है। अन्त मे लिखा है 'वृद्धवसिष्ठप्रणीतगणितस्कन्धे विश्वप्रकाशे'। इसके आगे लिखा है 'कक्षाध्यायश्चतुर्थ.'। पता नही चलता अन्य तीन अध्याय कहा समाप्त हुए है। इससे यह ग्रन्थ अपूर्ण सिद्ध होता है। आरम्भ मे लिखा है कि वसिष्ठ ने यह सिद्धान्त वामदेव से कहा'। माण्डव्य का नाम नही है।

रोमशसिद्धान्त

विष्णु ने वसिष्ठ और रोमश से इस सिद्धान्त का वर्णन किया था। पहिले इस अर्थ के सूचक श्लोक लिखे जा चुके है। इसमे ११ अध्याय और सब मिलकर अनुष्टुप् छन्द के ३७४ श्लोक है। भगणमानादि विषयो मे इसका सूर्यसिद्धान्त से पूर्ण साम्य है। इस सिद्धान्त के श्लोको का उल्लेख हमे अन्य किसी ग्रन्थ मे नही मिला। इसमे 'नन्द' और 'सिद्ध' शब्द आये है। मगल के लिए 'आर' शब्द केवल एक बार आया है। नदियो के नामो मे 'कृष्णवेण्या' नाम आये है। अत. इसका रचयिता कदाचित् दाक्षिणात्य हो सकता है।

शाकल्योक्त ब्रह्मसिद्धान्त

इसमे ६ अध्याय और ७६४ श्लोक हैं। ब्रह्मा ने नारद से इसका वर्णन किया था। इसके मूलश्लोको मे शाकल्य का नाम कही नही है, पर प्रत्येक अध्याय के अन्त मे लिखा है 'शाकल्यसहिताया द्वितीयप्रश्ने ब्रह्मसिद्धान्ते'। यह बात हमारे सुनने मे नही आयी है कि शाकल्यसहिता के अन्य प्रश्न भी सम्प्रति उपलब्ध है। रङ्गनाथ की टीका मे इस ग्रन्थ के अनेको वाक्य भिन्न-भिन्न प्रसगो मे आये है। वाक्य लिखते समय उन्होने कही 'शाकल्योक्ते' और कही-कही 'ब्रह्मसिद्धान्ते' लिखा है। सिद्धान्ततत्त्वविवेक मे भी 'ब्रह्मा प्राह च नारदाय हिमगु. . .इत्यादि' श्लोक मे इस सिद्धान्त का उल्लेख है। उसमे इसके कुछ अन्य श्लोक भी आये है।

इसके भगणादि मान सर्वथा सूर्यसिद्धान्त सरीखे है और वे पहिले ही लिख दिये गये है। अन्य सिद्धान्तो की भॉति इसमे मध्यम स्पष्ट और त्रिप्रश्न प्रभृति अधिकार पृथक्-पृथक् नही है। कई अधिकारो के विषय एक ही एक अध्यायो मे है और ६ अध्यायो में सिद्धान्त के प्राय सभी विषय आ गये हैं। इतना ही नहीं, धर्मशास्त्रसम्बन्धी भी कुछ बाते जो कि अन्य सिद्धान्तग्रन्थो मे नही पायी जाती, इसमे है। तृतीयाध्याय में सूर्य और चन्द्रमा के क्रान्तिसाम्य (महापात) का विचार किया है। वही तत्कालीन

स्नानदानादि का माहात्म्य बतलाते हुए प्रसगवशात् धर्मशास्त्रसम्बन्धी विषयो का आरम्भ हुआ है जो कि ३४वे श्लोक से अध्यायसमाप्तिपर्यन्त है अर्थात् १३८ श्लोको मे केवल इसी विषय का विवेचन किया है। उसमे सक्रान्तिपुण्यकाल, तिथिगण्डान्त तथा प्रदोषव्यापिनी, मध्याह्न-व्यापिनी और पूर्वविद्धा तिथिया कहा-कहा लेनी चाहिए इत्यादि विषयो का विचार किया है और एकादशी, श्राद्ध, याग, उपाकर्मादि कर्म विशेष तथा गणेशचतुर्थी प्रभृति तिथिविशेष का कालनिर्णय है।

प्रथमाध्याय मे ज्योतिषशास्त्र के निम्नलिखित उत्पादक बतलाये है—

'एतच्च मत्त शीताशो पुलस्त्याच्च विवस्वत ।
रोमकाच्च वसिष्ठाच्च गर्गादपि वृहस्पते ।।६।।
अष्टधा निर्गत शास्त्र . .

यहा 'मत्त' शब्द का प्रयोग इस ब्रह्मसिद्धान्त के उद्देश्य से ही किया गया है। गर्ग और बृहस्पति के केवल सहिताग्रन्थ प्रसिद्ध है। शेप सोम, पुलस्त्य, सूर्य, रोमक और वसिष्ठ के सिद्धान्तग्रन्थ प्रसिद्ध ही है। पौलिशसिद्धान्त ही पुलस्त्य का सिद्धान्त है। इस ग्रन्थ मे 'पौलिश' नाम से भी दो-तीन जगह उसका उल्लेख है। प्रथमाध्याय मे एक स्थान मे लिखा है—

तस्मात्पञ्चसु सिद्धान्तेषूक्तमार्गोवधार्यताम् ।।६०।।

सूर्य, सोम, रोमश और पौलिश नामो का उल्लेख और भी दो-तीन जगह मिलता है, अतः यह स्पष्ट है कि यह सिद्धान्त सूर्य, सोमादि सिद्धान्तों के बाद बना है। इसका ठीक समय बताना तो कठिन है, परन्तु निम्नलिखित आधार पर अनुमान होता है कि यह शके ७४३ के पश्चात् बना होगा।

इसके प्रथमाध्याय मे लिखा है—

'प्रमाथि प्रथम वर्ष सौर कल्पस्य सर्वदा ।।३७।।'

बार्हस्पत्य मान से प्रभवादि ६० सवत्सरो की गणना बहुत से ज्योतिष ग्रन्थों मे मिलती है, परन्तु सौरमान की पद्धति का उल्लेख केवल इसमे रोमश-सिद्धान्त में तथा भटोत्पल की टीका मे ही है। उसमे भी सौरमान से कल्प का प्रथम वर्ष प्रमाथी केवल इसी सिद्धान्त मे माना है। इस प्रकार सर्वदा शक मे १२ जोड़ने से सवत्सर आता है। आजकल नर्मदा के दक्षिण देशो मे सवत्सर बार्हस्पत्यमान से नही मानते। वहाँ सौरमान का ही प्रचार है। सौरमान से शक मे १२ जोडने पर सवत्सर आता है, परन्तु बार्हस्पत्यमान से लगभग ८५ वर्षो मे एक सवत्सर का लोप होता है, अतः शक में हमेशा नियमित अङ्क जोड़ने से बार्हस्पत्यसवत्सर नही आवेगा। शके ७४३ के पहिले १२ से

कम जोडना पडता था। शके ७४३ से ८२७ पर्यन्त १२ जोडते थे। प्रत्येक ८५ वर्ष के पर्यय मे एक-एक अक बढाते जाना चाहिए अर्थात् १३, १४ इत्यादि जोडते जाना चाहिए। कुछ ताम्रपट्टादि प्राचीन लेखो द्वारा पता चलता है कि शके ७४३ के पूर्व उत्तर भारत की भाँति दक्षिण मे बार्हस्पत्यसवत्सर मानने की पद्धति थी, परन्तु शके ७४३ से ८२७ पर्यन्त १२ ही जोडते थे। हम समझते है तभी से दक्षिण मे सौरसवत्सर का प्रचार हुआ होगा। आगे सवत्सरविचार मे इस विषय का सविस्तार विवेचन किया जायगा।

चूकि इस सिद्धान्त मे कल्प का प्रथमवर्ष प्रमाथी माना गया है अर्थात् शक मे १२ जोडकर सवत्सर लाया गया है, अत इसका रचनाकाल शके ७४३ के पश्चात् होगा। इससे प्राचीन नही हो सकता। यह बात बिलकुल नि सन्देह है।

इस ग्रन्थ मे एक विशेष बात सप्तर्षियो का शरभोग है जो कि अन्य सिद्धान्तो मे नही पाया जाता।

प्रथम आर्यभट

नाम

इन्होने 'आर्यभटीय' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की है। उपलब्ध ज्योतिषग्रन्थो मे यह सबसे प्राचीन है। वे स्वय तो अपने ग्रन्थ को आर्यभटीय ही कहते है, पर अन्य बहुत से ज्योतिषियो ने उसे 'आर्यसिद्धान्त' कहा है और ऐसा कहना ठीक भी है। एक और आर्यभट इनके बाद हुए है। उनके भी ग्रन्थ का नाम आर्यसिद्धान्त ही है, इसलिए मैने समझने मे सुभीता होने के लिए इन्हे प्रथम आर्यभट और इनके सिद्धान्त को प्रथम आर्यसिद्धान्त कहा है।[1]

इस सिद्धान्त के मुख्य दो भाग है। प्रथम मे गीति छन्द के १० पद्य है। अन्य सिद्धान्तो के मध्यमाधिकार मे बतलायी जानेवाली प्राय. सभी बाते अर्थात् ग्रहभगण-सख्या इत्यादि मान इन १० पद्यो मे पठित है। इस भाग को दशगीतिक कहते है।

द्वितीय भाग मे तीन प्रकरण है। उसमे अन्य सिद्धान्तो के अन्यान्य विषय है। उसमें आर्या छन्द के १०८ पद्य है, इसलिए उसे आर्याष्टाशत कहते है। कोई-कोई इन दो भागो को दो ग्रन्थ मानते है। इसके टीकाकार सूर्ययज्वन् ने दोनो को दो प्रबन्ध कहा है। दोनो के आरम्भ मे दो भिन्न-भिन्न मगलाचरण है। कदाचित् इसी कारण किसी ने

---

१. आगे यदि कही प्रथम या द्वितीय विशेषण बिना आर्यभट या आर्यसिद्धान्त का नाम आये तो उसे प्रथम ही समझना चाहिए।

इन्हे दो भिन्न-भिन्न ग्रन्थ मान लिया हो, परन्तु ये अन्योन्याश्रित है और एक के बिना दूसरा बिलकुल निरुपयोगी कहा जा सकता है। अत. इन्हे एक ही ग्रन्थ मानना ठीक होगा। आर्यभट का उद्देश्य भी ऐसा ही दिखाई देता है। उन्होने प्रथम भाग का कोई भिन्न नाम नही रखा है और न तो उसके अन्त मे उपसहार किया है। उपसहार केवल ग्रन्थ की समाप्ति मे है और वहा आर्यभटीय नाम लिखा है। ग्रन्थ मे सब मिलकर चार प्रकरण है। ग्रन्थकार स्वय उन चारो को पाद नही कहते, पर उन्हे पाद कहने की रूढि है। दशगीतिक को यदि भिन्न ग्रन्थ मानते है तो एक पाद उसमे चला जाता है और शेष तीन बच जाते है। उन्हे द्वितीय भाग का पाद (चतुर्थाश) कहना ठीक नही है। साराश यह कि दशगीतिक और आर्याष्टाशत दोनो को एक ही ग्रन्थ मानना उचित है। दशगीतिक मे १० के अतिरिक्त दो पद्य और है। एक मे मगलाचरण और दूसरे मे सख्या-परिभाषा है। इस प्रकार ग्रन्थ मे सब १२० पद्य है। ।आर्याष्टाशत शब्द भ्रामक है। इसके विषय मे कुछ यूरोपियन विद्वानो की यह धारणा हो गयी थी कि इसमे ८०० आर्याए है। सन् १८७४ मे हालैण्ड के लेडेन नामक स्थान मे डा० केर्न ने परमादीश्वरकृत भटदीपिका टीकासहित यह आर्यसिद्धान्त छपवाया है। इसके पहिले यूरोपियन विद्वानो को इसकी जानकारी कम थी।

तीन पक्ष

आजकल हमारे देश मे ग्रहगणितग्रन्थो के सौर, आर्य और ब्रह्म ये मुख्य तीन पक्ष माने जाते है। प्रथम पक्ष का मूलग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त, द्वितीय का आर्यसिद्धान्त और तृतीय का ब्रह्मसिद्धान्त है। भिन्न-भिन्न तीन पक्ष होने का कारण यह है कि इनके वर्षमान एक दूसरे से कुछ भिन्न है और किसी कालसम्बन्धी––उदाहरणार्थ कल्प या महायुगसम्बन्धी ग्रहादिकों की गति प्रत्येक मे भिन्न है। तीनो पक्षो की और उनके अनुयायी सब ग्रन्थो की शेष सभी बाते समान कही जा सकती है। पक्षविशेष का अभिमान कब उत्पन्न हुआ, यह आगे यथाप्रसग बतलाया जायगा।

आर्यसिद्धान्त और आर्यपक्ष शब्द तो हमारे देश मे प्रसिद्ध है, पर आज प्रत्यक्ष आर्यसिद्धान्त ग्रन्थ विशेषत किसी को ज्ञात नही है। हम समझते है महाराष्ट्र मे किसी भी प्राचीन ज्योतिषी के पास इसकी प्रति नही होगी। सम्प्रति आर्यपक्ष प्रचलित है और उसके अभिमानी भी बहुत है, पर मूल आर्यसिद्धान्त द्वारा उसका स्वरूप जानने वाले बहुत थोडे है।

अङ्कसंज्ञा

अन्य ज्योतिष ग्रन्थो मे एक के लिए भू, तीन के लिए राम और उसी प्रकार अन्य

भी बहुत से नामो का प्रयोग सख्याओ के लिए किया गया है, पर आर्यभट ने ऐसा न करके सख्याएँ अक्षरो द्वारा बतलायी है। उसका प्रकार यह है —

अ	= १	ए	= १००००००००००
इ	= १००	ऐ	= १००००००००००००
उ	= १००००	ओ	= १००००००००००००००
ऋ	= १००००००	औ	= १००००००००००००००००
लृ	= १००००००००		

क	= १	च	= ६	ट	= ११	त	= १६	प	= २१
ख	= २	छ	= ७	ठ	= १२	थ	= १७	फ	= २२
ग	= ३	ज	= ८	ड	= १३	द	= १८	ब	= २३
घ	= ४	झ	= ९	ढ	= १४	ध	= १९	भ	= २४
ङ	= ५	ञ	= १०	ण	= १५	न	= २०	म	= २५

य	= ३०	श	= ७०
र	= ४०	ष	= ८०
ल	= ५०	स	= ९०
व	= ६०	ह	= १००

वराहमिहिर ने पञ्चसिद्धान्तिका मे सख्याएँ दिखलाने के लिए अन्य सिद्धान्तो की परिभाषा का ही ग्रहण किया है। इससे ज्ञात होता है कि आर्यभट के पहिले भी वह प्रचलित थी और होनी ही चाहिए। आर्यभट ने सख्याएँ थोडे मे बतलाने के लिए इस पद्धति का उपयोग किया होगा और इसकी कल्पना भी उन्होने ही की होगी क्योकि यह अन्य किसी भी ग्रन्थ मे नही मिलती। इससे बहुत थोड़े मे काम चल जाता है। सब ग्रहो के भगण बतलाने में अन्य सिद्धान्तो मे प्राय. ९ या १० श्लोक लगते है, पर इसमे वे दो ही आर्याओ मे बतला दिये गये है। इसी प्रकार अन्य सिद्धान्तो के मध्यमाधिकार मे प्राय ५० से ७० पर्यन्त श्लोक रहते है। उनमे के प्राय सभी विषय यहाँ १० गीति-पद्यो मे ही पठित है। अत इस पद्धति द्वारा लिखे हुए दशगीतिक सूत्र कण्ठस्थ करने के लिए बडे सुभीते के है, परन्तु इसमे हित की अपेक्षा अनहित अधिक है। यहा इसका एक उदाहरण देते है। इससे इस पद्धति के स्वरूप और उससे होने वाली असुविधा का थोडे मे ज्ञान होगा। ग्रहभगणसम्बन्धी प्रथम आर्या का पूर्वार्ध इस प्रकार है'—

"युगरविभगणा. ख्युघृशशिचयगियिङुशुछ्लृकुङिशिबुण्लृष्खृप्राक्"

इसका अर्थ यह होता है कि महायुग मे कु (पृथिवी) के १५८२२३७५०० परिवर्त होते है।[1] डा० केर्न की पुस्तक मे 'बु' के स्थान मे 'षु' पाठ है। षु का अर्थ होता है ८००००० जो कि वास्तविक सख्या से ५७०००० अधिक है। यहा 'बु' ` स्थान मे 'षु' आ जाने से इतनी अशुद्धि हुई।

ङि —	५००	ण्लृ =	१५०००००००००
शि =	७०००	ख्षृ =	८२०००००००
बु =	२३००००	ङिशिबुण्लृख्षृ =	१५८२२३७५००

यह अशुद्धि है अत्यन्त ध्यानपूर्वक सशोधन करके छपायी हुई मुद्रित पुस्तक की[2] तो फिर हस्तलिखित पुस्तको मे कितनी अशुद्धिया हो सकती है और वे परम्परया किस प्रकार बढती जाती है इसे वही समझ सकेगा जिसे लिखित पुस्तको के अवलोकन के पर्याप्त प्रसग आये होगे। परम्परया प्रचलित व्याख्याए तथा अन्य ग्रन्थो की सगति प्रभृति साधन न होते तो यह ग्रन्थ कुछ समय बाद बिलकुल निरुपयोगी हो जाता।

ग्रहगतिभगण

अब यहा ग्रहभगणादिमान सम्बन्धी दोनो आर्याए और उनके अनुसार महायुगीय भगणादि सख्याए लिखते है।

युगरविभगणा ख्युघृ शशि चयगियि—
ङुशुछ्लृ कु ङिशबुण्लृख्षृप्राक्।
शनि ढुङविघ्व गुरुरिव्रच्युभ कुजभद्लि—
झनुखृ भृगुबुधसौरा ॥१॥

चन्द्रोच्चज्रुष्खिध बुधसुगुशिथन
भृगुजषबिखुछृ शेषार्का.।
बुफिनच पातविलोमा बुधाह्न्य—
जार्कोदयाच्च लङ्कायाम् ॥२॥

---

१. आर्यभट पृथ्वी में दैनन्दिन गति मानते है। इसलिए उन्होंने भभ्रमसंख्या लिखी है। अन्य सिद्धान्तो में इसके स्थान में नक्षत्रभ्रमसंख्या लिखी रहती है।

२. यह अशुद्धि टीका द्वारा तो नही, पर उपपत्ति तथा अन्य ग्रन्थों के मेल इत्यादि का विचार करने से सहज ही ध्यान मे आ जाती है, फिर भी डॉ० केर्न की भूल बहुत से विद्वानों को भ्रम उत्पन्न कर देगी।

भूभ्रम	१५८२२३७५००	गुरुभगण	३६४२२४
रविभगण	४३२००००	शुक्रभगण	७०२२३८३
सावनदिन	१५७७९१७५००	शनिभगण	१४६५६४
चन्द्रभगण	५७७५३३३६	सौरमास	५१८४००००
चन्द्रोच्चभगण	४८८२१९	अधिमास	१५९३३३६
चन्द्रपातभगण	२३२२२६	चान्द्रमास	५३४३३३३६
मगलभगण	२२९६८२४	तिथि	१६०३००००८०
बुधभगण	१७९३७०२०	क्षयाह	२५०८२५८०

वर्षमान—३६५ दिन १५ घटी ३१ पल १५ विपल

गुरु और बुध के भगणो को छोडकर इस आर्यसिद्धान्त के शेष सब भगण ऊपर लिखे हुए मूल सूर्यसिद्धान्तोक्त भगणो के जिनमे कि राहुभगण पठित नही है, समान है। ऊपर सिद्ध कर चुके है कि मूलसूर्यसिद्धान्त आर्यभट से प्राचीन है, अत आर्यभट ने गुरु और बुध को छोडकर शेष ग्रहो के भगण मूलसूर्यसिद्धान्त मे लिये होगे और गुरुबुध के भगण अपने अनुभव द्वारा दृक्प्रतीति के अनुसार निश्चित किये होगे।

युगपद्धति

आर्यभट की युगपद्धति अन्यसिद्धान्तो से कुछ भिन्न है। दशगीतिका मे वे लिखते है—

"काहो मनवो ढ १४ मनुयुगश्ख ७२ गतास्तेच ६
मनुयुगछ्ना २७ च। कल्पादेर्युगपादा ग ३ च गुरु—
दिवसाच्च भारतात्पूर्वम् ॥३॥"

यहा एक मनु मे ७२ युग बतलाये है। अन्य सिद्धान्तो की तरह ७१ नही है। प्रत्येक मन्वन्तर के आरम्भ मे सन्धि नही बतलायी है। इसमे कल्पादि से आरम्भ कर भारतीय गुरुवार[1] के पूर्व तक का समय बतलाया है। इससे और उपर्युक्त द्वितीय आर्या से ज्ञात होता है कि आर्यभट कलियुग का आरम्भ शुक्रवार को और उसके पहिले दिन गुरुवार मानते है परन्तु उपर्युक्त द्वितीय आर्या मे उन्होने महायुगारम्भ[2] बुधवार

१. भारतीय का अर्थ है महाभारतीय युद्ध। यहाँ इस शब्द का प्रयोग कलियुगारम्भ अर्थ मे किया गया है।

२. स्पष्ट महायुगारम्भ शब्द नहीं लिखा है, पर पूर्वापर सन्दर्भ और उपपत्ति द्वारा यही सिद्ध होता है।

के सूर्योदय मे बतलाया है। महायुगारम्भ बुधवार को मानने से कलियुगारम्भ शुक्रवार को नही आता, परन्तु सब युगपाद समान मानने से इसकी ठीक सगति लगती है। इससे सिद्ध होता है कि आर्यभट 'कलियुग का दूना द्वापर' इत्यादि परिभाषा नही मानते थे, अपितु उनके मत मे सब युगपात समान थे। इस प्रकार उनके मतानुसार कल्पारम्भ से वर्तमान कलियुगारम्भ पर्यन्त १९८६१२०००० गतवर्ष होते है और कल्पारम्भ मे गुरुवार आता है। अन्य सब सिद्धान्त द्वारा कल्पारम्भ से वर्तमान कलियुगारम्भ पर्यन्त १९७२९४४००० गतवर्ष[1] आते है। कुछ लोगो का कथन है कि कुछ वर्ष कल्प का आरम्भ या सृष्टि की उत्पत्ति होने मे लगे, उनके मतानुसार ग्रहप्रचार के आरम्भ मे रविवार आता है। आर्यभट का यह जो अन्य सिद्धान्तो से मतभेद है उसके विषय मे ब्रह्मगुप्त ने उनमे दोष दिखलाये है।[2]

न समा युगमनुकल्पा कल्पादिगत कृतादि यातञ्च।
स्मृत्युक्तैरार्यभटो नातो जानाति मध्यगतिम् ॥१०॥

ब्रह्मगुप्त-सिद्धान्त, अ० ११।

इसमे ब्रह्मगुप्त ने यह भी कहा है कि आर्यभट के युग, मनु और कल्प स्मृतियो के अनुसार नही है। उनके और अन्य आचार्यो के महायुग समान ह। उपर्युक्त सब ग्रहो की भगणसख्याए चार से कट जाती है, द्वितीय आर्या मे महायुगारम्भ मे सब ग्रह एकत्र बतलाये है, उनके मत मे चारो युगपाद समान है और कल्पादि से आरम्भकर इस कृतादि पर्यन्त महायुगो की पूर्ण सख्याए व्यतीत हुई है। अत आर्यभट के मतानुसार कल्पारम्भ, प्रत्येक महायुगारम्भ और प्रत्येक युगपाद के आरम्भ मे सब ग्रह एकत्र सिद्ध होते है। चूकि इनके मत मे कल्पारम्भ मे सब ग्रह एकत्र आते है, इसलिए इन्हे 'सृष्टि की उत्पत्ति होने मे कुछ वर्ष लगे', यह कल्पना नही करनी पडी। सब ग्रहो के उच्च और पातो के भगण इन्होने नही लिखे, पर यदि लिखते तो कल्पारम्भ को ही ग्रहप्रचार का आरम्भ मानकर लिखते।

समय

इन्होने अपने समय के विषय मे लिखा है—

षष्ट्यब्दाना षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादा.।
त्र्यधिका विशतिरब्दास्तदेह मम जन्मनोऽतीता.॥—कालक्रियापाद।

---

१. सृष्ट्युत्पत्ति सम्बन्धी वर्ष भी इसमे सम्मिलित है।

२. उपर्युक्त प्रायः सभी बातें ब्रह्मगुप्त ने बतलायी है, पर मैंने केवल उन्हीं पर भरोसा न रखकर स्वयं गणित करके उन्हें जाँच लिया है।

इससे सिद्ध होता है कि तीन युगपाद और ३६०० वर्ष बीतने पर अर्थात् कलियुग के ३०० वर्ष बीतने पर अर्थात् शक ४२१ मे आर्यभट के वय के २३ वर्ष बीत चुके थे अर्थात् इनका जन्म शक ३९८ मे हुआ। निम्नलिखित वर्षमान द्वारा भी जन्मशक यही निश्चित होता है कि उससे उनके समय के विषय मे किसी प्रकार का सन्देह नही रह जाता।

वर्तमान

पञ्चसिद्धान्तिकोक्त सूर्यसिद्धान्त मे वर्षमान ३६५।१५।३१।३० है और आर्य-सिद्धान्त मे ३६५।१५।३१।१५ अर्थात् उसमे १५ विपल कम है। यह कमी ३६०० वर्षों मे १५ घटी तुल्य हो जाती है, परन्तु मूल (पञ्चसिद्धान्तिकोक्त) सूर्यसिद्धान्त मे कलियुगारम्भ गुरुवार की मध्यरात्रि को माना है और आर्यभट ने उससे १५ घटी बाद अर्थात् शुक्रवार के सूर्योदय मे माना है। अत कलियुग के ३६०० वर्ष बीतने पर अर्थात् शक ४२१ मे दोनो के अनुसार मध्यम मेषसक्रान्ति अर्थात् वर्षारम्भ एक ही समय होता है। इससे प्रकट होता है कि सूर्योदय मे युगारम्भ मानने के कारण जो १५ घटी का अन्तर पडा था उसी को दूर करने के लिए आर्यभट ने वर्षमान १५ विपल कम माना है।

स्थान

गणितपाद की प्रथम आर्या मे इन्होने लिखा है —

'आर्यभटस्त्विह निगदति कुसुमपुरेऽभ्यर्चित ज्ञानम्।'

इससे इनका वसतिस्थान कुसुमपुर सिद्ध होता है। आजकल का बिहार का पटना कुसुमपुर माना जाता है।

विषय

इस आर्यसिद्धान्त मे दशगीतिक, गणित, कालक्रिया और गोल नामक चार पाद है। दशगीतिक पाद मे ग्रहभगणादि मान है। गणितपाद मे अकगणित (पाटीगणित), बीजगणित भूमिति और त्रिकोणमिति सम्बन्धी कुछ विषय है। शेष दो पाद केवल ज्योतिष विषयक है। आजकल ज्योतिषशास्त्र प्रयुक्त-गणित (Applied mathematics) का विषय समझा जाता है। अत ज्योतिषशास्त्र विषयक ग्रन्थ मे शुद्धगणित (Pure mathematics) की सख्या गणित इत्यादि शाखाओ का समावेश असगत सा मालूम होता है, परन्तु ज्योतिषशास्त्र मे शुद्ध गणित की भी बार-बार आवश्यकता पडती है, अत इतने प्राचीन ग्रन्थ मे इन दोनो का सम्मिश्रण अस्वाभाविक नही कहा जा सकता और यह सम्मिश्रण कुछ ही ग्रन्थो मे पाया भी जाता है। मूल

सूर्यादि सिद्धान्तो मे था या नही, इसे निश्चित करने का सम्प्रति कोई साधन नही है, परन्तु पञ्चसिद्धान्तिका मे नही है। वर्तमान सूर्य, सोमादि सिद्धान्तो मे भी नही है। इस आर्यसिद्धान्त, ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त और द्वितीय आर्यसिद्धान्त मे शुद्धगणित भी है। भास्कराचार्य ने सिद्धान्त मे व्यक्त (अङ्क) और अव्यक्त (बीज) गणितो का भी समावेश किया है और तदनुसार अपने 'लीलावती' और बीजगणित ग्रन्थो को उन्होने सिद्धान्तशिरोमणि का ही भाग कहा है तथापि वे दोनो स्वतन्त्र ग्रन्थ सदृश ही हैं। उनके कुछ लेखो से भी ज्ञात होता है कि उनके पहिले ही केवल बीजगणित के स्वतन्त्र ग्रन्थ बन चुके थे। दोनो आर्यभट और ब्रह्मगुप्त ने यद्यपि बीजादिगणितो का सग्रह सिद्धान्त मे ही किया है, तथापि उन विषयो के अध्याय पृथक् हैं।

अब आर्यसिद्धान्त के गणितपाद के विषय थोडे मे बतलाता हूँ। गणितपाद की प्रथम आर्या मे मगलाचरण है। इसके अतिरिक्त इसमे ३२ आर्याए और हैं। उनमे दशगुणोत्तर सख्याओ के नाम, वर्ग, घन वर्गमूल, घनमूल, त्रिभुज, वृत्त और अन्य क्षेत्र इनके क्षेत्रफल, घन, गोल, इनके घनफल, भुजज्यासाधन और भुजज्या सम्बन्धी कुछ विचार, श्रेढ़ी, त्रैराशिक, भिन्नकर्म (अपूर्णाङ्क) त्रैराशिक अथवा बीजगणित सम्बन्धी दो-एक चमत्कारिक उदाहरण और 'कुट्टक' इतने विषय हैं। टालमी और उनसे प्राचीन ग्रीक ज्योतिषियो को भुजज्या (Sines) का ज्ञान नही था। वे ज्या (Chords) का उपयोग करते थे। भारतीय ज्योतिष से परिचित होने के पूर्व यूरोपियन लोगो की यह धारणा थी कि ज्या को छोडकर भुजज्या (ज्यार्ध) का उपयोग सर्वप्रथम ईसवी सन् की नवी शताब्दी के उत्तरार्ध मे प्रादुर्भूत अरब-ज्योतिषी अलबटानी ने किया परन्तु आर्मभट के इस ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि शक ४२१ मे हमे अर्ध ज्याओ का ज्ञान था। वर्तमान सूर्यसिद्धान्त मे भी अर्धज्याए हैं।[1] और भी एक उल्लेखनीय बात यह है कि आर्यभट ने वृत्त के व्यास और परिधि का अत्यन्त सूक्ष्म गुणोत्तर बतलाया है। वह यह है—

चतुरधिक शतमष्टगुण द्वाषष्टिस्तथा सहस्राणाम ।।
अयुतद्वयविष्कम्भस्यासन्नो वृत्तपरिणाह ।।१०।।

गणितपाद।

इसमें २०००० व्यास के वृत्त की परिधि ६२८३२ बतलायी है अर्थात् व्यास से परिधि ३·१४१६ गुणित है और इसको भी इन्होने आसन्न (पास-पास) कहा है।

---

१. बर्जेसकृत सूर्यसिद्धान्त के अनुवाद का पृ० ५६ देखिए।

पृथ्वी की दैनन्दिन गति

हमारे देश मे "पृथ्वी प्रतिदिन अपनी चारो ओर घूमती है अर्थात् उसमे दैनन्दिन गति है" इस सिद्धान्त को माननेवाले ज्योतिषी एक ये आर्यभट मात्र है। इन्होने लिखा है—

अनुलोमगतिनौस्थ पश्यत्यचल विलोमग यद्वत्।
अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लकायाम्॥

गोलपाद।

भटप्रकाशिकाटीकाकार ने 'भानि कर्तुभूतानि अचलानि भूमिगतानि वस्तूनि कर्मभूतानि विलोमगानीव प्राची दिश गच्छन्तीव पश्यन्ति' कहते हुए आर्यभट के मत मे पृथ्वी का अचलत्व ही सिद्ध करने का प्रयत्न किया है, परन्तु आर्यभट ने भगणादि मानो मे नक्षत्रभ्रम न लिखकर भूभ्रम लिखे है और दशगीतिक की चतुर्थ आर्या मे लिखा है 'प्राणेनैति कला भू'। इसका अर्थ यह है कि पृथ्वी प्राण नामक काल परिमाण (पल का षष्ठाश) मे एक कला चलती है। इससे उनके मतानुसार पृथ्वी चल ही सिद्ध होती है। ब्रह्मगुप्तादिको ने भी उनके इस मत का खण्डन किया है। ब्रह्मगुप्त लिखते हैं—

प्राणेनैति कला भूर्यदि तर्हि कुतो व्रजेत् कमध्वानम्।
आवर्तनमुर्व्याश्चेन्न पतन्ति समुच्छ्र्या कस्मात्॥

ब्रह्मसिद्धान्त, अध्याय ११।

भटप्रकाशिकाटीकाकार ने 'प्राणेनैति कला भू' के 'भू' के स्थान मे 'भ' (भमण्डल) पाठ मानकर टीका की है। 'अनुलोमगतिनौस्थ . ' के बाद की आर्यभट की आर्या इस प्रकार है—

उदयास्तमयनिमित्त नित्य प्रवहेण वायुना क्षिप्त।
लङ्कासमपश्चिमगो भपञ्जर सग्रहो भ्रमति॥१०॥

गोलपाद।

तथापि सब वचनो की सगति लगाते हुए विचार करने से यही निष्पन्न होता है कि आर्यभट पृथ्वी को चल मानते थे। वे पृथ्वी की केवल दैनन्दिन गति मानते थे। पृथ्वी सूर्य के चारो ओर घूमती है' यह उनका सिद्धान्त नही मालूम होता।[1]

इस आर्यभट सिद्धान्त मे अन्य ग्रन्थो की भॉति अधिकार नही है, परन्तु उन अधि-

---

१. Grant's History of Physical Astronomy (पृष्ठ २) में लिखा है—

कारो के बहुत से विषय है । चन्द्रशृगोन्नति और भग्रहयुति अधिकारो के विषय इसमे नही है। ब्रह्मगुप्त ने कहा भी है कि आर्यभटीय द्वारा चन्द्रशृङ्गोन्नति और छायादि का ज्ञान नही हो सकता। एक और भी बडी भारी न्यूनता यह है कि योगताराओ के भोग और शर जो कि अन्य सिद्धान्तो मे है, इसमे नही है। यदि वे होते तो आर्यभट का निश्चित समय ज्ञात होने के कारण ज्योतिषशास्त्र के इतिहास मे उनका बडा उपयोग हुआ होता, परन्तु इससे यह नही कहा जा सकता कि आर्यभट के समय अथवा उनके पहिले यह विषय बिलकुल अज्ञात था। पञ्चसिद्धान्तिका मे नक्षत्रयोगताराओ के शरभोग का थोडा वर्णन है। अयनगति के सम्बन्ध मे जो कि अत्यन्त महत्व का विषय है, इसमे कुछ नही लिखा है।

यह आर्यसिद्धान्त अति सक्षिप्त होते हुए भी अत्यन्त दुर्बोध नही है। इसमे प्रतिपादित विषय स्पष्ट समझ मे आने योग्य है। सम्पूर्ण ग्रन्थ देखने से ज्ञात होता है कि ग्रन्थकार ने उसे ज्योतिष के नित्य व्यवहार मे उपयोगी बनाने की दृष्टि से नही बल्कि केवल सिद्धान्तभूत महत्व के विषयो का सग्रह करने के उद्देश्य से लिखा है। यद्यपि यह सत्य है कि नित्य व्यवहार मे सिद्धान्त ग्रन्थो का नही, प्रत्युत करणग्रन्थो का उपयोग होता है, परन्तु यह अन्य सिद्धान्तो की भाँति विस्तृत और सर्व विषयसम्पन्न भी नही है। वर्तमान सूर्यसिद्धान्त ब्रह्मगुप्तसिद्धान्त या सिद्धान्तशिरोमणि द्वारा गणित करने मे करणग्रन्थो की अपेक्षा अधिक समय लगेगा, यह यद्यपि सत्य है, तथापि इनमे से किसी भी एक ग्रन्थ द्वारा काम चल सकता है। दूसरे के अभाव मे किसी प्रकार की अडचन नही होगी, परन्तु आर्यसिद्धान्त की ऐसी स्थिति नही है। उदाहरणार्थ—तिथि, नक्षत्र और करण लाने की रीति इसमे नही है। महापात का गणित बिलकुल नही है, परन्तु इससे यह नही कहा जा सकता कि आर्यभट को महापात ज्ञात ही नही था। आर्यसिद्धान्त मे उसका उल्लेख है और यह निश्चित है कि आर्यभट तिथि, नक्षत्र, महापात, इत्यादि सब कुछ जानते थे। इसी प्रकार कुछ अन्य भी ऐसे विषय है, जो कि अन्य सिद्धान्तो मे है और इसमे नही है।

"कहा जाता है कि साराक्यूज के निसिटस (Nicetas of Syracuse) का मत था कि पृथ्वी केवल अपने अक्ष पर घूमती है और ग्रीक देश के तत्वज्ञानी पिथ्यागोरस (Pythagoras) का मत था कि सूर्य विश्व का मध्य है और पृथिवी उसके चार ओर घूमती है परन्तु उन्होंने अपने ये मत वेधादि द्वारा निश्चित किये थे और तदनुसार ग्रहस्थिति का गणित करने की कुछ रीतियाँ बनायी थीं, ऐसा नहीं मालूम होता। कदाचित् ये केवल उनकी कल्पनाएँ रही होंगी।"

आर्यभटकरण

इससे अनुमान होता है कि आर्यभट का कोई करणग्रन्थ होना चाहिए। उपरोक्त दशगीतिकपाद की द्वितीय आर्या मे उन्होने दिनप्रवृत्ति सूर्योदय मे बतलाई है, परन्तु वराहमिहिर का कथन है कि आर्यभट ने लकार्धरात्रि मे भी दिनप्रवृत्ति बनलायी है। आर्यभटीय मे इस दिनप्रवृत्ति का उल्लेख कही नही है। ब्रह्मगुप्त ने भी आर्यभट के दोष-वर्णन के प्रसङ्ग मे इसकी चर्चा नही की है। इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्मगुप्त के समय भी आर्यभटीय मे कोई ऐसी आर्या नही थी जिसमे उक्त अर्थ निकलता हो। ब्रह्मगुप्त ने आर्यभटीय के दोनो भागो का उल्लेख भी 'दशगीतिक' और 'आर्याष्टा-शत' शब्दो द्वारा ही किया है, जिनमे उनकी श्लोकसख्याये स्पष्ट है। इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्मगुप्त के पहिले से जो आर्यसिद्धान्त प्रचलित है उहे किसी ने न्यूनाधिक नही किया है, अत वराहमिहिर के लेखानुसार आर्यभट का अन्य कोई ग्रन्थ होना चाहिए, जिसमे लङ्का की अर्धरात्रि मे दिनप्रवृत्ति बतलायी हो। ब्रह्मगुप्त के खण्डखाद्य और उसकी अरुणकृत टीका से भी यह अनुमान होता है कि आर्यभट का कोई करणग्रन्थ होना चाहिए, परन्तु आज वह उपलब्ध नही है।

दोष

ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट मे बहुत-से दोष दिखलाये हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार के दोषों का वर्णन करते हुए वे अन्त मे लिखते है—

> स्वयमेव नाम यत्कृतमार्यभटेन स्फुट स्वगणितस्य।
> सिद्ध तदस्फुटत्व ग्रहणादीना विसवदति ॥४२॥
> जानात्येक मपि यतो नार्यभटो गणितकालगोलानाम्।
> न मया प्रोक्तानि तत. पृथक् पृथग्दूषणान्येषाम् ॥४३॥
> आर्यभटदूषणाना सख्या वक्तु न शक्यते .॥

ब्रह्मगुप्तसिद्धान्त, अध्याय ११

इससे ज्ञात होता है कि ब्रह्मगुप्त के समय आर्यभट के ग्रन्थ द्वारा ग्रहणादिको का विसवाद होता था अर्थात् उनका ठीक समय नही आता था। यह एक विचारणीय विषय है। यद्यपि ब्रह्मगुप्तकथित कुछ दोष सत्य है, तथापि उनके लेखो मे दुराग्रह का अश अधिक है।

ग्रन्थलोप

वे लिखते है—

"कालान्तरेण दोषा यैऽन्यै. प्रोक्ता न ते मयाभिहिता.।"

परन्तु ब्रह्मगुप्त के पहले के इस समय जो ग्रन्थ उपलब्ध है उनमे से एक मे भी आर्यभट के दोषो का वर्णन नही मिलता। पञ्चसिद्धान्तिका मे केवल उनका नाम है। इससे ज्ञात होता है कि उनके पहिले के कुछ ग्रन्थ लुप्त हो गये होगे। उपरोक्त शक ४२० के पूर्व के ग्रन्थकारो के ग्रन्थ भी इस समय उपलब्ध नही है।

योग्यता

ज्योतिषसिद्धान्तकारो की योग्यता जानने का एक मुख्य साधन उनके ग्रन्थो द्वारा होनेवाली दृक्प्रतीति है। ब्रह्मगुप्त ने लिखा है कि श्रीषेण और विष्णुचन्द्र ने मन्दोच्च, पात, परिधि और स्पष्टीकरण आर्यभटीय से लिये। लाटादिको के ग्रन्थ और मूल सूर्यादि पाच सिद्धान्तो के रहते हुए आर्यभटीय का सर्वत्र प्राधान्य स्थापित हो जाना तथा श्रीषेण और विष्णुचन्द्र का स्पष्टीकरण उसी से लेना स्पष्ट बतला रहा है कि उस समय औरो की अपेक्षा उससे अधिक दृक्प्रतीति होती थी। आर्यभट ने पूर्वाचार्यो से भिन्न बुध और गुरु के भगणो की स्वयं कल्पना की, उनका मन्दशीघ्र वृत्तो का परिध्यंश जो कि ग्रहस्पष्टीकरण का एक मुख्य अङ्ग है—पञ्चसिद्धान्तिका मे भिन्न है (आगे स्पष्टाधिकार देखिये)।

छिद्रान्वेषण-पटु ब्रह्मगुप्त उनके दोषो को अगणित बतलाते हुए भी खण्डखाद्य की प्रथम आर्या मे लिखते है—

"वक्ष्यामि खण्डखाद्यकमाचार्या-
र्यभटतुल्यफलम्।"

स्वकीय सिद्धान्त का अत्यन्ताभिमान छोडकर अपने बहुत बडे प्रतिस्पर्धी आर्यभट के प्रति उनका यह कथन कि मै आचार्य आर्यभट के ग्रन्थ तुल्य[1] ग्रन्थ बना रहा हूँ—स्पष्ट कर देता है कि आर्यभट की योग्यता बहुत बडी थी। निम्नलिखित श्लोक से इसकी और भी पुष्टि होती है—

सिद्धान्तपञ्चकविधावपिदृग्विरुद्धमौढ्योपरागमुखखेचरचारक्लृप्तौ।
सूर्यः स्वय कुसुमपुर्यभवत् कलौ तु भूगोलवित् कुलप आर्यभटाभिधान ॥

यह श्लोक किसका है, कब का है, इत्यादि बाते ज्ञात नही होती है। डा० केर्न ने इसे प्रस्तावना मे लिखा है। इसमे पद्यकार का कथन है कि पञ्चसिद्धान्त-पद्धति के रहते हुए भी ग्रहों के अस्त और ग्रहणादि विषयो मे दृग्विरोध होते देख कर ग्रहो

1. यह तुल्यता सर्वाङ्गीण नहीं है। कितनी है—यह आगे ब्रह्मगुप्त के वर्णन में बतलाया जायगा।

के चार (गति) की कल्पना करने के लिए, सूर्य कुसुमपुर में आर्यभट नाम से स्वयं अवतीर्ण हुए। "सिद्धान्तपञ्चक के अनुसार दृक्प्रतीति नही होती" कथन से ज्ञात होता है कि आर्यभट के थोड़े ही दिनो बाद किसी ने यह श्लोक लिखा है। इससे सिद्ध होता है कि उस समय आर्यभट की योग्यता अत्यधिक समझी जाती थी और वस्तुत. कालमान की दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि नि सन्देह वह वैसी ही थी भी। आर्यभट स्वय लिखते है—

क्षितिरवियोगाद्दिनकृद्रवीन्दुयोगात् प्रसाधितश्चन्द्र ।
शशिताराग्रहयोगात्तथैव ताराग्रहा सर्वे ।।४८।।
सदसज्ज्ञानसमुद्रात् समुद्धृत देवताप्रसादेन।
सज्ज्ञानोत्तमरत्न मया निमग्न स्वमतिना वा ।।४९।।

अर्थ—पृथ्वी और सूर्य के योग द्वारा सूर्य का, सूर्य और चन्द्रमा के योग द्वारा[1] चन्द्रमा का तथा चन्द्रमा, तारो और ग्रहो के योग द्वारा सब ग्रहो का साधन किया है। देवता की कृपा से अथवा स्वबुद्धि द्वारा मैने शुभाशुभ-ज्ञान के समुद्र से डूबा हुआ सत्यज्ञानरूपी रत्न निकाला। (ग्रहण, युति इत्यादिको द्वारा मध्यमगति भी लायी जा सकती है, परन्तु मुख्यत स्पष्टग्रहस्थिति का ज्ञान होता है।) इन सब हेतुओ से ज्ञात होता है कि उन्होने ग्रहस्पष्टीकरण पद्धति मे सुधार किया और प्राचीन ग्रन्थो के सारासार-विचारद्वारा तथा अपनी बुद्धि और वेध द्वारा बहुत सी नयी बातो की खोज की। इससे उनकी योग्यता का महत्व स्पष्ट हो जाता है।

प्रचार और अनुयायी

बृहत्सहिता की टीका मे उत्पल ने आर्यभटीय की बहुत सी आर्याएँ उद्धृत की हैं और उसके बाद के बहुत-से ग्रन्थो मे उसके वचन मिलते है। प्रसिद्ध ज्योतिषी लल्ल आर्यभट के अनुयायी थे। उन्होने आर्यभटोक्त ग्रहगति मे बीजसस्कार दिया। आर्यभटोक्त भगणो द्वारा लायी हुई ग्रहगतिस्थिति मे लल्लोक्त बीजसस्कार देकर शके १०१४ मे करणप्रकाश नामक आर्यपक्षीय करणग्रन्थ बना। (आगे इसका विस्तृत विवरण लिखेगे)। शके १३३९ का दामोदरकृत भटतुल्य नामक करणग्रन्थ भी ऐसा ही है। करणप्रकाश द्वारा अभी भी कुछ लोग गणित करते है और उसके अभिमानी तो बहुत है। ग्रहलाघव में—जो कि इस समय भी भारतवर्ष के तृतीयाश से अधिक

---

१. यहाँ प्रथम वाक्य चन्द्रग्रहण के उद्देश्य से कहा गया है और द्वितीय सूर्यग्रहण विषयक है।

भाग मे प्रचलित है—गुरु मगल और राहु करण प्रकाश द्वारा लिये गये हैं। इस प्रकार आर्यसिद्धान्त मूलरूप में नहीं पर बीजसम्स्कृत रूप मे आज भी प्रचलित है।

स्थान

शके १४०० के बाद महाराष्ट्र और काशी मे बने हुए ज्योतिषग्रन्थों मे इस आर्य-सिद्धान्त के वचन नहीं मिलते। सम्प्रति इस प्रान्त (महाराष्ट्र) मे आर्यसिद्धान्त प्राय: मूल-स्वरूप में प्रचलित नहीं है। डा० केर्न ने जिन प्रतियो के आधार पर इसे छपाया है वे तीनों मलयालम लिपि मे थी। इससे ज्ञात होता है कि सुदूर दक्षिण भारत में और विशेषत मलाबार प्रान्त मे अभी भी इसका प्रचार है। उधर जिन प्रान्तो मे तामिल और मल्याली लिपियो का व्यवहार होता है, उनमे सौरमान का पञ्चाङ्ग चलता है और वह आर्यपक्षीय है अर्थात् उसका वर्षमान आर्यसिद्धान्तानुसार है। वैष्णव लोग आर्यपक्ष के अभिमानी है। वे विशेषत कर्नाटक और मैसूर प्रान्तो मे रहते है। इससे अनुमान होता है कि आर्यभट का कुसुमपुर कदाचित् दक्षिण मे होगा। आजकल बिहार का पटना कुसुमपुर माना जाता है, परन्तु मुझे इसमे सन्देह है, क्योकि उस प्रान्त मे आर्यसिद्धान्त का प्रचार बिल्कुल नहीं है तथापि इस विषय मे निश्चयपूर्वक कुछ नही कहा जा सकता।

ग्रहशुद्धि

आर्यसिद्धान्त द्वारा लाये हुए ग्रह किन वर्षों मे यूरोपियन कोष्ठको द्वारा लाये हुए ग्रहो के तुल्य होते है, यह ऊपर बतला चुके है तथापि उसका विशेष स्पष्टीकरण होने के लिए यहा आर्यभटीय-काल शके ४२१ (सन् ४९९ ई०) के मध्यम मेषसक्रान्ति-काल के पास के आर्यसिद्धान्त और यूरोपियन कोष्ठको द्वारा लाये हुए मध्यम ग्रह आगे एकत्र लिखे है। साथ ही साथ सबो की तुलना करने मे सुविधा होने के लिए मूल सूर्यसिद्धान्त, वर्तमान सूर्यसिद्धान्त और ब्रह्मगुप्तसिद्धान्त के भी उस समय के ग्रह लिखे है। मूल सूर्यसिद्धान्त, प्रथम आर्यसिद्धान्त और वर्तमान सूर्यादि पाच सिद्धान्तो के अनुसार शक-गतवर्ष ४२१ मे मध्यम मेष-सक्रान्ति अमान्त चैत्र कृष्ण ९ रविवार (२१ मार्च) को उज्जयिनी के मध्यमोदय से क्रमश. १५ घटी० पल, १५ घटी० पल और १६ घटी २४ पल पर आती है और ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त द्वारा चैत्र-कृष्ण ८ शनि-वार को मध्यमोदय से २२ घटी ३० पल पर आती है।

शक ४२१ चैत्र कृष्ण ९ रविवार के सूर्योदय से १५ घटी के मध्यमभोग

ग्रहादि	मूल सूर्यसिद्धान्त	१२वें कोष्ठक से +	प्रथम आर्यसिद्धान्त	१२वें कोष्ठक से ±	वर्तमानसूर्या द५सि.	१२वे कोष्ठक से ±
	१	२	३	४	५	६
	रा. अ. क. वि.	अ क. वि.	रा. अ क वि.	अ क. वि.	रा अ. क. वि	अ. क. वि.
सूर्य	० ० ० ०	० ० ०	० ० ० ०	० ० ०	११ २९ ५८ ३७	− ० १ २३
चन्द्रमा	९ १० ४८ ०	− ० ४ ४८	९ १० ४८ ०	− ० ४ ४८	९ १० २९ ३३	− ० २३ १५
चंद्रोच्च	१ ५ ४२ ०	− ० २८ ३०	१ ५ ४२ ०	− ० २८ ३०	१ ० ५३ ५१	− ४ १६ ३९
राहु			११ २२ १२ ०	− ० ४२ १८	११ १८ ३६ ४	− ४ १८ १४
मंगल	० ७ १२ ०	+ ० ७ ०	० ७ १२ ०	+ ० ७ ०	० ९ २३ १६	+ २ १८ १६
बुध	६ ० ० ०	− ३ २२ १२	६ ६ ० ०	− २ ३७ ४८	६ १७ ५४ १६	+ १४ ३२ ४
गुरु	६ ६ ० ०	− १ २९ ५४	६ ७ १२ ०	− ० १७ ५४	६ ५ ५९ ५३	− १ ३० १
शुक्र	११ २६ २४ ०	+ ० ६ २४	११ २६ २४ ०	+ ० ६ २४	११ २२ ४५ ४५	− ३ ३१ ५१
शनि	१ १९ १२ ०	+ ० ५१ ५४	१ १९ १२ ०	+ ० ५१ ५४	१ २० २३ ५७	+ ३ २ ५१

ग्रहादि	१२वे से ± सूर्यान्तर				ब्रह्मगुप्तसिद्धान्त				१२वें कोष्ठक से ±				१२वें कोष्ठक से + सूर्यान्तर				केरोपन्तीय सायन				केरोप० नियरन			
	७				८				९				१०				११				१२			
		अ.	क.	वि.	रा.	अ.	क	वि.		अ	क.	वि.		अ.	क	वि	रा	अ.	क	वि.	रा.	अ	क.	वि.
सूर्य		०	०	०	०	०	५१	४५	+	०	५१	४५		०	०	०	११	२९	४३	६	०	०	०	०
चन्द्रमा	−	०	२१	५२	९	११	३१	४६	+	०	३८	५८	−	०	१२	४७	९	१०	३५	५४	९	१०	५२	४८
चंद्रोच्च	−	४	१५	१६	१	७	२१	३	+	१	१०	३३	+	०	१८	४८	१	५	५३	३६	१	६	१०	३०
राहु	−	४	१६	५१	११	२३	२३	१४	+	०	२८	५६	−	०	२२	४९	११	२२	३७	२४	११	२२	५४	१८
मंगल	+	२	१९	३९	०	८	४	४५	+	०	५९	४५	+	०	८	०	०	६	४८	६	०	७	५	०
बुध	+	१४	३३	२७	६	०	४१	२	−	२	४१	१०	−	३	३२	५१	६	३	५	१८	६	३	२२	१२
गुरु	−	१	२८	३८	६	७	२८	९	−	०	१	४५	−	०	५३	३०	६	७	१३	०	६	७	२९	५४
शुक्र	−	३	३०	२८	११	२६	५७	१२	+	०	३९	३६	−	०	१२	९	११	२६	०	४२	११	२६	१७	३६
शनि	+	२	५	१४	१	१९	०	१	+	०	३९	५५	−	०	११	५०	१	१८	३	१२	१	१८	२०	६

सारणी के ११वे कोष्ठक मे केरोपन्तीय ग्रहसाधनकोष्ठक द्वारा लाये हुए ग्रह है। ये ही यूरोपियन ग्रन्थो द्वारा लाये हुये सूक्ष्म ग्रह है। ये सायन है। इनमे से केवल चन्द्र, चन्द्रोच्च और राहु मे कालान्तर सस्कार दिया गया है। शके ४२१ मे १६ कला ५४ विकला अयनाश मान कर इस कोष्ठक के ग्रहो मे उसका सस्कार करके १२वे कोष्ठक मे निरयन ग्रह लिखे है और मूल सूर्यसिद्धान्तादि द्वारा लाये हुए ग्रहो की इन्ही से तुलना की है। १६ कला ५४ विकला अयनगति होने मे लगभग २० वर्ष लगते है, अत. शके ४२१ मे १६।५४ अयनाश मानने से शके ४४१ मे अयनाश शून्य आता है। यह शके ४४४ के पास ही है। कहा जाता है कि शके ४९६ के लगभग रेवती-योगतारा सम्पात मे था, अत उसी वर्ष शून्य अयनाश मानना उचित है। यद्यपि यह कथन सत्य है तथापि मैने आगे अयनचलन-विचार मे बतलाया है कि भारतीयो ने शके ४४५ के आसपास शून्य अयनाश माना है और उनकी पद्धति के अनुसार वही ठीक है। उपर्युक्त तुलना मे १६ कला ५४ विकला अयनाश मानने का कारण केवल इतना ही है कि ऐसा करने से सूर्य का निरयन भोग शून्य आता है, जिससे सूर्यसम्बन्धी तुलना करने मे बड़ी सुविधा होती है और इसमे ४ कला से अधिक अशुद्धि भी नही होती। तुलना करते समय सर्वत्र विकलाएँ छोड देने से भी कोई हानि न होगी, क्योंकि इस तुलना मे उनका कोई महत्व नही है।

प्रथम कोष्ठक मे मूल सूर्यसिद्धान्त द्वारा लाये हुए ग्रह लिखे है। बारहवे कोष्ठक केरोपन्तीय ग्रहसाधन कोष्ठक द्वारा लाये हुए निरयन ग्रहो से वे जितने न्यून या अधिक है, वे अन्तर द्वितीय कोष्ठक मे है। तृतीय-चतुर्थ, पञ्चम-षष्ठ और अष्टम-नवम कोष्ठक भी इसी प्रकार लिखे गये है। द्वादश कोष्ठक का प्रत्येक ग्रह उस कोष्ठक के सूर्य से जितना आगे है वह उसका सूर्यसम्बन्धी अन्तर है। यही स्थिति पञ्चम कोष्ठक की भी है। दोनो कोष्ठको के सूर्यान्तरो के अन्तर सातवें कोष्ठक मे लिखे है। इसी प्रकार अष्टम और द्वादश कोष्ठको के सूर्यान्तरो के अन्तर दशम कोष्ठक मे लिखे है। उदाहरणार्थ—द्वादश कोष्ठक का शनि उसके सूर्य से १।१८।२०।६ आगे है और पञ्चम कोष्ठक का शनि उसके सूर्य से १।२०।२३।५७–११।२९।५८।३७=१।२०।२५।२० आगे है। इन दोनो शनि सम्बन्धी सूर्यान्तरो का अन्तर १।२०।२५।२०–१।१८।२०।६=०।२।५।१४ सातवे कोष्ठक मे शनि के सामने लिखा है। द्वादश कोष्ठक के सूर्यान्तर से पञ्चम कोष्ठक का सूर्यान्तर अधिक होने के कारण धन है। प्रथम, तृतीय और द्वादश कोष्ठको के सूर्य समान होने के कारण प्रथम और तृतीय कोष्ठक सम्बन्धी ग्रहान्तर ही सूर्यसम्बन्धी अन्तर भी कहे जा सकते है। इसलिए वहा दो और कोष्ठक नही बनाने पड़े।

नक्षत्रप्रदक्षिणा-काल

ग्रह	वर्तमान सूर्यसिद्धान्त				ब्रह्मगुप्तसिद्धान्त				टालमी				आधुनिक यूरोपियन			
	दिन	घ०	प०	वि०	दिन	घ०	प०	वि०	दिन	घ०	प०	वि०	दिन	घ०	प०	वि०
सूर्य	३६५	१५	३१	३१·४	३६५	१५	३०	२२.५	३६५	१५	२४	३१.५	३६५	१५	२२	५६.८७
चन्द्र	२७	१९	१८	१·६	२७	१९	१८	० २५	२७	१९	१८	० २	२७	१९	१७	५८ ८६६
चन्द्रोच्च	३२३२	५	३७	१३·६	३२३२	४४	२	४५	३२३२	२४	४०	३४	३२३२	३४	३३	१४ ०८८
राहु	६७९४	२३	५९	२३·५	६७९२	१५	१४	१४ ७	६७९९	५८	३६	३८ ५	६७९८	१६	४४	२४ ००
बुध	८७	५८	१०	५५·७	८७	५८	११	४३ ७	८७	५८	११	४७ २	८७	५८	९	२४.९९८
शुक्र	२२४	४१	५४	५०·६	२२४	४१	५२	३४.७	२२४	४२	९	५२	२२४	४२	२	४७.४८६
मगल	६८६	५९	५०	५·८७	६८६	५२	५२	३३.७	६८६	५८	४९	५० २	६८६	५८	४६	२.५१८
गुरु	४३३२	१९	१४	२०·९	४३३२	१४	२४	१९ २	४३३२	४५	२२	५६ २	४३३२	३५	५	१७ ४९
शनि	१०७६५	४६	२३	४·१	१०७६५	४८	५४	५१ २	१०७५८	४४	३०	३७.२	१०७५९	१३	१०	५७ ४९

आधुनिक यूरोपियन मानो को देखने से ज्ञात होता है कि हमारे सूर्यसिद्धान्त का वर्षमान लगभग ८ पल ३४·५ विपल अधिक है और ब्रह्मगुप्तसिद्धान्त का वर्षमान ७ पल २५.६ विपल अधिक है। चन्द्रमा की गति अधिक होने पर भी प्राय. अशुद्ध नही है। राहुभगणकाल मे ४ दिन का और शनिभगणकाल मे ६ दिन का अन्तर है। शेष अन्तर एक दिन से कम है।

टालमी

प्रो० ह्विटने का कथन है कि टालमी-कथित दिनगति और सम्पातगति (प्रतिवर्ष ३६ विकला) के अनुसार टालमी के मान लाये गये है। हमारे सिद्धान्तो के मानो से उनका साम्य बिलकुल नही है । **इससे सिद्ध होता है कि टालमी के ग्रन्थ की ग्रहगति-स्थिति हमारे सिद्धान्तों में नही ली गई है ।**

कलियुगारम्भ के मन्दोच्च और पात

	ग्रह	वर्तमानसूर्यादिश्सि.				ब्रह्मगुप्तसिद्धान्त				द्वितीय आर्यसिद्धान्त				पाराशरसिद्धान्त				केरोपन्तीय सायन			
		रा०	अ०	क०	वि०	रा०	अ०	क०	वि०	रा०	अ०	क०	वि०	रा०	अ०	क०	वि०	रा०	अ०	क०	वि०
मन्दोच्च	सूर्य	२	१७	७	४८	२	१७	४५	३६	२	१७	४५	३६	२	१७	४५	३६	०	१५	१२	६
	मगल	४	९	५७	३६	४	८	१८	१४	४	३	५०	२४	४	२	४३	३६	२	१	११	०
	बुध	७	१०	१९	१२	७	१४	४७	२	७	०	१४	२४	७	०	४०	१९	५	२७	४६	१८
	गुरु	५	२१	०	०	५	२२	१५	३६	५	२२	४८	०	५	२२	३५	२	३	२३	५४	४२
	शुक्र	२	१९	३९	०	२	२१	२	१०	२	२०	३८	२४	२	२०	४२	४३	८	२	२६	३०
	शनि	७	२६	३६	३६	८	२०	५३	३१	७	२३	९	३६	७	२८	१४	५३	५	२९	७	३६
पात	मंगल	१	१०	८	२४	०	२१	५९	४६	१	१०	१९	१२	१	९	३	३६	०	१०	४९	०
	बुध	०	२०	५२	४८	०	२१	२०	५३	०	२०	९	३६	०	२१	१	२६	११	१७	०	०
	गुरु	२	१९	४४	२४	२	२२	२	३८	२	२०	३८	२४	२	२१	४३	१२	१	१९	४८	६
	शुक्र	२	०	१	४८	२	०	५	२	२	०	२८	४८	२	०	५	२	१	२	३९	५४
	शनि	३	१०	३७	१२	३	१३	२३	३१	३	१०	४८	०	३	१०	२६	२५	२	९	०	०

शक ४२१ (गतकलि ३६००) के मन्दोच्च और पात

	ग्रह	केरोपन्तीय द्वारा	प्रथमआर्यसिद्धान्त		वर्तमान सूर्यसिद्धान्त		ब्रह्मगुप्तसिद्धान्त	
			स्थिति	केरो० से ±	स्थिति	केरो० से ±	स्थिति	केरो० से ±
	१	२	३	४	५	६	७	८
		रा. अ क	रा अ.	अ. क.	रा अ क	अ क	रा अ क	अ क
उच्च	सूर्य	२ १७ ७	२ १८	+ ० ५३	२ १७ १५	+ ० ८	२ १७ ५४	+ ० ४७
	मगल	४ ८ ११	३ २८	— १० ११	४ १० १	+ १ ५०	४ ८ २३	+ ० १२
	बुध	७ २४ १	७ ०	— २४ ०	७ १० २६	– १३ ६५	७ १४ ५३	— ६ ८
	गुरु	५ २० ३८	६ ०	+ ६ २२	५ २१ १६	+ ० ३८	५ २२ ३१	+ १ ५३
	शुक्र	६ २१ ३	३० ०	— २०१ ३	२ १९ ४६	— २११ १४	२ २१ १४	—२०६ ५६
	शनि	८ ५ १२	७ २६	— ६ १२	७ २६ ३७	— ८ ३५	८ २० ५४	+ १५ ४२
पात	मंगल	१ ८ ६	१ १०	+ १ ५१	१ १० ५	+ १ ५६	० २१ ५५	— १६ १४
	बुध	१ ० १८	० २०	— १० १८	० २० ४४	— ६ ३४	० २१ १२	— ६ ६
	गुरु	२ २५ ३०	२ २०	— ५ ३०	२ १६ ४१	= ५ ४६	२ २२ २	— ३ २८
	शुक्र	२ ३ ४०	२ ०	— ३ ४०	१ २६ ४६	— ३ ५४	१ २९ ४६	— ३ ५१
	शनि	३ १० १३	३ १०	— ० १३	३ १० २५	+ ० १२	३ १३ १३	+ ३ ०

उच्च और पात

कलियुगारम्भकालीन और शके ४२१ (गतिकलि ३६०० वर्ष) के भिन्न-भिन्न ग्रन्थो के सब ग्रहो के मन्दोच्च और पात पूर्व पृष्ठो मे लिखे है। प्रो० ह्विटने ने टालमी और सूर्यसिद्धान्त के उच्च और पातो की तुलना करते हुए लिखा है कि 'हिन्दुओ ने ये टालमी से अथवा उसके पहिले के ग्रीक ग्रन्थो से लिये होगे।' उनका कथन गलत है, यह दिखलाने के लिए मैंने निम्नलिखित कोष्ठक मे आधुनिक यूरोपियन मान (केरो-पन्तीय ग्रह-साधनकोष्ठक) द्वारा लाये हुए टालमीकालीन (शके ७०, सन् १४८ ई०) उच्च और पातो से टालमी के उच्च और पातो की तुलना की है।

टालमी कालीन (शक ७०) उच्च और पात

ग्रह	उच्च								पात							
	केरोपन्तीय सायन			टालमी के स्थिति			टालमी के केरो० से ±		केरोपन्तीय सायन			टालमी के स्थिति			टालमी के केरो० से ±	
	रा०	अ०	क०	रा०	अ०	क०	अ०	क०	रा०	अ०	क०	रा०	अ०	क०	अ०	क०
सूर्य	२	११	५	२	५	३०	− ५	३५								
मगल	४	१	३९	३	२५	३०	− ६	९	१	५	२९	०	२५	३०	− ९	५९
बुध	७	१८	३२	६	१०	०	− ३८	३२	०	२६	५	०	१०	०	− १६	५
गुरु	५	१५	७	५	११	०	− ४	७	२	२२	१	१	२१	०	− ३१	१
शुक्र	९	१६	१८	१	२५	०	−२३१	१८	२	०	३९	१	२५	०	− ५	३९
शनि	७	२८	४५	७	२३	०	− ५	४५	३	७	२८	६	३०	०	+ ८५	३२

हमारे सिद्धान्तो द्वारा लाये हुए उपरोक्त कलियुगारम्भकालीन और शके ४२१ के मन्दोच्च और पातो को देखने से ज्ञात होगा कि ३६०० वर्षो मे उनमे बहुत थोडा अन्तर पडा है। इसका कारण यह है कि उनकी गति बहुत कम है। हमारे सिद्धान्तों मे किसी भी ग्रह के मन्दोच्च या पात की गति १३ सहस्र वर्षों मे एक अश से अधिक नही है। इन दोनों कोष्ठको के केरोपन्तीय ग्रन्थ द्वारा लाये हुए अको को देखने से ज्ञात होगा कि सम्पात का आरम्भ स्थान मानने से अर्थात् सायन मान से गति कम नही आती पर नक्षत्र भगणमान से अर्थात् निरयन मान से बहुत कम आती है।

पहले के कोष्ठक मे मन्दोच्च और पातो की आधुनिक यूरोपियन मान द्वारा लायी हुई सूक्ष्म सायन और वास्तविक निरयन वार्षिक गतिया लिखी हैं। ये practical astronomy Loomis से ली गयी हैं। ये सम्पातगति ५० २ विकला मानकर लायी गयी है। हमारे ज्योतिष ग्रन्थो मे सम्पातगति ६० विकला मानी गयी है। उसके अनुसार वस्तुत जो वार्षिक निरयन गतिया आनी चाहिए वे उपर्युक्त कोष्ठक के चौथे खाने मे लिखी हैं। यूरोपियन गतियो से भारतीय ग्रन्थो की गतियो की तुलना करनी हो तो इन्ही मे करनी चाहिए। इस प्रकार तुलना करने पर भी सूर्यसिद्धान्त की गतियाँ बहुत अशुद्ध ज्ञात होती हैं और अन्य सिद्धान्तो की भी दशा प्राय. ऐसी ही है। हमारे ग्रन्थो मे किसी भी उच्च या पात की वार्षिक गति, विकला के एक तृतीयाश से अधिक नही है। इस विषय मे प्राचीनो को दोष देना तो बहुत सरल है, परन्तु मैं समझता हूँ कि वर्तमान सूक्ष्म यन्त्रो द्वारा भी आकाश मे एक विकला नापने मे कितनी कठिनाई होती है, यह जिसे ज्ञात है वह उन्हे दोष कभी भी नही देगा। कुछ नक्षत्रग्रह-युतियो के अवलोकन से मुझे ऐसा अनुभव हुआ है कि कभी-कभी दो ग्रहादिको मे दूरबीन से लगभग ५ कला (३०० विकला) अथवा इससे भी अधिक अन्तर दिखाई देता है, पर केवल नेत्रो से देखने पर वे दोनों सटे हुए से प्रतीत होते हैं अर्थात् उनमे अन्तर बिलकुल नही दिखाई देता, इसलिए हमे प्राचीन ग्रन्थो के किसी भी मान की यूरोपियन सूक्ष्म मान से तुलना करते समय केवल इतना ही देखना चाहिए कि वे कहा तक सूक्ष्म हैं और तदनुसार उच्च और पातो के सम्बन्ध मे प्राचीनो को दोष न देकर उलटी उनकी प्रशसा ही करनी चाहिए। यह बात हमारे ग्रन्थकारो के ध्यान मे आ चुकी थी कि उच्च और पातो की गतिया अत्यन्त सूक्ष्म है। उनके ग्रन्थो द्वारा लायी हुई शके ४२१ की उच्चपातस्थिति तथा केरोपन्तीय ग्रन्थ द्वारा लायी हुई स्थिति से उसके अन्तर ऊपर के पृष्ठ मे लिखे है। उनसे ज्ञात होता है कि उनके सिद्धान्तो द्वारा लायी हुई स्थिति वास्तविक स्थिति के बिलकुल पास है। सूर्य के उच्च मे तो बहुत ही कम अशुद्धि है। शुक्र का उच्च अधिक अशुद्ध है। पता नही लगता इसका कारण क्या है। यह एक विचारणीय विषय है।

आर्यभटीय के बुध का उच्च २४ अश न्यून है और शेष १० अश से कम ही न्यून या अधिक है। सूर्यसिद्धान्त के उच्च इससे शुद्ध हैं। उसमे बुध का १३ अश और शनि का ८ अश न्यून है। उसके मंगल और गुरु मे बहुत थोडी अशुद्धि है। ब्रह्मगुप्त-सिद्धान्त के उच्च सूर्यसिद्धान्त जितने ही अथवा उससे भी अधिक शुद्ध है। केरो-पन्तीय ग्रन्थ द्वारा लायी हुई स्थिति सायन है, परन्तु उसे निरयन मानकर तुलना करने में कोई हानि नहीं है क्योकि शके ४२१ मे अयनाश २० कला मात्र था।

मन्दोच्च और पातो की वार्षिक गतिया

	ग्रह	यूरोपियन सूक्ष्म मान द्वारा लायी हुई सायन	यूरोपियन सूक्ष्म मान द्वारा लायी हुई वास्तविक निरयन	यूरोपियन सूक्ष्म मान द्वारा लायी हुई हमारे निरयन मान से जो आनी चाहिए	सूर्य सिद्धान्तानुसार
	१	२	३	४	५
		विकला	विकला	विकला	विकला
उच्च	सूर्य	+६१ ५	+११.२४	+ १.५	+० ११६१
	मगल	+६५ ७	+१५.४६	+ ५.७	+ ०६१२
	बुध	+५६ १	+ ५.८१	− ३.९	+ .११०४
	गुरु	+५६.९	+ ९.६५	− ३.१	+ .२७
	शुक्र	+४७ ०	− ३.२४	−१३.०	+ ·१६०५
	शनि	+६९.६	+१९.३१	+ ९.६	+ .०११७
पात	मंगल	+२५ ०	−२५ २२	−३५.०	− ०६४२
	बुध	+४०.२	−१० ०७	−१९ ८	− .१४६४
	गुरु	+३४.३	−१५.९०	−२५.७	− .०५२२
	शुक्र	+२९.७	−२० ५०	−३० ३	− .२७०९
	शनि	+३०.७	−१९ ५४	−२९ ३	− .१९८६

पृष्ठ २८४मे टालमीकालीन टालमी और केरोपन्तीय उच्चों की तुलना की है। टालमी के अन्य मान सायन है, अतः उच्च भी सायन ही होगे। सूर्य के उच्च से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है, इस कारण केरोपन्तीय सायन मानो से ही उनकी तुलना की है। उससे ज्ञात होता है कि टालमी का भी शुक्रोच्च बहुत अशुद्ध है और उनके शेष उच्चों मे भी सूर्यसिद्धान्त और ब्रह्मसिद्धान्त से अधिक अशुद्धि है।

उपर्युक्त पृष्ठ के आर्यभटीय और सूर्यसिद्धान्त के पातो में अशुद्धि का औसत मान

४ अश और ब्रह्मगुप्तसिद्धान्त मे ७ अश है, परन्तु पृष्ठ २८४ के टालमी के पात औसतन ३० अश अशुद्ध हैं । उनके शनि और गुरु के पात अत्यन्त अशुद्ध हैं ।

टालमी का सूर्योच्च ६५ अश ३० कला है और टालमीकालीन अर्थात् सन् १५० के लगभग का वास्तविक सायन सूर्योच्च ७१ अश है। ६५ अश ३० कला अन्य किसी भी रीति से नही आता। हमारे किसी भी सिद्धान्त का सूर्योच्च १ अश से अधिक अशुद्ध नही है, पर यहा टालमी की आश्चर्यजनक ५।। अश अशुद्धि स्पष्ट है। इससे सिद्ध होता है कि —'हिन्दुओ ने उच्च और पात टालमी से अथवा उसके पूर्व के ग्रीक ग्रन्थो से लिये ' यह ह्विटने का कथन भ्रमपूर्ण है। उन्होने आधुनिक यूरोपियन ग्रन्थो द्वारा टालमीकालीन या शके ४२१ के अथवा किसी अन्य समय के उच्च और पात स्वयं लाकर तुलना नही की है। वे इस गणित को बडा क्लिष्ट[1] और श्रमसाध्य बतलाते हैं, परन्तु वस्तुत वह विशेष कठिन नही है। उनकी योग्यता का विचार करने से ज्ञात होता है कि उनके लिए यह गणित करना कठिन नही था। इससे यही निश्चित होता है कि उन्होने इसका विचार नही किया और पर्याप्त विवेचन से विहीन अनुमानो का अशुद्ध होना स्पष्ट ही है। टालमी और हमारे सिद्धान्तो के उच्च और पातो के अक ही, जिनमे कि ३ से ८२ अश पर्यन्त अन्तर है, स्पष्ट बतला रहे है कि दोनो मे कोई सम्बन्ध नही है। अधिक क्या, केवल सूर्य के उच्च से ही यह बात सिद्ध हो जाती है। शके ४२१ से आज तक के हमारे सब ग्रन्थकारो ने सूर्योच्च ७८ अश के आसपास माना है। इससे कितने दिनो पूर्व तक ७८ ही मानते थे, यह ज्ञात नही है। भिन्न-भिन्न सिद्धान्तो के अन्य उच्चो मे अधिक अशो का अन्तर है, परन्तु सूर्योच्च की स्थिति ऐसी नही है। हमारे ग्रन्थकार किसी अन्य ग्रन्थ से ग्रहादि लेते समय उनमे एक विकला का भी अन्तर नही पडने देते। इस ग्रन्थ मे ही आगे इसके अनेको उदाहरण मिलेगे, अत हिन्दुओ ने उच्च यदि टालमी से लिये होते तो निश्चित है कि वे सूर्योच्च के ६५ अश को ७८ कभी भी न कर देते। हमारे भिन्न-भिन्न सिद्धान्तो के उच्च-पातो मे भी बहुत अन्तर है। इससे सिद्ध होता है कि उन्होने आपस मे भी एक दूसरे के मान नही लिये है बल्कि स्वकीय अनुभव द्वारा सबने अपने-अपने स्वतन्त्र मान निकाले हैं।

ह्विटने का कथन है कि 'उच्च और पात सरीखे कठिन विषयो का ज्ञान सम्पादन करने की अथवा यदि ये दूसरो से लिये हो तो कालान्तर मान के अनुसार इनमे सुधार करने की योग्यता हिन्दुओं मे नही है।' यह कथन हिन्दुओ पर तो लागू नही होता, पर

---

१. Intricate and labouries a calculation **बर्जेस के सूर्यसिद्धान्त के अनुवाद का पृष्ठ २८३ देखिए।**

टालमी से इसकी ठीक सगति लगती है। टालमी-कथित ६५।३० सूर्योच्च टालमी के पूर्व हिपार्कस के समय (ई० पू० १५० मे) था, अत टालमी ने कदाचित् अपने काल के अनुसार उचित परिवर्तन किये बिना वही ले लिया होगा। गणित द्वारा टालमी के अन्य ग्रहो के उच्च और पातो की सगति भी हिपार्कस-काल से ठीक लगती है, अतः कह सकते है कि वे टालमी ने उचित संशोधन न करते हुए भी हिपार्कस से ही लिये है, परन्तु हिपार्कसकालीन अथवा उसके पूर्व की उच्चपातस्थिति जो कि उस समय मानी जाती थी सम्प्रति उपलब्ध नही है, इसलिए इस विषय मे निश्चयपूर्वक कुछ नही कहा जा सकता। टालमी की उच्चपातस्थिति अशुद्ध रहते हुए, हिन्दू-ग्रन्थो द्वारा लायी हुई स्थिति से उसका साम्य न होते हुए तथा टालमी से पहिले की उच्चपातस्थिति का ज्ञान न होते हुए भी (ह्विटने ने स्वय ऐसा लिखा है) ह्विटने का यह कथन कि 'हिन्दुओं ने उच्च और पात टालमी से अथवा उसके पहिले के ग्रीको से लिये' कहा तक योग्य है, इसका विचार वाचक स्वय करे।

टालमी के उच्च और पातो की—जो कि उन्होंने सम्भवत हिपार्कस से लिये है—हमारे ग्रन्थों द्वारा लाये हुए उच्च और पातो से तुलना करने से ज्ञात होता है कि उच्चो मे ३ से ३० अश तक और पातो मे ४ से ८२ अश तक अन्तर है। यदि हिन्दुओ ने हिपार्कस काल से शके ४२१ पर्यन्त ६५० वर्षो मे उच्च और पातो की इतनी गतिया लाकर उनसे सस्कृत उच्च और पात अपने ग्रन्थो मे लिखे होते तो दोनो के अको मे कुछ नियमित अन्तर दिखाई देते, परन्तु ऐसा नही है। साथ ही साथ ६५० वर्षो मे यदि उन्होने इतनी अधिक गति मानी होती तो वे अपने ग्रन्थों मे १३ सहस्र वर्षों मे एक अंश से भी कम उच्चपात-गति कभी भी न लिखते। इससे सिद्ध होता है कि हिन्दुओ ने टालमी के पहिले के ग्रन्थो से भी उच्च और पात नही लिये है। हमारे सिद्धान्तकारो ने अपने-अपने समय की उच्चपात स्थिति स्वयं निश्चित की है, इसके और भी प्रमाण है।

मूल सूर्यसिद्धान्त मे उच्च और पातो के कल्पीय भगण थे या नही, इसे जानने का कोई उपाय नही है, पर पञ्चसिद्धान्तिका मे वे नही है। आर्यभट ने भी केवल अपने समय की उच्चपात-स्थिति लिखी है, उनके भगण नही लिखे है। इससे ज्ञात होता है कि उन्होंने उच्चपात-भगण यह समझ कर नही लिखे होंगे कि यदि उनमे गति है तो बहुत थोडी है और वह अल्पकाल मे ध्यान मे आने योग्य नही है। इष्टकाल मे सूर्योच्च लाने की रीति बतलाते हुए भास्कराचार्य उसकी गति के विषय मे लिखते है—

"उच्चस्य चलन वर्षशतेनापि नोपलक्ष्यते किन्त्वाचार्यैश्चन्द्रमन्दोच्चवदनुमानात्

कल्पिता गतिः। सा चैवं——यैर्भगणै साम्प्रताहर्गणाद्वर्षगणाद्वा एतावदुच्च भवति ते भगणा युक्त्या कुट्टकेन वा कल्पिता ।"

इसका तात्पर्य यह है क उच्च-गति का अनुभव सैकडो वर्षो मे भी नही होता, पर चन्द्रोच्च-गति की प्रतीति होती देखकर आचार्यों ने अनुमान किया कि सूर्योच्च मे भी गति होगी और तदनुसार उन्होने कल्प के आरम्भ मे उसकी स्थिति मेषारम्भ मे मान कर युक्ति द्वारा उसके भगणो की इस प्रकार कल्पना की जिससे गणित द्वारा उसकी इष्टकालीन ठीक स्थिति लायी जा सके। इसके बाद उन्होने लिखा है कि अन्य ग्रहो के उच्चो और पातो के विषय मे भी ऐसा ही समझना चाहिए। इससे सिद्ध होता है कि हमारे सिद्धान्तकार उच्च और पातो की इष्टकालीन स्थिति लाना जानते थे और उन्होने उनके भगणो की स्वय कल्पना करके तदनुसार अपने-अपने समय के उच्च-पात अपने ग्रन्थो मे लिखे है, **टालमी या उसके पूर्व के ग्रीकों से नहीं लिये हैं।**

बेरुनी का कथन है कि आर्यभट दो थे। एक कुसुमपुर निवासी और दूसरे उनसे प्राचीन। उसने लिखा है कि प्राचीन आर्यभट का ग्रन्थ मुझे नही मिला, पर कुसुमपुर-निवासी आर्यभट उनके अनुयायी थे। बेरुनी के ग्रन्थ मे इन दोनो का उल्लेख ३० स्थानो मे है। उन सबमे वर्णित बाते इन प्रथम आर्यभट पूर्णतया लागू होती है। ग्रहभगणसख्या इत्यादि बेरुनी-लिखित जिन बातो मे दोनो का भेद स्पष्ट दिखाई देता है ये बाते द्वितीय आर्यभट पर किसी प्रकार भी लागू नही होती और चूकि वे प्रथम आर्यभट के अनुयायी नही थे, इसलिए बेरुनी-कथित दोनो आर्यभट वस्तुत. एक ही है। यह बात प्रोफेसर साचो के भी ध्यान मे नही आयी। इस ग्रन्थ मे वर्णित द्वितीय आर्यभट जिनका समय शके ८७५ के आसपास निश्चित किया गया है, बेरुनी के पहिले हुए होगे। यद्यपि यह स्पष्ट है कि उनका ग्रन्थ बेरुनी ने नही देखा था तथापि उसे उपर्युक्त भ्रम दो आर्यभटो की चर्चा सुनने के कारण ही हुआ होगा——ऐसा ज्ञात होता है। इससे अनुमान होता है कि द्वितीय आर्यभट बेरुनी के सौ पचास ही वर्ष पूर्व हुए होगे अर्थात् मैने उनका जो समय निश्चित किया है वह ठीक है।[1]

---

१. बेरुनी ने अबुलहसन के ग्रन्थ की भगणसंख्याएँ लिखी है (भाग २ पृष्ठ १९)। उनमें से बहुत सी प्रथम आर्यभट के ग्रन्थ से मिलती हैं, कुछ नहीं मिलतीं—वे लेखक के प्रमादादि के कारण अशुद्ध हो गयी होंगी। बेरुनी के पास आर्यभट के ग्रन्थ का कुछ भाग और उसका अरबी अनुवाद था (भाग १ पृष्ठ २४६ और आर्यभटीय चतुर्थपाद की ११वीं आर्या देखिए)। यह अनुवाद खलीफा मनसूर के शासनकाल में हुआ होगा।

वराहमिहिर

काल

ये एक प्रख्यात ज्योतिषी हो गये है। ज्योतिष की तीनो शाखाओ के इनके ग्रन्थ है। इन्होने स्वय स्पष्टतया अपने काल का उल्लेख कही नही किया है पर अपने करण ग्रन्थ 'पञ्चसिद्धान्तिका' मे गणितारम्भ वर्ष शके ४२७ माना है। यदि पञ्चसिद्धान्तिका ४२७ मे ही बनानी हो तो तो इनका जन्म शके ४०७ से पूर्व होना चाहिए, क्योंकि २० वर्ष के कम अवस्था मे ऐसा ग्रन्थ बनाना असम्भव है। इनके मृत्युकाल के विषय मे एक वाक्य प्रचलित है—

नवाधिकपञ्चशतसंख्यशाके वराहमिहिराचार्यो दिवं गतः।

पता नही चलता यह गद्य है या पद्य। यदि गद्य है तो—प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों के शुद्धत्वाशुद्धत्व का विचार करने से ज्ञात होता है कि प्रारम्भ से अब तक इसके स्वरूप मे किसी प्रकार का परिवर्तन नही हुआ होगा—इसमे सन्देह है और यदि पद्य है तो अत्यन्त अशुद्ध है। किसी-किसी का कथन है कि इसे ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त के टीकाकार पृथूदक स्वामी ने लिखा है। मैंने ब्रह्मगुप्तसिद्धान्त के आरम्भ के १० अध्यायो की पृथूदक-टीका पढी है। उसमे यह नही है। हो सकता है, उसके अवशिष्ट भाग मे अथवा खण्डखाद्य की पृथूदक टीका मे हो। पृथूदक स्वामी का समय शक ९०० के आसपास है, अत. पृथूदक का होने पर भी वराहमिहिर के ४०० वर्ष बाद का होने के कारण इसका विश्वास विचारपूर्वक ही करना होगा। प्रो० बेवर का कथन है कि (बेवर के ग्रन्थ की पृष्ठ २९३ की टिप्पणी देखिए) ब्रह्मगुप्त के टीकाकार आमराज ने वराहमिहिर की मृत्यु शक ५०९ मे बतायी है। उन्होंने आमराज का वचन नही लिखा है, पर वह प्राय: यही होगा अत' पहिले यही निश्चित नही होता कि यह वाक्य पृथूदक का है या आमराज का। बेवर ने आमराज का एक और कथन यह लिखा है कि शतानन्द का जन्मकाल शके ९१७ है। शतानन्द के 'भास्वती' नामक करण ग्रन्थ मे आरम्भवर्ष शके १०२१ है और अन्य कोई शतानन्द प्रसिद्ध नही है। इससे सिद्ध होता है कि शतानन्द के विषय मे आमराज का यह कथन बिलकुल गलत है। यदि उपर्युक्त वाक्य भी उन्हीं का है तो उसकी भो योग्यता इतनी ही समझनी चाहिए। दूसरी बात यह कि आमराज का भी समय (शके ९१७) वराहमिहिर के लगभग चार-पांच शताब्दी बाद मे है, अत. उनके कथन का भी कोई विशेष महत्व नही है। इसलिए इस नाना-सशय-ग्रस्त वचन के अधार पर वराह का मृत्युकाल शक ५०९ मानकर उनका समय निश्चित करने की अपेक्षा उनकी पञ्चसिद्धान्तिका द्वारा—जिसका कि गणितारम्भ

वर्ष शके ४२७ उसमे दी हुई ग्रहस्थित द्वारा निःसशय शुद्ध सिद्ध होता है—विचार करना उचित और विश्वसनीय होगा।

करण ग्रन्थ का गणितारम्भ-वर्ष ही उसका पूर्तिकाल नही होता। केरोपन्त के ग्रन्थ मे शके १७७२ के उदाहरण है, पर वह शके १७८२ मे छपा है, अत सम्भव है पञ्चसिद्धान्तिका भी ४२७ के बाद पूर्ण हुई हो, तथापि उसकी रचना का आरम्भ शके ४२७ के पास ही दो एक वर्ष के भीतर हुआ होगा, अन्यथा वह आरम्भ-वर्ष न माना जाता। ४२७ तक वराह का जन्म ही न हुआ हो—यह बिलकुल असम्भव है। इतना ही नही, मै तो समझता हूँ उस समय वे कम से कम १५,१६ वर्ष के अवश्य रहे होगे और उन्होने यह शक उदाहरण के लिए लिया होगा। इसके अतिरिक्त इसका अन्य कोई समुचित कारण नही दिखाई देता। शके ४२७ मे चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के लगभग मध्यम मेष-सक्रान्ति हुई थी। सम्भव है, उस समय की मध्यम ग्रहस्थिति लाने मे तथा शुक्ल प्रतिपदा से अहर्गण लाने मे सुविधा देखकर उन्होने यह शक लिया हो और ग्रन्थ वस्तुत बाद मे बना हो। परन्तु ४२७ के पहिले शके ४१६ मे और उसके बाद ४३८ मे भी मध्यम मेष सक्रान्ति शुक्ल प्रतिपदा के पास आती है। ४१६ का तो विचार ही नही करना है, पर उन्होने ४३८ भी नही लिया है। इससे सिद्ध होता है कि इस ग्रन्थ का रचनाकाल शके ४३८ के पूर्व ही है।

पञ्चसिद्धान्तिका मे आर्यभट का नाम आया है और उनका ग्रन्थ शके ४२१ का है, इससे यहा एक शका होती है कि छ ही वर्षो मे आर्यभट का ग्रन्थ इतना प्रसिद्ध कैसे हो गया कि वह वराहमिहिर तक पहुचा और उन्हे अपने ग्रन्थ मे उसकी चर्चा करनी पडी। परन्तु यह शका निरर्थक है। अवन्ती ऐसी प्रसिद्ध राजधानी मे इसी कार्य के लिए नियुक्त वराहमिहिर सरीखे प्रख्यात ज्योतिषी को आर्यभट का मत ज्ञात होना अथवा उनका ग्रन्थ देखने का अवसर प्राप्त होना असम्भव नही है, और दूसरी बात यह कि वराह का ग्रन्थ शके ४२७ के चार, छ वर्ष बाद समाप्त हुआ होगा, यह भी सम्भव है। शके ४२७ मे वे स्वय गणना करने के लिए सर्वथा योग्य थे, इसमे कोई सन्देह नही है। उस समय उनकी अवस्था यदि १५ वर्ष मानते है तो जन्म शक ४१२ आता है और मृत्यु-काल शके ५०६ मानने से उस समय उनकी अवस्था ६७ वर्ष आती है। यह बात असम्भव नही कही जा सकती। यह भी कह सकते है कि उनका जन्म शके ४२७ मे हुआ होगा और इसलिए उन्होंने इसे उदाहरणार्थ लिया होगा, पर इसके बाद नही हुआ था—यह बिल्कुल निःसन्देह है। इससे सिद्ध होता है कि उनका जन्म शके ४२७ के पहिले शके ४१२ के आसपास हुआ था।

ज्योतिर्विदाभरण मे एक श्लोक है—

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशङ्कुवेतालभट्टघटखर्परकालिदासा.।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपते सभाया रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ।।

इसमे विक्रमादित्य के नवरत्नो मे वराहमिहिर का नाम आया है इससे ज्ञात होता है कि विक्रम-शकारम्भ के आसपास एक वराहमिहिर थे। ज्योतिर्विदाभरण मे ग्रन्थकार ने अपने को रघुवश, कुमारसम्भव इत्यादि का कर्त्ता प्रसिद्ध कवि कालिदास लिखा है और—

वर्षै. सिन्धुरदर्शनाम्बरगुणै ३०६८ र्याते कलौ संमिते
मासे माधवसज्ञिते च विहितो ग्रन्थक्रियोपक्रम· ।।

श्लोक में ग्रन्थारम्भ-काल गतकलि ३०६८ वर्ष अर्थात् विक्रम संवत २४ बताया है परन्तु यह ग्रन्थ विश्वसनीय नही है, क्योंकि इसमे—

"शाक शराम्भोधियुगो ४४५ नितो हृतो मान खतर्कैरयनांशका· स्यु "
यह अयनाश लाने की रीति बतलायी है और प्रथमाध्याय मे लिखा है—'मत्वावराहमिहिरादिमतै·' इस ग्रन्थ के अनुसार विक्रम सवत्सर के आरम्भ के लगभग यदि वस्तुतः कोई वराहमिहिर रहे हो तो वे पञ्चसिद्धान्तिका इत्यादि ग्रन्थो के रचयिता वराहमिहिर से भिन्न होने चाहिए।[1]

---

१. पूनानिवासी कैलासवासी श्री रघुनाथ शास्त्री टेंभूकर नामक एक ज्योतिषी ने वराहमिहिर के समय के विषय में मुझे एक श्लोक बतलाया है। वह यह है—

स्वस्तिश्रीनृपसूर्यसूनुजशके याते द्विवेदाम्बरत्रै—
३०४२ मानाब्दमिते त्वनेहसि जये वर्षे वसन्तादिके।
चैत्रे श्वेतदले शुभे वसुतिथावादित्यदासादभूद्-
वेदांगे निपुणो वराहमिहिरो विप्रो रवेराशिभिः ।।

इसमें युधिष्ठिर शक ३०४२ में सूर्य के आशीर्वाद से आदित्यदास के पुत्र वराहमिहिर की उत्पत्ति बतलायी है। पञ्चसिद्धान्तिकाकार वराहमिहिर भी 'आदित्यदासतनय' और 'सवितृलब्धवरप्रसाद' थे। परन्तु इस श्लोक मे बतलाए हुए संवत्सर की किसी भी पद्धति से गणित से संगति नहीं लगती, अतः यह विश्वसनीय नहीं है।

कुल, स्थल इत्यादि

वराहमिहिर ने बृहज्जातक के उपसहाराध्याय मे लिखा है—

आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोध
कापित्थके सवितृलब्ध-वरप्रसाद ।
आवन्तिको मुनिमतान्यवलोक्यसम्यग्-
घोरा वराहमिहिरो रुचिरा चकार ।९।।

इससे ज्ञात होता है कि इनके पिता का नाम आदित्यदास था और इन्होने ज्ञान उन्ही से प्राप्त किया था। कापित्थक मे इन्हे सूर्य का वर-प्रसाद प्राप्त हुआ था और ये अवन्ती के निवासी थे। अवन्ती के पास कापित्थक नाम का कोई गाँव होगा और वहाँ ये कुछ दिन रहे होगे। सब ग्रन्थो के आरम्भ मे इन्होने मङ्गलाचरण मे मुख्यत सूर्य की वन्दना की है, इससे ज्ञात होता है कि ये सूर्य के भक्त थे। पञ्चसिद्धान्तिका के प्रथमाध्याय की निम्नलिखित आर्या से ज्ञात होता है कि इनके ज्योतिषशास्त्र के गुरु इनके पिता से भिन्न थे।

दिनकरवसिष्ठपूर्वान् बिविधयुनीन् भावतः प्रणम्यादी ।
जनक गुरुञ्च शास्त्रे येतास्मिन् नः कृतो बोध. ।।१।।

दूसरे स्थलो के अन्य चार-पाँच उल्लेखो से भी ज्ञात होता है कि ये अवन्ती अर्थात् उज्जयिनी के निवासी थे।

परदेशगमन

कुछ लोग ऐसा समझते है कि भास्कराचार्य ने यवन देशो मे जाकर ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया था, परन्तु भास्कराचार्य के और उनके पूर्व के ग्रन्थों को देखने से ज्ञात होता है कि यह धारणा भ्रमपूर्ण है। वराहमिहिर के विषय मे भी कोई-कोई ऐसा ही कहते है, परन्तु वराह के ग्रन्थ और उनकी भटोत्पलकृत टीकाओ को देखने से ज्ञात होता है कि वराह के ग्रन्थो मे जिन विषयो का वर्णन है उन सब के, वराह के पूर्व ही इस देश मे अनेको ग्रन्थ बन चुके थे, अतः उन्हे विदेश जाने की कोई आवश्यकता नही थी।

ग्रन्थ

इन्होने यात्रा विवाह, गणित (करण), होरा और सहिता विषयो के ग्रन्थ बनाये हैं। सहिता शाखा के इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ बृहत्सहिता के निम्नलिखित श्लोक से ज्ञात होता है कि वह सब के अन्त मे बना है।

वक्रानुवक्रास्तमयोदयाद्यास्ताराग्रहाणा करणे मयोक्ता.।
होरागतं विस्तरतश्च जन्मयात्राविवाहै सह पूर्वमुक्तम् ।।१०।।

अध्याय १

इस श्लोक मे बतलाया हुआ होरा शाखा का ग्रन्थ बृहज्जातक ही है। इसके निम्नलिखित श्लोको से ज्ञात होता है कि विवाह और करण-ग्रन्थ इसके पहिले बन चुके थे और यात्रा विषयक ग्रन्थ इसके बाद बना।

अध्यायाना विशति: पञ्चयुक्ता जन्मन्येतद्यात्रिक चाभिधास्ये ।।३।।
. . .विवाहकाल. करण ग्रहाणा प्रोक्त पृथक् तद्विपुला च शाखा ।।६।।

बृहज्जातक—उपसहाराध्याय।

इसमे बतलाया हुआ करण ग्रन्थ पञ्चसिद्धान्तिका ही है। पञ्चसिद्धान्तिका मे ऐसा कोई उल्लेख नही है जिससे यह सिद्ध होता हो कि वराह ने इसके पहिले कोई ग्रन्थ बनाया था इससे और वराहमिहिर की अवस्था का विचार करने से पञ्चसिद्धान्तिका ही उनका प्रथम ग्रन्थ ज्ञात होता है। बृहत्सहिता की भटोत्पल कृत प्रथमाध्याय की टीका से ज्ञात होता है कि वराह के विवाह विषयक ग्रन्थ का नाम 'बृहद्विवाहपटल' था। वह और उनका यात्रा विषयक ग्रन्थ, ये दोनों इस समय उपलब्ध नही हैं। होरा शाखा पर बृहज्जातक के अतिरिक्त उनका एक और ग्रन्थ लघुजातक नाम का है। उसमे लिखा है—

होराशास्त्र वृत्तैर्मया निबद्ध निरीक्ष्य शास्त्राणि।
यत्तस्याप्यार्याभि. सारमह सम्प्रवक्ष्यामि ।।१।।

इससे ज्ञात होता है कि लघुजातक बृहज्जातक का ही संक्षिप्त स्वरूप है। रचना-काल के अनुसार इनके ग्रन्थो का क्रम यह है—पञ्चसिद्धान्तिका, विवाहपटल, बृह-ज्जातक लघुजातक, यात्रा और बृहत्सहिता। लघु जातक का रचनाकाल यात्रा-ग्रन्थ और बृहत्सहिता के बाद भी हो सकता है।

ग्रन्थ प्रचार

इनमे से बृहज्जातक और लघुजातक का इस समय भी ज्योतिषियो में पर्याप्त प्रचार है और ये बम्बई, पूना, काशी इत्यादि स्थानों में छप चुके है, अन्य भी अनेक स्थानो मे अनेको लिपियो मे छपे होगे। डा० केर्न ने मूल मात्र बृहत्सहिता छपायी है और उसका इंग्लिश में अनुवाद करके उसे रायल एशियाटिक सोसायटी की पाचवी पुस्तक मे छपाया है। कलकत्ता मे बिब्लिओथिका इंडिका में बृहत्संहिता मूलमात्र छपी

है। रत्न गिरि के जगन्मित्र छापाखाने मे बृहत्सहिता का मूल और उसका [मराठी अनुवाद छपा है।

टीकाएँ

भटोत्पल वराहमिहिर के प्रसिद्ध टीकाकार है। यद्यपि यह सत्य है कि बृहत्संहिता और बृहज्जातक ग्रन्थ स्वय उपयुक्त होने के कारण आज तक प्रचलित है तथापि उनके प्राचार का प्रमुख कारण उत्पल टीका है, ऐसा कह सकते है। बृहत्संहिता की टीका मे नीराजनविधि विषय मे उत्पल ने लिखा है 'यात्राया व्याख्यातम्"। इससे ज्ञात होता है कि उन्होने यात्रा ग्रन्थ की भी टीका की थी। उत्पल ने लघुजातक की भी टीका की है। उन्होने वराह के शेष ग्रन्थो की भी टीका की थी, इसका प्रमाण नही मिलता। उत्पलटीकाकाल लगभग शके ८८८ अर्थात् वराह के लगभग ४०० वर्ष बाद है। उन्होने राहुचार की टीका मे और दो-तीन अन्य स्थानो मे भी लिखा है—"अन्ये एव व्याचक्षते", इससे ज्ञात होता है कि उनके पहिले भी बृहत्सहिता की कुछ टीकाएँ थी। बृहज्जातक की महीदास और महीधरकृत टीकाए डेक्कनकालेज सग्रह (न० ३४१ ३४३ सन् १८८२-८३) मे[1] है।

ग्रन्थ वर्णन

इनके बृहत्सहिता, बृहज्जातक और लघुजातक ग्रन्थो का विवेचन आगे करेगे। गणित-स्कन्ध सम्बन्धी ग्रन्थ पञ्चसिद्धान्तिका का बहुत कुछ विवेचन पहिले कर चुके है, शेष यहा करते है।

उपर्युक्त 'वक्रानुवक्रास्तमय. .' आर्या मे इन्होने लिखा है कि ग्रहो के वक्र, अनुवक्र, अस्त और उदय इत्यादि का वर्णन मैने करणग्रन्थ मे किया है। ऐसी ही एक और आर्या है—

> युद्ध यदा यथा वा भविष्यमादिश्यते त्रिकालज्ञै।
> तद्विज्ञान करणे मया कृत सूर्यसिद्धान्तात्॥
>
> —बृहत्सहिता, अध्याय १७

---

१. बेरुनी ने भी वराह का समय शके ४२७ ही लिखा है। उसने इनके बृहत्संहिता और लघुजातक ग्रन्थो का अरबी मे अनुवाद किया था। बृहज्जातक की बलभद्रकृत टीका का उल्लेख उसने किया है। सुधाकर द्विवेदी लिखते हैं कि वराह के योगयात्रा और विवाहपटल ग्रन्थ काशी में है। वराह का समाससंहिता नामक ग्रन्थ था—ऐसा उत्पल ने लिखा है। मेरी समझ से वह बृहत्संहिता का संक्षेप होगा।

पञ्चसिद्धान्तिका मे इन सब बातो का वर्णन है। इससे और अन्य प्रमाणो से भी सिद्ध होता है कि इनका करणग्रन्थ पञ्चसिद्धान्तिका ही है परन्तु इन्होने स्वय उसका पञ्चसिद्धान्तिका नाम कही नही लिखा है।

अष्टादशभिर्बद्ध्वा ताराग्रहतन्त्रमेतद्धयार्यै·।
भजते वराहमिहिरो ददाति निर्मत्सर करणम् ।।६५।।

पञ्चसिद्धान्तिका, अध्याय १८

यहा उसे करण और तन्त्र कहा है। पञ्च सिद्धान्तिका मे और भी एक स्थान मे उसे करण या तन्त्र कहा है, परन्तु उत्पल ने उसे पञ्चसिद्धान्तिका कहा है। इसका कारण यह है कि ग्रन्थकार ने उसमे पाच सिद्धान्तो का अनुवाद किया है। सूर्यसिद्धान्तोक्त मध्यम ग्रहो मे वराह ने अपना एक बीजसस्कार दिया है। वह यह है—

क्षेप्या शरेन्दु १५ विकला प्रतिवर्ष मध्यमक्षितिजे।
दशदश गुरोर्विशोध्या शनैश्चरे सार्धसप्तयुता·।।१०।।
पञ्चद्वया २५ विशोध्या सिते बुधे खाश्विचन्द्र १२० युताः।।

पहिले बता चुके है कि पञ्चसिद्धान्तिका का कोई भी सिद्धान्त वराहकृत नही है और बीजसस्कार से यह कथन निर्विवाद सिद्ध होता है। यदि पञ्चसिद्धान्तिका के ही किसी सिद्धान्त की ग्रहगतिस्थिति वराह की होती तो उन्हे पृथक् यह बीजसंस्कार बतलाने की आवश्यकता कभी भी न पडती। पहिले बता चुके है, कि इस बीजसस्कार से सस्कृत ग्रहस्थिति से भास्वतीकरण के क्षेपक मिलते है।

वराह ने भिन्न-भिन्न सिद्धान्तो के मध्यम ग्रह तथा ग्रहण-विचारो का उल्लेख करते हुए उनके विषय मे कहा है—

यत्तत्परं रहस्य भ्रमति मतिर्यत्र तन्त्रकाराणाम्।
तदहमपहाय मत्वरमस्मिन् वक्ष्ये ग्रस्ह भानो.।।५।।
दिक्स्थितिविमर्दकर्णप्रमाणवेलाग्रहाग्रहाविन्दो.।
ताराग्रहसयोगं देशान्तरसाधन चास्मिन्।।६।।
सममण्डलचन्द्रोदय—यन्त्रच्छेद्यानि ताण्डवच्छाया।
उपकरणाद्यक्षज्यावलम्बकापक्रमाद्यानि।।७।।

अध्याय १

इसी प्रकार

प्रद्युम्नो भूतन ये जीवे सौरे च विजयनन्दी।।५९।।
भग्नावतः स्फुटमिदं करण दृष्टं वराहमिहिरेण।।

यहाँ उनके कथन का उद्देश्य यह मालूम होता है कि प्राचीन तन्त्रकार जिन बातो को ठीक न जान सके वे मैने इस ग्रन्थ मे सिद्ध की है। इससे ज्ञात होता है कि उन्होने अपने ग्रन्थ मे प्राचीन ग्रन्थो से कुछ विशेष लिखा है। उपर्युक्त मध्यम ग्रह सस्कार के अतिरिक्त उन्होंने विशेष क्या लिखा है, इसे जानने का कोई उपाय नही है, तथापि मूलमे विशेष परिवर्तन किया होगा, यह सम्भव नही है। हम समझते है, पाचो सिद्धान्तो की जिन बातो का ठीक अनुभव हुआ होगा और जो उपपत्ति द्वारा शुद्ध जान पडी होगी वे उन्होंने ग्रन्थ मे रखी होगी और शेष छोड दी होगी, और सम्भव है देशान्तर, छायासाधन, ग्रहण और छेद्यक सम्बन्धी कुछ स्वय बनायी हुई रीतिया लिखी होगी।

वराह ने सर्वप्रथम करण ग्रन्थ बनाया, परन्तु उनकी बृहत्सहिता से ज्ञात होता है कि बाद मे उनका ध्यान फलज्योतिष की ओर और विशेषत नाना प्रकार के सृष्टि-चमत्कार, पदार्थो के गुण-धर्म के ज्ञान और उनके व्यवहार मे उपयोग करने की ओर अधिक आकृष्ट हो गया था। ब्रह्मगुप्त ने प्राचीन ज्योतिषियो मे बहुत से दोष दिखलाये है, परन्तु वराहमिहिर को कही भी दोष नही दिया है।[1] भास्कराचार्य ने उनकी स्तुति की है और अन्य भी अनेको ग्रन्थकारो ने उनके वचन प्रमाण रूप मे उद्धृत किये है। सृष्टिशास्त्र की इस एक शाखा ज्योतिषशास्त्र के ग्रन्थ बहु ो ने बनाये है, पर उसकी अनेक शाखाओ का विचार करनेवाला ज्योतिषी वराह के बाद दूसरा नही हुआ, ऐसा कह सकते है। इतने प्राचीन काल मे हमारे देश मे ऐसे मनुष्य का उत्पन्न होना सचमुच हमारे लिए भूषण है। दु ख के साथ कहना पडता है कि उनके जातक ग्रन्थ का आज तक पर्याप्त उपयोग होता चला आ रहा है, पर सहिता ग्रन्थ का विचार और उपयोग प्राय. किसी ने भी नही किया। उनकी बतलायी हुई दिशा के अनुसार सृष्टि-पदार्थो के गुण-धर्म का विचार यदि उसी प्रकार अव्याहत चलता रहा होता तो आज यूरोपियन इस विषय मे हमसे आगे न बढ़ पाते, परन्तु हमारे देश के दुर्भाग्यवश वह परम्परा आगे न चल सकी।

श्रीषेण और विष्णुचन्द्र

इन ज्योतिषियो का समय वराहमिहिर के बाद और ब्रह्मगुप्त के पहिले अर्थात् शाके ४२७ और ५५० के मध्य मे है। इनके ग्रन्थ इस समय उपलब्ध नही है। आधु-

---

१. वराहमिहिर ग्रहण का कारण भूछाया और चन्द्रमा मे प्रविष्ट राहु नहीं बतलाते इसलिए ब्रह्मगुप्त ने उन्हें दोष दिया है, पर वह वास्तविक दोष नहीं है और ब्रह्मगुप्त का भी उद्देश्य वस्तुतः दोष देने का नही है।

निक रोमक और वसिष्ठ सिद्धान्त इन्ही के होगे अथवा इनके ग्रन्थों के आधार पर बने होगे---इत्यादि विचार पहिले कर चुके है।

ब्रह्मगुप्त

काल

इन्होने अपने ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त मे लिखा है---

श्रीचापवंशतिलके श्रीव्याघ्रमुखे नृपे शकनृपाणाम् ।
पञ्चाशत्सयुक्तैर्वर्षशतै पञ्चभि ५५० रतीतै ।।७।।
ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त सज्जनगणितज्ञगोलवित्प्रीत्यै ।
त्रिशद्वर्षेण कृतो जिष्णुसुतब्रह्मगुप्तेन ।।८।।

इससे ज्ञात होता है कि इन्होने यह ग्रन्थ चापवशीय व्याघ्रमुख नामक राजा के राज्यकाल मे शक ५५० मे ३० वर्ष की अवस्था मे बनाया अर्थात् इनका जन्म शक ५२० है। इनके पिता का नाम जिष्णु था।

स्थान

ये भिन्नमाल के निवासी थे। यह गाव आबू पर्वत और लुणी नदी के बीच में आबू से ४० मील वायव्य मे गुजरात की उत्तरी सरहद पर दक्षिण मारवाड मे है। इस समय यह एक छोटा-सा गाव है। पहले इसका नाम भीलमाल या श्रीमाल था। यह माघ कवि की जन्मभूमि है। ईसवी सन् की सातवी शताब्दी में जब कि ह्वेनसाग नामक चीनी यात्री यहां आया था, यह उत्तर गुजरात की राजधानी थी। ब्रह्मगुप्त ने अपना सिद्धान्त चापवशीय व्याध्रमुख राजा के समय मे लिखा है और वे भिल्लमालकाचार्य[1] कहलाते है। चावड़े अथवा चापोत्कट वश का राज्य सन् ७५६ से ९४१ पर्यन्त अन्हिल वाड़ मे था और इस समय तक उत्तर गुजरात मे छोटी-छोटी रियासते उसके अधिकार मे रही है, अत यह चावड़े वंश ही ब्रह्मगुप्त-कथित चापवश होना चाहिए। ह्वेनसाग ने ब्रह्मगुप्त-काल के लगभग गुजरात की राजधानी भिलमाल लिखी है और अभी भी गुजराती ज्योतिषियों मे यह कथा प्रचलित है कि ब्रह्मगुप्त भिन्नमाल के निवासी थे। अत. उनका निवासस्थान भिन्नमाल ही होना चाहिए।[2]

---

१. खण्डखाद्य के टीकाकार वरुण ने इनके लिए 'भिल्लमालकाचार्य' सदृश एक नाम का प्रयोग किया है और वह कुछ हस्तलिखित पुस्तकों के अन्त में मिलता है।

२. Indian Antiqury, XVII p. 192 July 1888.

ग्रन्थ

इस समय इनके ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त और खण्ड खाद्य-करण नामक दो ग्रन्थ उपलब्ध है। खण्डखाद्य मे आरम्भ-वर्ष शके ५८७ है। इससे ज्ञात होता है कि उसे इन्होने ६७ वर्ष की अवस्था मे बनाया था। ब्रह्मसिद्धान्त के २४वे अध्याय का एक श्लोक है—

गणितेन फल सिद्ध ब्राह्मे ध्यानग्रहे यतोऽध्याये।
ध्यानग्रहो द्विसप्तत्यार्याणा न लिखितोऽत्र मया ।।

इससे ज्ञात होता है कि इन्होने ध्यानग्रह नामक ७२ आर्याओ का एक अध्याय अनुमानतः फलादेश विषयक बनाया था और उसे इस ग्रन्थ मे नही लिखा था। इस समय वह उपलब्ध भी नही है। पता नही चलता, उसमे जातक सम्बन्धी फल थे या सहिता ग्रन्थो सरीखे, परन्तु उपर्युक्त आर्या से ज्ञात होता है कि ग्रन्थकार की दृष्टि मे वह बड़ा महत्वपूर्ण और शिष्यो को गुप्त रीति से बताने योग्य था।

बेरुनी के ग्रन्थ के आधार पर प्रोफेसर साचो लिखते है—"प्राच्य सुधार के इतिहास मे ब्रह्मगुप्त का स्थान बहुत ऊँचा है। अरबनिवासियो को टालमी के ग्रन्थ का पता लगने से पहिले उन्हे ब्रह्मगुप्त ने ज्योतिषशास्त्र सिखाया, क्योकि अरबी भाषा के साहित्य मे 'सिन्धिद' और 'अल अरकन्द' ग्रन्थो के नाम बार-बार आते है और वे दोनो ब्रह्मगुप्त के ब्रह्मसिद्धान्त और खण्डखाद्य के अनुभव है" (भाग २, पृष्ठ ३०४)। ये अनुवाद खलीफा मनसूर के समय मे हुए होगे। इससे ज्ञात होता है कि उस समय सिन्ध प्रान्त मे ब्रह्मगुप्त के ग्रन्थो का अधिक प्रचार था। खण्ड-खाद्य की बलभद्रकृत टीका का उल्लेख बेरुनी ने बार-बार किया है। उसने ब्रह्मसिद्धान्त और खण्ड-खाद्य का अरबी मे अनुवाद किया था (भाग २, पृष्ठ ३०३, ३३९)। उसके पहिले के अनुवाद अच्छे नही थे—ऐसा बेरुनी ने उनमे दोष दिखलाया है। ये अनुवाद अभी तक उपलब्ध नही हो सके है। बेरुनी सिन्ध प्रान्त मे बहुत दिनो तक रहा था। उसके लेखो के अनेको स्थलो से प्रकट होता है कि उस समय सिन्ध मे ब्रह्मगुप्त के ग्रन्थो का प्राधान्य था।

अन्य ब्रह्मसिद्धान्त

ब्रह्मगुप्तसिद्धान्त के अतिरिक्त तीन और ब्रह्मसिद्धान्त है। एक वह है जिसे इन्होंने ब्रह्मोक्त ग्रहगणित कहा है। वह वस्तुत. पञ्चसिद्धान्तिकोक्त पितामहसिद्धान्त ही है और उसकी रचना शकारम्भ के बहुत पहिले हुई है। दूसरा वह है जिसे ब्रह्मा ने नारद को बतलाया था। वह शाकल्योक्त-ब्रह्मसिद्धान्त नाम से प्रसिद्ध है। मेरे मत मे वह शके ७४३ के बाद का है। भगणादि मान्य या अन्य किसी भी विषय में साम्य न होने के कारण उसका ब्रह्मगुप्तसिद्धान्त से भिन्न होना स्पष्ट है। तीसरा ब्रह्म-

सिद्धान्त विष्णुधर्मोत्तर नामक[1] पुराण में है। भटोत्पल ने बृहत्संहिता की टीका में ब्रह्मगुप्तसिद्धान्त की बहुत सी आर्याएँ उद्धृत की है। उनके विषय मे उन्होने अधिकतर 'ब्रह्मसिद्धान्ते' और कही-कही 'तथा च ब्रह्मगु त.' लिया है, शाकल्योक्त ब्रह्मसिद्धान्त या विष्णुधर्मोत्तरपुराणान्तर्गत ब्रह्मसिद्धान्त का नाम कही नही लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि वे दोनो उस समय रहे हो तो भी विशेष प्रसिद्ध नही थे, कम से कम उत्पल तो ब्रह्मगुप्त के सिद्धान्त को ही ब्रह्मसिद्धान्त समझते थे। ब्रह्म गुप्त ने अपने सिद्धान्त को सर्वत्र 'ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त' या 'ब्रह्मसिद्धान्त' कहा है। मै भी सुविधा के लिए आगे इसे ब्रह्मसिद्धान्त ही कहूँगा।

ब्रह्मसिद्धान्त के कल्पीय भगणादि मान

	भोगभगण	मदोच्च भगण	पात भगण		भोगभगण	मदोच्च भगण	पात भगण
सूर्य	४३२००००००	४८०		बुध	१७९३६९९९८९८४	३३२	५२१
चन्द्र	५७७५३३०००००			गुरु	३६४२२६४५५	८५५	६३
चन्द्रोच्च	४८८१०५८५८			शुक्र	७०२२३८९४९२	६५३	८९३
राहु	२३२३११११६८			शनि	१४६५६७२९८	४१	५८४
मगल	२२९६८२८५२२	२९२	२६७				

नक्षत्रभ्रम	१५८२२३६४५००००	चान्द्रमास	५३४३३३०००००
सावनदिन	१५७७९१६४५००००	तिथि	१६०२९९९००००००
सौरमास	१५८४०००००००	क्षयाह	२५०८२५५००००
अधिमास	१५९३३०००००	वर्षमान	३६५।१५।३०।२२।३०

ये सब मान कल्पीय है। इनमें सब ग्रहो की भगणसख्याएँ किसी भी एक सख्या से नही कटती, अत. इस ब्रह्मसिद्धान्तानुसार कल्पारम्भ के अतिरिक्त बीच मे किसी

1. इसकी एक प्रति डेक्कन कालेज संग्रह में है।

भी समय सब मध्यम ग्रह एक स्थान मे नही आते। प्रथम आर्यसिद्धान्त और दोनो सूर्यसिद्धान्तो के अनुसार कलियुगारम्भ मे सब मध्यम ग्रह एकत्र होते है, पर इसमें ऐसा नही है। वर्तमान सूर्यसिद्धान्त मे लिखा है कि कल्पारम्भ के बाद कुछ वर्षों तक ब्रह्मा सृष्टि बनाते है और उसके बाद ग्रहो का चलना आरम्भ होता है, पर इसमे कल्पारम्भ ही ग्रहचारारम्भ माना गया है।

वर्षमान

उपर्युक्त मानो के सम्बन्ध मे सर्वप्रथम विचारणीय बात यह है कि इस ग्रन्थ का वर्षमान पञ्चसिद्धान्तिकोक्त पुलिश और रोमक सिद्धान्तो को छोडकर भारतीय प्रत्येक सिद्धान्त के वर्षमान से न्यून है, पर वे दोनों ब्रह्मगुप्त के समय प्रचलित ही नही थे, यह प्राचीन और वर्तमान सिद्धान्तपञ्चक के विवेचन मे सिद्ध कर चुके है। उस समय आर्यसिद्धान्त और मूल सूर्यसिद्धान्त का प्रचार था। ब्रह्मसिद्धान्त का वर्षमान प्रथम आर्यसिद्धान्त के वर्षमान से ५२ १/२ विपल और मूल सूर्यसिद्धान्त से ६७ १/२ विपल कम है। यद्यपि ये अन्तर बहुत थोडे दिखाई देते है, पर इनके कारण शके ५४० मे ब्रह्मसिद्धान्त की मेषसक्रान्ति प्रथम आर्यसिद्धान्त से ५४ घटी १४ १/८ पल पूर्व और मूल सूर्यसिद्धान्त की मेषसक्रान्ति से ५४ घटी ४३ ७/८ पल पूर्व हुई थी। इसका मुझे एकमात्र कारण यह ज्ञात होता है कि ब्रह्मगुप्त ने मेषसक्रान्ति विषुवदिन मे मानी है, जबकि रात और दिन समान होते है और सूर्योदय क्षितिज के ठीक पूर्व बिन्दु मे होता है। ऐसी मेषसक्रान्ति सायन रवि की होती है। गणित द्वारा ब्रह्मगुप्त-काल के आसपास के किसी[1] इष्ट शक की सायन स्पष्टरवि की सक्रान्ति का जो काल आता है, ब्रह्मगुप्तसिद्धान्त से भी लगभग वही आता है। शके ५०९ मे ब्रह्मसिद्धान्तानुसार स्पष्ट मेषसक्रान्ति चैत्र शुक्ल ३ भौमवार ता० १८ मार्च सन् ५८७ को उज्जयिनी के मध्यम सूर्योदय से ५६ घटी ४० पल पर आती है और उस वर्ष मे सायन स्पष्ट रवि की सक्रान्ति भी उसी दिन उसी समय आती है। ब्रह्मगुप्त का जन्म शके ५२० मे हुआ था। उन्होने शके ५४० के लगभग वेध करना आरम्भ किया होगा। शके ५४० मे ब्रह्मसिद्धान्तानुसार स्पष्ट मेषसक्रान्ति चैत्र कृष्ण १ शनिवार को ५७ घटी २२ पल पर आती है और उस समय सायन स्पष्टरवि शून्य राशि शून्य अश ३० कला आता है, अर्थात् ब्रह्मगुप्त की मेषसक्रान्ति के लगभग

---

१. सायन रवि का गणित केरोपन्तीय ग्रहसाधन कोष्ठक द्वारा किया है। वह ग्रन्थ बहुत सूक्ष्म नहीं है इसलिए यह घटना एक वर्ष आगे या पीछे भी हो सकती है। उपर्युक्त गणित में सूर्य मे कालान्तर संस्कार नहीं दिया है। वह उस समय के आसपास लगभग २ कला है। इस कारण भी एक दो वर्षों का अन्तर पड़ेगा।

३० घटी पूर्व सायन मेषसंक्रान्ति होती है। मेषसक्रान्ति के समय ३० घटी मे सूर्य की क्रान्ति लगभग १२ कला बढती है, अत. शके ५४० मे ब्रह्मसिद्धान्तीय मेषसक्रान्ति के समय सूर्य विषुववृत्त से केवल १२ कला उत्तर रहा होगा। यदि उस दिन सूर्योदय के समय ही ब्रह्मसिद्धान्त की मेषसक्रान्ति हुई होती तो उस समय पूर्व बिन्दु से १२ कला उत्तर की ओर सूर्यमध्यबिन्दु दिखाई दिया होता, परन्तु मेषसक्रान्ति सूर्योदय मे ही नही हुआ करती। एक बात यह और दूसरी यह कि दिक्साधन करने मे भी कुछ कलाओ की अशुद्धि होने की सम्भावना है, तीसरे वेध के साधन स्थूल थे। इन बातो का विचार करने से अनुभवी मनुष्य सहज ही समझ जायगा कि १२ कलाओ की अशुद्धि होना असम्भव नही है। इससे मुझे निश्चित रूप से यही ज्ञात होता है कि ब्रह्मगुप्त ने सायन रवि के मेषसक्रमण को ही मेषसक्रमण माना था। अपने सिद्धान्त के २४वे अध्याय में उन्होने लिखा है—

यदि भिन्ना सिद्धान्ता भास्करसंक्रान्तयोऽपि भेदसमाः।
स स्पष्ट पूर्वस्या विषुवत्यर्कोदयो यस्य ।।४।।

यदि सिद्धान्त भिन्न है तो सूर्य की सक्रान्तिया भी उस भेदानुसार ही होनी चाहिए, परन्तु वह सूर्य तो विषुवदिन मे उदय के समय पूर्व मे स्पष्ट दिखाई देता है।

इसका तात्पर्य इतना ही है कि आकाश मे सूर्य की सक्रान्तिया भिन्न-भिन्न समयों मे नही दिखाई देगी।[1] यहां विषुवदिन के सूर्योदयकालीन सूर्य का उल्लेख है, अत: वह सायन ही है और यह भी स्पष्ट है कि ब्रह्मगुप्त ने यह बात बेध के आधार पर लिखी है। उन्हे अयनगति का ज्ञान नही था और उनके पहिले यदि वह ज्ञात रही हो तो भी उन्होने उसका विचार नही किया, इसमे कोई सन्देह नही है, अत. उनकी दृष्टि मे सायन सूर्य और ग्रन्थागत (निरयण) सूर्य दो पदार्थ नही थे। उन्होने अपना सिद्धान्त इस प्रकार बनाया कि उससे सायन ही सूर्य आये, परन्तु यह व्यवस्था उन्ही के समय तक रही। इसका कारण यह है कि उनके समय संक्रान्ति लगभग ५४ घटी पहिले हुई, परन्तु यह जो परम्परागत बृढ ग्रह चला आ रहा था कि कलियुगारम्भ मे (उनके मतानुसार शुक्रवार के सूर्योदय के समय) मध्यम सूर्य मेषारम्भ मे था, इसके बाहर वे न जा सके। इसलिए उन्होने वह ५४ घटी अशुद्धि कलियुगारम्भ से ब्रह्मसिद्धान्त-रचनाकाल पर्यन्त

---

१. इसी विसंवाद के कारण इन्होंने एक ब्रह्मसिद्धान्त को ही सिद्धान्त और शेष ग्रन्थों को केवल ग्रन्थरचना कहा है और उनमें अनेकों दोष दिखलाये है। अन्य ग्रन्थों की सक्रान्ति उनकी संक्रान्ति से लगभग एक दिन बाद होती है।

लगभग ३७३० वर्षों मे विभक्त कर दी और अपना सिद्धान्त इस प्रकार बनाया कि उससे मेषसक्रान्ति उस समय आये, जब कि आकाश मे सूर्य ठीक पूर्व से उगे अर्थात् सायनमेष मे आये। ऐसा करने मे वर्षमान कुछ विपल कम हो गया। यदि इस अशुद्धि को ३७३० वर्षों मे विभक्त करने का प्रपञ्च उनके पीछे न लगा होता और उन्होने यदि इसका विचार किया होता कि सक्रान्ति अमुक काल से आज तक इतना पीछे आयी है, तो वे वर्षमान सायन अर्थात् ३६५।१४।३२ लिखते अथवा वर्षमान पहिले का ही रखकर सम्पात मे गति मानते। सिद्धान्त के ३७ वर्ष बाद उन्होने खण्डखाद्य करण बनाया और उसमे वर्षमान मूल सूर्यसिद्धान्त का रखा। इससे ज्ञात होता है कि वर्षमान प्राचीन ही रखकर अयनगति मानने की ओर उनका झुकाव हुआ होगा। अथवा सायनवर्ष का वास्तव मान जानते हुए और उसी को ग्रहण करना उचित है, ऐसा दृढ निश्चय रखते हुए भी उन्हे परम्परागत वर्षमान छोड़ने या अपने सिद्धान्त मे गृहीत वर्षमान को पुनः बदलने का साहस नही हुआ होगा। भास्कराचार्य ने सिद्धान्त-शिरोमणि के गोलबन्धाधिकार (आर्या १७-१९ की टीका) मे लिखा है—'कथ ब्रह्मगुप्तादिभिर्निपुणैरपि (क्रान्तिपात) नोक्त।' इससे ज्ञात होता है कि ब्रह्मगुप्त के ग्रन्थ मे अयनगति के विषय मे कुछ भी नही लिखा था।

सायन

पञ्चाङ्ग सायन होना चाहिए या निरयन, इस विषय में सम्प्रति विवाद है। उपर्युक्त विवेचन द्वारा सायनगणना की पोषक यह एक बात ज्ञात हुई कि ब्रह्मगुप्त के मत मे सायन रविसक्रमण ही वास्तविक सक्रमण था। उसके अनुसार उनका उद्देश्य वर्षमान बदलने का था और उन्होने बदला भी। यदि वे यावज्जीवन वेध करके उसकी तुलना करते तो उनके सरीखे अन्वेषक को सायन वर्ष का वास्तव मान ज्ञात होना कठिन नही था। सम्भव है, सायनवर्ष का शुद्ध मान जानते हुए भी उन्हे परम्परागत वर्षमान छोडने का साहस न हुआ हो। उनका वर्षमान औरो से कम है, इसका मैने जो कारण दिखाया है, उसके विषय मे विद्वानों को यह न सोचना चाहिए कि सायनमताभिमानी होने के कारण मैने यह हेतु ढूढ निकाला है। मै तो समझता हूँ, निरयनमत के पूर्ण अभिमानियो को भी यह बात मान्य होगी।

ग्रहशुद्धि और वेध

ब्रह्मसिद्धान्त की उपर्युक्त ग्रहभगणसख्याएँ अन्य सिद्धान्तो से कुछ भिन्न है, पर ब्रह्मसिद्धान्त और आधुनिक युरोपियन ग्रन्थो द्वारा लाये हुए शके ४२१ के मध्यम ग्रहों मे विशेष अन्तर नही है। इससे ज्ञात होता है कि ब्रह्मगुप्त ने अपने समय में

वेधानुकूल ग्रह लाने के लिए उनके भगणों की स्वय कल्पना की है, उक्त मन्दोच्च और पातो की तुलना से भी उनका तद्विषयक अन्वेषण ज्ञात होता है। इस प्रकार वर्षमान, ग्रहभगणसख्या और उच्च-पातभगणो से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि ब्रह्मगुप्त स्वय वेध करनेवाले अन्वेषक थे और ज्योतिषशास्त्र मे यही सबसे अधिक महत्व की बात है। ऐसे पुरुष मे जो स्वाभाविक तेज और उचित स्वाभिमान होना चाहिए वह उनके ग्रन्थ मे अनेको स्थानो मे व्यक्त हुआ है। स्पष्टाधिकार के द्वितीय अध्याय मे उन्होने लिखा है कि "ब्रह्मोक्त रवि-शशी और उनके द्वारा लायी हुई तिथि ही शुद्ध है और अन्य तन्त्रो द्वारा लायी हुई दूरभ्रष्ट है।" इसके आगे लिखा है—"ब्रह्मसिद्धान्तीय मध्यमग्रह, मन्दोच्च और शीघ्रपरिधि द्वारा भौमादि स्पष्टग्रह शुद्ध आते है, आर्यभटीय से नही।"

ब्रह्मोक्तमध्यरविशशितदुच्चतत्परिधिभिः स्फुटीकरणम् ।
कृत्वैव स्पष्टतिथिर्दूरभ्रष्टान्यतन्त्रोक्तैः ।।३१।।
आर्यभटस्याज्ञानान्मध्यममन्दोच्च— शीघ्रपरिधीनाम् ।
न स्पष्टा भौमाद्या स्पष्टा ब्रह्मोक्तमध्याद्यैः ।।३३।।

ऐसे अन्य भी बहुत-से उदाहरण है, पर कहे बिना नही रहा जाता, उनके इस अभिमान ने मात्रा से अधिक होने के कारण कही-कही दुरभिमान का रूप धारण कर लिया है। उन्होने अपने सिद्धान्त मे दूषणाध्याय नामक ६३ आर्याओ का एक (११ वा) स्वतन्त्र अध्याय लिखा है। उसमे आर्यभट मे कुछ ऐसे दोष दिखलाये है, जिन्हे केवल दुराग्रह ही कहा जा सकता है।

ब्राह्मसिद्धान्तविषय

उपोद्घात मे बतलाये हुए ज्योतिषसिद्धान्तग्रन्थो के मुख्य अधिकार इस सिद्धान्त मे आरम्भ के १० अध्यायो मे है, पर आगे के १४ अध्यायो मे अन्य भी बहुत से विषय है और वे बडे महत्व के है। उनमे से दूषणाध्याय, अकगणित, बीजगणित और यन्त्र सम्बन्धी चार अध्यायो को छोड़ शेष मे मुख्यत· पूर्वार्ध मे वर्णित विषयो की उपपत्ति है। १२वॉ अध्याय अकगणित और क्षेत्रफलादि विषयक है। उसमे ५६ आर्याओ मे भास्कराचार्य की लीलावती के बहुत से विषय है। १८वे मे विशेषत. बीजगणित है। उसमे ७२ आर्याएँ है। बीजगणित शब्द उसमे कही नही है। उसका नाम कुट्टकाध्याय है। उसमे भास्करीय बीजगणित के बहुत से विषय है। एक कुट्टक नाम का प्रकरण है। वह मुख्यत मध्यम ग्रहादिको के लिए लिखा गया है। ब्राह्मसिद्धान्त मे सब २४ अध्याय और १००८ आर्याएँ है।

टीकाएँ

ब्रह्मसिद्धान्त के आरम्भ के १० अध्यायो की पृथूदकटीका डे० का० पुस्तकसग्रह मे है। कोलब्रूक के लेख से ज्ञात होता है कि उन्हें सम्पूर्ण टीका मिली थी। मुझे अभी तक सम्पूर्ण टीका नहीं मिली है। कोलब्रूक ने सन् १८१७ में इसके अंकगणित और बीजगणिताध्यायों का इग्लिश में अनुवाद किया है।

प्रक्षेप

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मसिद्धान्त के प्रत्येक अध्याय के अन्त में आर्यासख्या लिखी है। मूलग्रन्थो मे बाद में परिवर्तन हो जाया करता है, इसका अनुभव होने के कारण उन्होंने अपने ग्रन्थ मे यह व्यवस्था की, ऐसा प्रतीत होता है। फिर भी पाच-सात आर्याएँ न्यूनाधिक हुई-सी ज्ञात होती है। तीन आर्याएँ टीकाविहीन पुस्तको मे है, पर पृथूदकटीकायुक्त पुस्तक मे नही हैं। उनमे से विष्कम्भादिक योगसम्बन्धी एक आर्या विशेष ध्यान देने योग्य है। वह स्पष्टाधिकार मे है।

योग

उसमे योगसाधन की रीति है। सटीक पुस्तक मे वह नही है। इससे हमे मालूम होता है कि आधुनिक पञ्चाङ्गो का विष्कम्भादिक २७ योग सम्बन्धी एक अङ्ग अर्थात् व्यतीपात और वैधृति इत्यादि योग ब्रह्मगुप्त के समय नही थे। वे पञ्चसिद्धान्तिका मे भी नही हैं। इसका अधिक विवेचन पञ्चाङ्ग-विचार मे करेंगे।

खण्डखाद्य

अब थोड़ा-सा विवेचन इनके खण्डखाद्य का करेंगे। खण्डखाद्य नाम बड़ा विचित्र है। पता नही, इन्होंने ऐसा नाम क्यो रखा। इसके पूर्व और उत्तर दो भाग हैं। पूर्वार्ध मे ६ अधिकार और १६४ आर्याएँ तथा उत्तरार्ध मे ५ अधिकार और ७१ आर्याएँ है। पूर्वार्ध के आरम्भ मे ही लिखा है—आर्यभट के ग्रन्थ से दैनन्दिन व्यवहार नही चल सकता, इसलिए मै उसके तुल्य फल देनेवाला करण बताता हूँ, अर्थात् इससे ग्रहादि उसके समान ही आयेंगे।

> वक्ष्यामि खण्डखाद्यकमाचार्यार्यभटतुल्यफलम् ।।१।।
> प्रायेणार्यभटेन व्यवहारः प्रतिदिन यतोऽशक्य. ।
> उद्वाहजातकादिषु तत्समफललघुतरोक्तिरत· ।।२।।

खण्डखाद्य में वर्षमान आर्यसिद्धान्त का नही, वल्कि मूल सूर्यसिद्धान्त का अर्थात् ३६५।१५।३१।३० है। इसलिए इसमे युगप्रवृत्ति स्वकीय अथवा आर्यभटीय सिद्धान्त

के अनुसार सूर्योदय मे न मानकर मूल सूर्यसिद्धान्तानुसार अर्धरात्रि में माननी पड़ी है। इसमे आरम्भ वर्ष शके ५८७ है। उस वर्ष स्पष्टमान से वैशाख शुक्ल प्रतिपदा रविवार को आती है। इसमे क्षेपक उसके पूर्व की मध्यरात्रि के अर्थात् अमान्त चैत्र कृष्ण ३० अमावस्या शनिवार की मध्यरात्रि के है और वही से अहर्गणसाधन किया गया है। मूल सूर्यसिद्धान्तानुसार मध्यम मेषसक्रान्ति उसी शनि को १२ घटी ६ पल पर आती है। क्षेपक ये है—

	रा.	अं	क.	वि		रा.	अं.	क	वि.
सूर्य	०	०	३२	२२	बुध	६	०	४४	४६
चन्द्रमा	०	६	६	४३	गुरू	६	४	२५	१६
चन्द्रोच्च	१०	८	२८	६	शुक्र	१०	०	१०	१४
राहु	०	१८	४७	२३	शनि	६	६	४१	१६
मंगल	३	१०	१३	६					

मूल सूर्यसिद्धान्त के भगणादि मान ऊपर पृष्ठ मे लिखे है। उनके द्वारा लाये हुए शके ५८७ चैत्र कृष्ण ३० शनिवार को मध्यरात्रि के ग्रहो मे से चन्द्रोच्च और राहु को छोड शेष सब उपर्युक्त क्षेपको से बिलकुल ठीक-ठीक मिलते है। आर्यभटसिद्धान्त द्वारा लाये हुए ग्रह इनसे नही मिलते। इससे सिद्ध हुआ कि वर्षमान, अहर्गणारम्भ और प्राय क्षेपक, इन सब बातों मे खण्डखाद्यकरण का मूल सूर्यसिद्धान्त से साम्य है। मूल सूर्यसिद्धान्त के राहुभगण ज्ञात नही है। चन्द्रोच्च मूल सूर्यसिद्धान्त से नही मिलता तो आर्यभटीय या ब्रह्मसिद्धान्त से भी नही मिलता। राहु आर्य और ब्राह्म, किसी भी सिद्धान्त से नही मिलता। खण्डखाद्य मे वर्षमान और वर्षारम्भ ब्रह्मसिद्धान्त से भिन्न माने गये है। अत. उसमे ब्रह्मसिद्धान्तीय चन्द्रोच्च और राहु का न होना ठीक ही है। यद्यपि खण्डखाद्य का आर्यभटीय सिद्धान्त से पूर्ण साम्य नही है तथापि आर्यभटीय और मूल सूर्यसिद्धान्त के कुछ मानो मे साम्य होने के कारण शके ५८७ में खण्डखाद्यानुसार लायी हुई ग्रहमध्यमस्थिति आर्यभटसिद्धान्त से बहुत मिलती थी।

ब्रह्मगुप्त ने खण्डखाद्य के उत्तरार्ध के आरम्भ मे ही लिखा है कि आर्यभट का ग्रहस्पष्टीकरण स्फुट (दृक्प्रत्ययद) नही है, इसलिए मैं उसे अब स्फुट कर रहा हूँ। इसकी टीका मे टीकाकार वरुण ने लिखा है—'ब्रह्मगुप्त ने अपने कथनानुसार इस ग्रन्थ

---

१. पञ्चसिद्धान्तिका में भी अमावास्या के पास की ही मध्यम मेषसंक्रान्ति सुविधा के लिए ली गयी है, यह वराहमिहिर के वर्णन में लिख चुके है। अन्य बात में भी दोनों में बड़ा साम्य है।

का पूर्वार्ध आर्यभटतुल्य बताया है और उत्तरार्ध मे दृक्प्रत्यय आने योग्य फलसंस्कार अपने ग्रन्थ के अनुसार बताया है। इसमे न लिखी हुई बाते आर्यभटकरण से लेनी चाहिए। टीकाकार के इस कथन और उत्तरार्ध के अन्य प्रकरणो से ज्ञात होता है कि खण्डखाद्य मे उन्होंने केवल दृक्प्रत्यय आने योग्य फेरफार किया है। वर्षमान, ग्रहमध्यमगति, क्षेपक और युगारम्भवेला, ये महत्व की बाते आर्यभट के ग्रन्थ से ली है। वरुण के उपर्युक्त उल्लेख इत्यादिकों से ज्ञात होता है कि आर्यभट का वह ग्रन्थ सम्प्रति उपलब्ध आर्यसिद्धान्त नही, बल्कि आर्यभट का करणग्रन्थ है।

आश्चर्य की बात यह है कि इन्होने स्वकीय सिद्धान्त को छोड उस आर्यभट के ग्रन्थ तुल्य बनाने की प्रतिज्ञा की है और प्राय. वह निभायी भी है, जिसके ये पूर्ण प्रतिस्पर्धी थे और जिस पर इन्होंने दूषणो की वर्षा की है। इसके हमे दो कारण दिखाई देते है। एक तो यह कि उस समय आर्यभट का ग्रन्थ अतिशय लोकमान्य रहा होगा जिससे ये उसे छोड नही सके होगे। दूसरे इनके सिद्धान्त की सक्रान्ति खण्डखाद्य-रचनाकाल मे अर्थात् शके ५८७ मे मूल सूर्यसिद्धान्त से ५५ घटी ३६ ६/१० पलपूर्व और आर्यभटीय से ५४ घटी ५५ २/१० पल पूर्व आती थी। इतना अन्तर रहने से दोनो के अधिक मासादि भी भिन्न होंगे। अधिक मास का भेद और एक दिन पहले सक्रान्ति लगना, ऐसी बाते है जिन्हे एक अज्ञानी मनुष्य भी समझ सकता है। इस कारण स्वकीय सिद्धान्त के मानों के प्रचार मे उन्हें लोकमत की प्रतिकूलता दीख पडी होगी। इन्ही दोनो कारणों से उन्हे स्वकीय सिद्धान्तानुसार करण बनाने का साहस नही हुआ होगा। विचारणीय बात यह है कि संक्रान्ति मे एक दिन से कम अन्तर होने पर भी ब्रह्मगुप्त अपने मानों का प्रचार नही कर सके तो आधुनिक केरोपन्ती और सायन पञ्चाङ्गो का प्रचलित होना कितना कठिन है जिनकी संक्रान्तियां प्राचीन पञ्चाङ्गों से क्रमश· लगभग ४ और २२ दिन पूर्व होती है।

खण्डखाद्य की टीकाएँ

खण्डखाद्य पर वरुण और भटोत्पल ने टीकाएँ की है। पृथूदक की टीका मुझे अभी तक नही मिली है। और भी एक खण्डित टीका है जिसमें टीकाकार का नाम नही है, पर उदाहरणार्थ शक १५६४ लिया गया है और चर तथा देशान्तर इत्यादि संस्कार कश्मीर सम्बन्धी है। अत. स्पष्ट है कि वह टीकाकार कश्मीरी है। डेक्कनकालेज संग्रह मे एक पञ्चाङ्गकौतुक नाम का ग्रन्थ है (न० ५३७, सन् १८७५-७६)। उसमें सरल रीति से पञ्चाङ्ग साधन होने योग्य सारणिया और रीतिया दी है, आरम्भ वर्ष शक १५८० है और सम्पूर्ण गणित खण्डखाद्य द्वारा हुआ है। उस ग्रन्थ मे कहीं भी यह नही लिखा है कि वह कश्मीर में बना है, पर वह पुस्तक कश्मीर में मिली है और

उसमे कश्मीर मे प्रचलित लौकिक काल का उपयोग किया गया है, अतः स्पष्ट है कि उसका कर्ता कश्मीरी ही होगा। इससे सिद्ध होता है कि खण्डखाद्यकरण शके १५८० पर्यन्त काश्मीर मे प्रचलित था। खण्डखाद्य की उपर्युक्त तीनो टीकाओ और पञ्चाङ्ग-कौतुक की प्रतिया, जो कि पूना के कालेजसग्रह मे है, कश्मीर मे मिली है। इससे ज्ञात होता है कि आज भी कश्मीर की ओर खण्डखाद्य का प्रचार होगा। भास्करा-चार्य ने उसका उल्लेख किया है। अलबेरुनी (शके ९५०) को खण्डखाद्य ग्रन्थ मिला था। उसने उसके कुछ उद्धरण दिये है।

ब्रह्मसिद्धान्त का प्रचार

ब्रह्मगुप्त ने अपने सिद्धान्त से भिन्न खण्डखाद्य ग्रन्थ बनाया, इससे अनुमान होता है कि उन्हे इस बात का कम विश्वास रहा होगा कि हमारे सिद्धान्त के भी कुछ अनुयायी होंगे और कालिदास की 'आ परितोषाद्विदुषा न साधु मन्ये . विज्ञानम्' उक्ति के अनुसार ऐसा होना स्वाभाविक भी है। ६७ वर्ष की अवस्था मे उन्होने खण्डखाद्य बनाया। तब तक उनका सिद्धान्त प्रचलित नही हुआ होगा और इतने दिनो तक अपने अनुयायियो का अभाव देखकर अन्त मे निराश होकर उन्होने खण्डखाद्य बनाया होगा। अपनी कृति का सार्थक्य अपनी आखो से देखने का सौभाग्य महान् शोधको मे से कुछ ही को प्राप्त होता है। काल का भरोसा न करके उन्होने अपनी कृति स्वय छोड दी, यह बात उनके लिए किञ्चित् लाञ्छनास्पद है, परन्तु ऐसे महाविद्वान् की उत्कृष्ट कृति से विद्वानो को परितोष न हो, यह कैसे हो सकता है? उन्ही के सदृश महान् ज्योतिषी भास्कराचार्य ने उन्हीं का आगम स्वीकार किया है। भास्कराचार्य से पहिले के भी ब्रह्मसिद्धान्तानुयायी दो करण मिलते है। इन सब मे ब्रह्मसिद्धान्त द्वारा लाये हुए ग्रहो में एक बीजसंस्कार दिया है। राजमृगाककरण मे जो कि शके ९६४ मे बना है, यह सस्कार सर्वप्रथम मिलता है, परन्तु इसके पहिले ब्रह्मसिद्धान्त इस बीजसंस्कार के बिना ही अपने निज रूप मे प्रचलित था, इसका मुझे एक उदाहरण मिला है।

निज रूप

सन् १८८३–८४ के पूनाकालेजसंग्रह मे गुणभद्रकृत उत्तरपुराण नामक एक ग्रन्थ मिला है (नं० २८९)। उसमे उसके रचनाकाल के विषय मे लिखा है—

> शकनृपकालाभ्यन्तर्रविंशत्यधिकाष्टशत ८२० मिताब्दान्ते।
> मङ्गलमहार्थकारिणि पिङ्गलनामनि समस्तजनसुखदे ॥३५॥

> श्रीपञ्चम्या बुधार्द्रायुजि दिवसवरे मन्त्रिवारे सुधांशौ, पूर्वाया सिहलग्ने
> धनुषि धरणिजे वृश्चिकार्को तुलागौ। सूर्ये शुक्रे कुलीरे गवि च सुरगरौ. . ॥

इस श्लोक के अनुसार उस समय की ग्रहस्थिति यह है—

सूर्य	– कुलीर (कर्क) राशि मे	गुरु	– गवि (वृष मे)
चन्द्रमा	– पूर्वा (भाद्रपदा) मे	शुक्र	– कुलीर (कर्क) राशि में
मगल	– धनु राशि मे	शनि	– (आर्कि) –वृश्चिक राशि मे
बुध	– आर्द्रा नक्षत्र मे	राहु	– (अगु) –तुला राशि में

पिङ्गल सवत्सर शके ८१९ गत अर्थात् ८२० वर्तमान मे आता है। यहा शका होती है कि गणित ८१९ का किया जाय या ८२० का। श्लोक मे केवल तिथि दी है, मास और पक्ष नही दिये है और वार का नाम मन्त्रिवार लिखा है। वह प्रायः गुरुवार या कदाचित् शुक्रवार होगा। इससे वास्तविक दिन का ठीक पता नही चलता, पर उसे ढूढने का एक उत्कृष्ट साधन यह है कि श्लोक मे सब ग्रहो की स्थिति दी है। सम्पूर्ण स्थिति जिस दिन मिले वही वास्तविक दिन है। शके ८१९ और ८२० के अनेक दिनो का गणित करने से ज्ञात हुआ कि शके ८१८ गत अर्थात् ८१९ वर्तमान मे अमान्त आषाढ़ कृष्ण ५ गुरुवार ता० २३ जून सन् ८९७ को सूर्योदय से लगभग २४ घटी पर्यन्त श्लोकोक्त ग्रहस्थिति आती है। श्लोक मे लग्न सिह लिखा है। वह सूर्योदय से लगभग ४ घटी से आरम्भ होकर ९ घटी पर्यन्त था। दो वर्षो मे इसके अतिरिक्त एक भी दिन ऐसा नही मिलता जिसमे इस ग्रहस्थिति की सम्भावना हो। श्लोकोक्त चन्द्रस्थिति एक दिन भी आगे या पीछे नही मिलती। ध्यान देने योग्य बात यह है कि यह ग्रहस्थिति ब्रह्मसिद्धान्तानुसार ब्रह्मसिद्धान्त के वर्षमान से मिलती है। अन्य किसी भी सिद्धान्त से इसकी सगति नही लगती। सूर्यसिद्धान्तानुसार आषाढ कृष्ण ५ गुरुवार को सूर्य मिथुन-राशि मे आता है। शुक्रवार को वह सूर्योदय से लगभग ५ घटी के बाद कर्क राशि मे आता है, अन्य किसी भी सिद्धान्त से गुरुवार को कर्कराशि मे नही आता। इस शक मे ब्रह्मसिद्धान्त की संक्रान्ति वर्तमान सूर्यसिद्धान्त की सक्रान्ति से ६१ घटी ३१ पल पूर्व आती है। इसी प्रकार वर्तमान सूर्यसिद्धान्त से गुरुवार को मगल भी मकर राशि मे आता है और ब्रह्मसिद्धान्तानुसार धनु राशि मे आता है। साराश यह कि ब्रह्मसिद्धातानुसार यह स्थिति बिलकुल ठीक-ठीक मिलती है और अनेक बातो का विचार करने से भी इसमे सन्देह का स्थान दिखाई नही देता।[1] इससे नि.सशय सिद्ध होता है कि शके ८१९ में ब्रह्मसिद्धान्त अपने निजरूप में प्रचलित था। यह पुराण

---

१. उपर्युक्त श्लोक मूलग्रन्थ में बहुत अशुद्ध है। उसे मैंने शुद्ध किया है। इसका स्पष्टीकरण प्रो० भाण्डारकर के पुस्तक संग्रह की सन् १८८३-८४ की रिपोर्ट के पृष्ठ ४२९-३० मे देखिए।

राष्ट्रकूट-वंशीय दक्षिण के अकालवर्ष नामक राजा के राज्यकाल मे वही बना है। कहने का अभिप्राय यह कि शके ८१६ मे ब्रह्मसिद्धान्त दक्षिण मे निज रूप मे प्रचलित था। बीजसंस्कार उसमे बाद मे दिया गया। उसकी कल्पना बाद मे अन्य किसी ने की होगी।

बीज

ब्रह्मसिद्धान्त की वरुणकृट टीका शके ९६२ के आसपास की है। उसमे बीज के विषय मे कुछ नही लिखा है। राजमृगाङ्ककरण मे जो शके ९६४ में बना है, यह सस्कार है। मेरे मतानुसार इसकी कल्पना उसी समय हुई है। उसमे सूर्य मे भी बीज दिया गया है। इससे ब्रह्मसिद्धान्तीय वर्षमान ३६५।१५।३०।२२।३० सस्कृत होने से लगभग ३६५।१५।३१।१७ अर्थात् प्रथम आर्यसिद्धान्त के वर्षमान से लगभग २ विपल अधिक हो गया है। इसके बाद ब्रह्मपक्षीय जितने ग्रन्थ मिलते है, सब बीजसंस्कृत ब्रह्मसिद्धान्त तुल्य है। करणो मे ऐसा प्रथम ग्रन्थ शके ९६४ का राममृगाङ्क, दूसरा शके ९८० का करणकमलमार्तण्ड और तीसरा भास्कराचार्य का शके ११०५ का कारण-कुतूहल है। ग्रहसाधनविषयक महादेवीसारणी नाम का एक ग्रन्थ शके १२३८ का है। शके १५०० के दो ग्रन्थ है। एक दिनकर नामक ज्योतिषी की खेटकसिद्धि और दूसरा चन्द्रार्की। ये सब बीजसंस्कृत ब्रह्मसिद्धान्त तुल्य है। इनमें से करणकुतूहल अभी भी कही-कही प्रचलित है। ग्रहलाघवकार ने जिन ग्रहो को ब्रह्मपक्षीय कहा है वे करणकुतूहल से लिये है। ब्रह्मसिद्धान्त निज रूप मे अधिक से अधिक शके १००० तक प्रचलित रहा होगा और भास्कराचार्य के बाद उसका प्रचार बिल्कुल नही रह गया होगा। इतना ही, मालूम होता है ब्रह्मसिद्धान्तीय सभी आवश्यकताओ की सिद्धान्तशिरोमणि द्वारा उत्कृष्ट रीति से पूर्ति हो जाने के कारण धीरे-धीरे ब्रह्मसिद्धान्त ग्रन्थ भी लुप्त होने लगा होगा। भास्कराचार्य के बाद के ग्रन्थो मे ब्रह्मसिद्धान्त के उद्धरण क्वचित् ही मिलते है। सम्प्रति महाराष्ट्र मे ब्रह्मसिद्धान्त ग्रन्थ प्राय कम मिलता है। अन्य प्रान्तो में भी यही स्थिति होगी।

ज्योतिषशास्त्र की स्थिति

हमारे देश मे प्रचलित ज्योतिषशास्त्र के वर्तमान स्वरूप और पद्धति के अङ्गो की पूर्णतया स्थापना हम समझते है, प्राय. ब्रह्मगुप्त के समय हुई है। बाद में समय-समय पर वेध द्वारा ग्रहस्थिति मे आवश्यकतानुसार फेरफार हुआ, पर पद्धति मे अयनगति को छोड़ अन्य कोई नया अन्वेषण या सुधार प्रायः नही हुआ। पहिले बता चुके है कि ग्रहभगण, मन्दोच्च और पात के विषय मे ब्रह्मगुप्त स्वतन्त्र शोधक थे, उनके ग्रहस्पष्टीकरण सम्बन्धी उपकरण भी स्वतन्त्र दीखते है। त्रिप्रश्नाधिकार मे भी पूर्व ग्रन्थकारों

की अपेक्षा इनका अधिक कौशल दिखाई देता है। इन्होने वेदादि विषयक जिन यन्त्रों का वर्णन किया है, उनमे तुरीय यन्त्र की कल्पना इन्होने स्वय की है—यह मेरा मत है। इनसे पहिले के ग्रन्थो मे बीजगणित कही नही मिलता। अत. उसके आविष्कारक भी कदाचित् ये ही होगे। सिद्धान्तसुन्दरकर्ता ज्ञानराज के पुत्र सूर्यदास की भास्करीय बीजगणित की एक टीका शके १४६० की है। उन्होने आर्यभट को सबसे प्राचीन बीजगणितकार माना है। प्रथम आर्यभट के ग्रन्थ मे बीजगणित नही है और द्वितीय आर्यभट के ग्रन्थ मे है, पर आगे सिद्ध करेगे कि वे ब्रह्मगुप्त से अर्वाचीन है। अतः प्रस्तुत उपलब्ध प्रमाणो द्वारा प्रथम बीजगणितकार ब्रह्मगुप्त ही सिद्ध होते है। यद्यपि उन्होने बीजगणिताध्याय मे अहकारपूर्ण शब्दो मे कही भी यह नही लिखा है कि इसका आविष्कारक मै हूँ, इससे अनुमान होता है कि उनके पहिले भी यह विषय रहा होगा परन्तु इसके प्राचीन ग्रन्थ नही मिलते। साराश यह कि ब्रह्मगुप्त बहुत बडे कल्पक और शोधक थे। भास्कर ऐसे आचार्य ने उन्हे 'कृती जयति विष्णुजो गणकचक्रचूडामणि.' कहा है। इसी प्रकार और भी एक स्थान मे लिखा है—"यदा पुनर्महता कालेन महदन्तर भविष्यति तदा महामतिमन्तो ब्रह्मगुप्तसमानधर्मिण एवोत्पत्स्यन्ते तदुपलब्ध्यनुसारिणी गतिमुररीकृत्य शास्त्राणि करिष्यन्ति।" यहा भास्कराचार्य ने इन्हे 'स्वकीय अनुसन्धान द्वारा नवीन गतिस्थितिकल्पक महामतिमान् शास्त्रकार' की उपाधि दी है और यह योग्य है।

लल्ल (लगभग शक ५६०)

ग्रन्थ, स्थान और काल

इनका श्रीवृद्धिदतन्त्र नाम का एक ग्रहगणितग्रन्थ है। काशी मे सुधाकर द्विवेदी ने इसे सन् १८८६ मे शुद्ध करके छपाया है। रत्नकोष नाम का इनका एक मुहूर्त-ग्रन्थ है। इन्होने अपना काल और स्थान नही लिखा है। भास्कराचार्य ने गोलाध्याय वृत्तपृष्ठफलानयन सम्बन्धी इनका एक श्लोक देकर उसका खण्डन किया है, इससे ज्ञात होता है कि इनका पाटीगणित का भी ग्रन्थ रहा होगा। सुधाकर ने लिखा है कि इनका बीजगणित का भी ग्रन्थ रहा होगा। बेरुनी के ग्रन्थ मे शके ९५० के पहिले के सभी प्रसिद्ध ज्योतिषियो का कुछ न कुछ वर्णन है, पर लल्ल का नाम तक नही है। इससे ज्ञात होता है कि सिन्ध, पजाब, कश्मीर, किबहुना, उत्तर भारत के अधिकाश भाग मे कम से कम शके ९५० तक लल्ल के ग्रन्थ प्रचलित नही हुए थे। लल्ल बीजसस्कृत प्रथमार्यसिद्धान्त का दक्षिण मे प्रचार है। इन दोनो हेतुओ से ज्ञात होता है कि लल्ल दाक्षिणात्य रहे होगे। श्रीवृद्धिदतन्त्र के मध्यमाधिकार मे लिखा है—

विज्ञाय शास्त्रमलमार्यभटप्रणीत तन्त्राणि यद्यपि कृतानि तदीयशिष्यै.।
कर्मक्रमो न खलु सम्यगुदीरितस्तै कर्म ब्रवीम्यहमतः क्रमशस्तु सूक्तम् ।।२।।

उत्तराधिकार मे आर्यसिद्धान्त द्वारा लाये हुए ग्रहो मे निम्नलिखित बीजसस्कार देने के लिए कहा है।

शाके नखाब्धि ४२० रहिते शशिनोऽक्षदस्रे २५ स्तत्तुंङ्गत. कृतशिवै ११४ स्तमस: षडङ्कै. ९६। शैलाब्धिभि. ४७ सुरगुरोर्गुणिते सितोच्चात् शोध्य त्रिपञ्चकु १५३ हतेऽभ्रशराक्षि २५ भक्ते ।।१८।। ..भम्बुधि ४८ हते क्षितिनन्दनस्य सूर्यात्मजस्य गुणितेऽम्बरलोचनै २० श्च। व्योमाक्षिवेद ४२० निहते विदधीत लब्ध शीताशुसूनु-चलतुङ्गकलासु वृद्धिम ।।१९।। इति ..ग्रहकर्म दृक्प्रभावत् ।।२०।। आसीदशेष बुधवन्दितपादपद्म.... । साम्बस्ततोजनि जनेक्षणकैरवेन्दुर्भट्टस्त्रिवि-क्रम इति प्रथित. पृथिव्याम् ।।२१।। लल्लेन तस्य तनयेन शशाङ्कमोलै. शैलाधिराज-तनयादयितस्य शम्भो.। सम्पूज्य पादयुगमार्यभटाभिधान-सिद्धान्ततुल्यफलमेतदकारि तन्त्रम् ।।२२।।

श्रीवृद्धिदतन्त्र के भगणादि सब मान प्रथम आर्यभट के ग्रन्थ से मिलते है, पर लल्ल ने उसमे उपर्युक्त १८-१९ श्लोकोक्त बीजसस्कार दिया है, अत. स्पष्ट है कि इनका समय आर्यभट के बाद है। इनका काल निश्चित करने के कुछ साधन मिले है।

उपर्युक्त बीजसस्कार का श्लोक आर्यभटीय के टीकाकार परमादीश्वर ने अपनी टीका मे उद्धृत किया है,। वहा उन्होने 'तच्छिष्यो लल्लाचार्य.' लिखा है अर्थात् लल्ल को आर्यभट का शिष्य कहा है। इस आधार पर और मुख्यत लल्लोक्त बीजसस्कार की रीति मे शक मे ४२० ऋण करने का विधान होने के कारण डा० केर्न ने लिखा है कि लल्ल का समय शके ४२० ही होगा। कैलासवासी जनार्दन बालाजी मोडक ने भी ऐसा ही लिखा है' (मासिकपत्र 'सृष्टिज्ञान' के सन् १८८५ अगस्त के अक का पृष्ठ १२० देखिए)। गणकतरङ्गिणीकार सुधाकार द्विवेदी का कथन है कि इनका समय शके ४२१ है। कुछ अन्य लोग भी ऐसा ही कहते होंगे। पर यह कथन ठीक नहीं है, क्योंकि लल्ल यदि प्रथम आर्यभट के शिष्य और उनके समकालीन होते तो वे छोटी-छोटी बातों मे वे अशुद्धिया न करते जो कि भास्कराचार्य ने दिखायी है। प्रथम आर्यभट के ग्रन्थ में वे दोष नही है। दूसरी बात यह कि लल्ल का समय यदि शके ४२० होता तो प्रथम आर्यभट के ग्रन्थ मे विशेष दोषों के न रहते हुए भी उन पर दूषणो की वर्षा करनेवाले ब्रह्मगुप्त लल्ल के ग्रन्थ पर, जिसमे वस्तुत: दोष है, आक्षेपों की भरमार कर देते पर

ब्रह्मसिद्धान्त मे न तो लल्ल का नाम है न उनके किसी मत की चर्चा। तीसरे, किसी भी सिद्धान्त मे बीजसस्कार उसके रचनाकाल मे ही नही उत्पन्न होता बल्कि जब ग्रन्थागत ग्रहो मे अधिक अन्तर पडने लगता है, उस समय उसमे अन्य कोई बीज देता है। आर्यभट ने अपना सिद्धान्त शके ४२३ मे बनाया, अत॰ उनके शिष्य उसी समय से उसमे फेरफार करने लगे होगे, यह सर्वथा असम्भव है। यदि ऐसा होता तो स्वय आर्यभट ही उस सस्कार को भी सम्मिलित करके तदनुसार भगणो की कल्पना करते। लल्लोक्त संस्कार लाने मे शक मे से ४२० घटाना पडता है। केवल इसी के आधार पर यह नही कहा जा सकता कि यह सस्कार उसी समय दिया गया है। ब्रह्मसिद्धान्त मे दिया हुआ बीजसस्कार कलियुगारम्भ से ही है। यही स्थिति वर्तमान सूर्यसिद्धान्त मे भी है, पर इतने से ही यह कह देना कि वह सस्कार वस्तुत. कलियुगारम्भ मे ही दिया गया, हास्यास्पद होगा। इसी प्रकार लल्लोक्त सस्कार का आरम्भकाल शके ४२० बताना भी उपेक्षणीय है। एक और ध्यान देने योग्य बात यह है कि मिथ्याज्ञानाध्याय मे लिखा है—'यदि भ्रमति क्षमा तदा स्वकुलाय कथमाप्नुयु. खगा:' ।।४२।। पृथ्वी का भ्रमण मानने मे लल्ल ने यहा दोष दिखाया है, पर प्रथम आर्यभट का कथन है कि पृथ्वी घूमती है। आर्यभट के साक्षात् शिष्य का मत उनके विपरीत होना, कम से कम उनमे दोष दिखलाना प्राय असम्भव है। भास्कराचार्य के ग्रन्थ मे लल्ल का नाम अनेको स्थानो में आया है पर उन्होंने इन्हे आर्यभट का शिष्य अथवा केवल 'शिष्य' कही नही कहा है। सूर्यसिद्धान्त के टीकाकार रङ्गनाथ ने एक स्थान पर 'शिष्यधीवृद्धिदतन्त्र' कहा है, पर उसका अर्थ 'शिष्यो की धी की वृद्धि करनेवाला तन्त्र' इतना ही है। पता नही चलता, परमादीश्वर ने इनको किस आधार पर आर्यभट का शिष्य कहा। उपर्युक्त श्लोक मे इन्होने स्वय भी अपने को आर्यभट का शिष्य नही कहा है। इतना ही नही, श्लोक की शब्दरचना से यह विपरीत अर्थ स्पष्टतया प्रकट होता है कि ये आर्यभट के शिष्य नही थे। इन सब हेतुओ से यह सिद्ध होता है कि इनका समय शके ४२० नही है। ये आर्यभट के बहुत दिनो बाद हुए होगे।

लल्ल ने रेवती योगतारे का भोग ३५९ अश लिखा है। लल्लतन्त्रानुसार स्थिति नापने के आरम्भ स्थान से अर्थात् स्पष्ट मेषसक्रान्तिकालीन सूर्यस्थान से पश्चिम ओर एक अश पर रेवती योगतारा रहने का काल लगभग शके ६०० आता है, पर ऊपर बता चुके है कि ब्रह्मगुप्त को लल्ल का ग्रन्थ नही मिला था। लल्ल के ग्रन्थ मे ब्रह्मगुप्त का तुरीययन्त्र नही है, शेष सब है। इससे ज्ञात होता है कि लल्ल को ब्रह्मगुप्त का ग्रन्थ नही मिला था। इससे अनुमान होता है कि ये दोनो थे समकालीन, परन्तु दूर-दूर रहते थे।

लल्लकृत रत्नकोष के आधार पर श्रीपति ने रत्नमाला ग्रन्थ बनाया है। श्रीपति का काल शक ९६१ है अत. ये इसके बहुत पहिले हुए होगे और इनके ग्रन्थ मे अयनचलन का नाम तक नही है, अत ब्रह्मगुप्त के समकालीन होंगे। इन सब बातो का विचार करने से इनका काल मुझे अनुमानत लगभग शके ५६० उचित प्रतीत होता है।

योग्यता

भास्कराचार्य ने लल्ल मे यद्यपि बहुत से दोष दिखाये है तथापि उपर्युक्त २०वे श्लोक से ज्ञात होता है कि लल्ल ने पूर्वोक्त बीजसस्कार दृक्प्रत्यय द्वारा स्वय निकाला है। इससे सिद्ध होता है कि ये एक स्वय वेध करनेवाले अन्वेषक थे और यह बात इनके लिए बडी भूषणास्पद है। बुधादिको के सस्कार से ज्ञात होता है कि आर्य-भट के कुछ दिनो बाद इस सस्कार का देना अत्यन्त आवश्यक हो गया होगा। पहिले बता चुके है कि प्रथम आर्यसिद्धान्तोक्त ग्रहो मे लल्ल के इस बीज का सस्कार करके करणप्रकाश (शके १०१४) और भटतुल्य (शके १३३९) करणग्रन्थ बने है।

पद्मनाभ

इस नाम के एक बीजगणितग्रन्थकार का उल्लेखक भास्कराचार्य के बीजगणित मे है। कोलब्रूक ने श्रीधर के—जिनका वर्णन आगे किया गया है—ग्रन्थ के आधार पर लिखा है कि पद्मनाभ श्रीधर से पहिले हुए होगे (देखिए Colebrook's mis. Ess. pp. 422, 450, 470)। इससे ज्ञात होता है कि श्रीधर के कालानुसार इनका काल शके ७०० से अर्वाचीन नही होगा:

श्रीधर

आगे वर्णित महावीर के ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि उनके पहिले श्रीधर नाम के एक ग्रन्थकार हुए थे जिनका व्यक्तगणितविषयक भास्कराचार्य की लीलावती सरीखा एक ग्रन्थ था। कोलब्रूक को श्रीधर का अकगणित और क्षेत्रगणितविषयक गणितसार नामक एक ग्रन्थ मिला था। इससे ज्ञात होता है कि ये और महावीर के ग्रन्थ मे वर्णित श्रीधर एक ही है और महावीर के कालानुसार इनका काल शके ७७५ से अर्वाचीन नही है। भास्कराचार्य कथित बीजगणित ग्रन्थकार श्रीधर भी ये ही होगे।

इनका 'त्रिशतिका' नाम का एक ३०० आर्याओ का पाटीगणितग्रन्थ काशी के राजकीय पुस्तकालय मे है।[1] उसके आरम्भ मे लिखा है।—

---

१. मैंने यह मुख्यतः गणकतरंगिणी के आधार पर लिखा।

नत्वा शिव स्वविरचितपाटया गणितस्य सारमुद्धृत्य।
लोकव्यवहाराय प्रवक्ष्यति श्रीधराचार्य.॥

इससे ज्ञात होता है कि त्रिशतिका से बडा इनका एक और पाटीगणित ग्रन्थ था। त्रिशतिका मे इष्टकर्म को स्तम्भोद्देश और गुणन को प्रत्युत्पन्न कहा है।[1] लीलावती से भिन्न ऐसी ही और भी बहुत सी सज्ञाए उसमे है। उसमे अकगणित और क्षेत्र गणित दोनो विषय है। न्यायकन्दली नामक एक न्यायशास्त्र का ग्रन्थ है, उसके कर्ता का नाम भी श्रीधर ही है। वह ग्रन्थ शके ९१३ का है। सुधाकर द्विवेदी का कथन है कि ज्योतिषियो को छोडकर अन्य ग्रन्थकार प्राय अपना समय नही लिखते, अत त्रिशतिका और न्यायकन्दली के कर्ता एक ही है। न्यायकन्दलीकार के पिता बलदेव और माता अब्वोका थी। दक्षिण राढा देश मे भूरिसृष्टि नाम का गाव इनका स्थान था। पाण्डुदास की प्रार्थना पर भट्ट श्रीधर ने न्यायकन्दली बनायी। त्रिशतिका मे यह वृत्तान्त नही है और केवल नामसादृश्य द्वारा निश्चित किये हुए काल की अपेक्षा महावीर के काल के आधार पर निश्चित किया हुआ पाटीगणितकार श्रीधर का काल अधिक विश्वसनीय है। महावीर द्वारा उद्धृत श्रीधर का वचन है—'ऋण धनर्णयोर्वर्गौ मूले स्वर्णे तयो. क्रमात्।' आर्यात्मक त्रिशती मे इस अनुष्टुप् छन्द के होने की सभावना तो कम है, पर यह श्रीधर के पाटीगणित के बड़े ग्रन्थ मे अथवा उनके बीजगणित मे होगा। आफ्रेचसूची मे श्रीधर का एक 'त्रिशती गणितसार' नाम का ग्रन्थ है, अत: कोलब्रूक को प्राप्त गणितसार और सुधाकर कथित त्रिशती ग्रन्थ एक ही है। श्रीधर की एक जातकपद्धति है। उसके कर्ता भी पाटीगणितकार श्रीधर ही होगे।

महावीर

इनका सारसग्रह नाम का व्यक्तगणित का एक ग्रन्थ है अर्थात् उसमे अकगणित और क्षेत्रगणित विषय है। डा० भाऊ दाजी के संग्रह की इसकी एक खण्डित प्रति मैने देखी, उसके आरम्भ के वर्णन से ज्ञात होता है कि वे जैन धर्मावलम्बी थे और जैन-राजा अमोघवर्ष के आश्रित थे। इससे ज्ञात होता है कि ये राष्ट्रकूटवशीय जैनधर्मी राजा प्रथम अमोघवर्ष के राज्य मे अर्थात् शके ७७५ के आसपास हुए होगे। सारसग्रह ग्रन्थ भास्कराचार्य की लीलावती सरीखा, पर उससे विस्तृत है। उसकी ग्रन्थसख्या कम से कम २००० होगी। उसमे उपर्युक्त श्रीधराचार्य के ग्रन्थ के मिश्रकव्यवहार के कुछ वाक्य है।

---

१. ब्रह्मगुप्त के ग्रन्थ मे प्रत्युत्पन्न संज्ञा है।

थे और सप्तर्षिगति दी थी जिस पर कश्मीर मे प्रचलित लौकिक काल अवलम्बित है। करणसार मे मध्यम मेष के ग्रह क्षेपक देकर उनके द्वारा ग्रह मध्यम भोग लाने की पद्धति लिखी थी। बेरुनी ने उसमे से मध्यमशेष की अंशात्मक तिथि (तिथिशुद्धि) लाने की रीति दी है। महायुग मे ५७७५३३३६ चन्द्रभगण मानने से इसकी उपपत्ति लगती है। यह सख्या सूर्यसिद्धान्त, उत्पलोद्धृत पुलिशसिद्धान्त और प्रथम आर्यसिद्धान्त की है। इस करण का बेरुनी के पहले ही किसी ने अरबी मे अनुवाद किया था, वह बेरुनी के पास था। आफ्रेचसूची मे इस करण का नाम नही है अर्थात् सम्प्रति यह प्राय कही उपलब्ध नही है। वटेश्वर नाम के एक ज्योतिषी थे। वे ही बेरुनी के वित्तेश्वर होगे।

मुंजालकृत लघुमानस, शक ८५४

बेरुनी ने लिखा है कि मुजाल दाक्षिणात्य थे, उन्होने 'बृहन्मानस' का सक्षेप करके 'लघुमानस' बनाया, उसमे शक ८५४ मे ६।५० अयनाश और उसकी वार्षिक गति एक विकला दी है। इससे मुजाल के मतानुसार शून्यायनाशवर्ष शकगत ४४४ आता है। बेरुनी ने ग्रन्थकार का नाम मुजाल सरीखा कुछ लिखा है। गणकतरङ्गिणीकार ने लिखा है—अनुष्टुप् छन्द के ६० श्लोको का लघुमानस मैने देखा है। वह शक ८५४ का है। उस ग्रन्थ मे तो 'मुजाल' नाम नही है, पर अन्त मे 'इति मुजालभट्टविरचित' लिखा है। कोलब्रूक ने उज्जैन के ज्योतिषियो के कथनानुसार कुछ ज्योतिषियो का समय लिखा है (Esays p. 461)। उसमे मुजाल का समय शक ८५४ है। भास्कराचार्य ने मुजालोक्त अयनगति लिखी है, अत बेरुनीकथित लघुमानस के रचयिता मुजाल ही होगे। मुनीश्वर ने मरीचि मे मुजाल के निम्नलिखित वचन दिये है—

उत्तरतो याम्यदिश याम्यान्तात्तदनु सौम्यदिग्भागम्।
परिसरता गगनसदा चलन किञ्चिद् भवेदपमे॥
विषुवदपक्रममण्डलसम्पाते प्राचि मेषादि ।
पश्चात्तुलादिरनयोरपक्रमासम्भव प्रोक्तः॥
राशित्रयान्तरेऽस्मात् कर्कादिरनुक्रमान्मृगादिश्च।
तत्र च परमा क्रान्तिर्जिनभागमिताऽथ तत्रैव॥
निर्दिष्टोऽयनसन्धिश्चलन तत्रैव सम्भवति।
तद्भगणाः कल्पे स्युर्गोरसरसगोऽकचन्द्र १९९६६९ मिताः॥

इन आर्याओ मे कल्पीय अयनभगण लिखे है जिनका विवरण करणग्रन्थ मे अनाव-

श्यक है। तरङ्गिणीकार ने लिखा है कि अनुष्टुप् छन्दात्मक लघुमानस मे ये वचन नही है। (इसके आगे लघुमानसवर्णन मैंने गणकतरंगिणी के आधार पर लिखा है।) लघुमानस के आरम्भ मे लिखा है—

प्रकाशादित्यवत् ख्यातो भारद्वाजो द्विजोत्तम॰।
लघुपूर्व स्फुटोपायं वक्ष्येऽन्यल्लघुमानसम् ।।

इससे ज्ञात होता है कि मुंजाल ने एक और मानस बनाया था, अर्थात् बृहत् और लघु दोनो मानसो के कर्ता ये ही है। पर बृहन्मानस को बेरुनी ने मनुकृत कहा है, अत. वह इनका नही होना चाहिए। इस स्थिति मे ऐसी कल्पना होती है कि लघु-मानस बनाने के बाद इन्होने एक और लघुलघुमानस बनाया होगा और उपर्युक्त आर्याएँ जो कि अनुष्टुप् छन्दात्मक लघुमानस मे नही है, लघुलघुमानस की होगी, अथवा वह भी संभव है कि बृहन्मानस इन्ही का हो और ये आर्याएँ उसी मे हो। वस्तुत॰ इस श्लोक का ठीक अर्थ नही लगता।

लघुमानस मे शकगत ८५४ चैत्र शुक्ल १ रविवार के मध्याह्न के क्षेपक है। ग्रहसाधन अहर्गण से किया गया है। मध्यम, स्पष्ट, तिथि, त्रिप्रश्न, ग्रहयुति, सूर्यग्रहण, चन्द्र-ग्रहण और शृङ्गोन्नति, ये ८ अधिकार है। उपर्युक्त श्लोकानुसार मूजाल भार-द्वाजगोत्रीय ब्राह्मण ज्ञात होते है। इनके पहिले के किसी भी उपलब्ध पौरुष ग्रन्थ मे अयनगति का स्पष्ट उल्लेख नही मिलता पर इनके ग्रन्थ मे है यह एक बडे महत्व की बात है। इन्होने स्पष्ट चन्द्रमा मे एक विशेष संस्कार दिया है जो कि अन्य ग्रन्थो मे नही है। इससे ज्ञात होता है कि ये एक विलक्षण अन्वेषक और कल्पक थे।

काशी के राजकीय पुस्तकालय मे सोदाहरण खण्डित लघुमानस है। उसमे उदाहरण शके १४६४ का है और ध्रुवक शक १४०० के है। चरादिक सस्कार काम्पिल्य नगर के है। सुधाकर का कथन है कि इस टीका के कर्ता आर्यभटीय टीकाकार परमे-श्वर होंगे, क्योकि उन्होने आर्यभटीय की टीका मे लिखा है कि मैने लघुबृहन्मानस की टीका की है। पर यह सम्भव नहीं है क्योकि मुझे परमेश्वर मलाबारनिवासी मालूम होते है। उपर्युक्त उदाहरण से ज्ञात होता है कि शक १५०० पर्यन्त लघुमानस कही-कही प्रचलित था।

द्वितीय आर्यभट (लगभग शके ८७५)

ग्रन्थ

एक आर्यसिद्धान्त का वर्णन पहिले कर चुके है, उसके अतिरिक्त एक और आर्य-सिद्धान्त है। इसकी एक प्रति पूना के डेक्कनकालेज मे है। उसमें इसका नाम लघु-

आर्यसिद्धान्त लिखा है, पर ग्रन्थकार ने स्वय इसमे लघु या वृहत् विशेषण कही नही लगाया है। इसकी प्रथम आर्या है —

विविधखगागमपाटीकुट्टकबीजादिदृष्टशास्त्रेण ।
आर्यभटेन क्रियते सिद्धान्तो रुचिर आर्याभि ॥१॥

यहा ग्रन्थकार ने इसे सिद्धान्त कहा है। पूर्वोक्त आर्यभट से अर्वाचीन होने के कारण मैने सुविधा के लिए इन्हे द्वितीय आर्यभट और इनके ग्रन्थ को द्वितीय आर्यसिद्धान्त कहा है।

काल

इन्होने अपना काल नही लिखा है। पाराशर सिद्धान्त नाम के एक अन्य सिद्धान्त के मध्यममान इन्होने अपने सिद्धान्त मे लिये है और इन दोनो के विषय मे लिखा है—

एतत् सिद्धान्तद्वयमीषद्याते कलौ युगे जातम् ॥२॥

अध्याय २

यहां इनका यह दिखाने का उद्देश्य है कि ये दोनो सिद्धान्त थोड़ा ही कलियुग बीतने पर बने, परन्तु मुझे पूर्ण निश्चय है कि ये ब्रह्मगुप्त के बाद हुए है। इसका कारण यह है कि कलियुगारम्भ के थोडे ही दिनो बाद अपने सिद्धान्त का रचनाकाल बताते हुए भी ये अपनी गणना पौरुष ग्रन्थकारो मे ही करते है। ब्रह्मगुप्त के पहिले इनका वर्षमान अथवा अन्य कोई मान प्रचलित था, इसका इनके कथन को छोड अन्य कोई प्रमाण नही मिलता और ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट मे जो दूषण दिये है वे प्रथम आर्यभट मे पूर्णतया लागू होते है, इनमे बिलकुल लागू नही होते। ब्रह्मगुप्त ने इनके सिद्धान्त की किसी भी बात का उल्लेख नही किया है। यदि उस समय वह उपलब्ध होता तो वे इसमे कुछ न कुछ दोषारोपण किये बिना न रहते। पञ्चसिद्धान्तिका मे अयनगति नही है। प्रथम आर्यभट, ब्रह्मगुप्त और लल्ल के ग्रन्थों मे भी नही है, पर इनके सिद्धान्त मे है। प्रथम आर्यभट मे ब्रह्मगुप्त ने जो जो दोष दिखाये है, मालूम होता है, उन सब को इन्होने सुधारने का प्रयत्न किया है। इनके ग्रन्थ मे युगपद्धति है। कल्पारम्भ रविवार को माना गया है। प्रथम आर्यभट के ग्रन्थ मे युगारम्भ से गणित किया है और उस समय मध्यम ग्रह तो एकत्र आते है, पर स्पष्टग्रह नही आते। इस विषय मे ब्रह्मगुप्त ने इनका (अध्याय २ आर्या ४६ मे) दोष दिखलाया है, पर इनके इस सिद्धान्त द्वारा सृष्ट्यारम्भ मे स्पष्टग्रह एकत्र आते है। इन सब प्रमाणो से मुझे पूर्ण निश्चय है कि इनका समय ब्रह्मगुप्त के बाद अर्थात् शके ५८७ के बाद है। यह हुई इनके काल की

प्राचीन मर्यादा। भास्कराचार्य ने इनका उल्लेख किया है। सिद्धान्तशिरोमणि के स्पष्टाधिकार के ६५वे श्लोक मे उन्होने लिखा है—'आर्यभटादिभि सूक्ष्मत्वार्थं दृक्काणोदया: पठिता ।' राशि का तृतीयाश अर्थात् १० अश दृक्काण कहलाता है। प्रथम आर्यभट के ग्रन्थ मे लग्न ३० अश के है, दस-दस अश के नही, पर इन्होने चतुर्था-ध्याय की ३८-४० आर्याओ को दृक्काणोदय (लग्नमान) लिखे है। सम्प्रति द्वितीय आर्यभट को छोडकर अन्य किसी के भी ग्रन्थ मे दृक्काणोदय नही मिलते । इससे सिद्ध होता है कि भास्कराचार्य ने उपर्युक्त वाक्य प्रथम नही बल्कि द्वितीय आर्यभट के उद्देश्य से कहा है। अत स्पष्ट है कि ये शके १०७२ से पहिले हुए है । इन्होने अयनाशगति लाने की रीति दी है। उससे अयनगति सदा समान नही आती, बहुत न्यूनाधिक आती है (इसका अधिक विवेचन अयनचलनविचार मे करेंगे), परन्तु अयनगति प्राय. सदा समान रहती है। उसमे अन्तर पडता है, पर बहुत थोड़ा । वर्तमान सूर्यसिद्धान्तोक्त अयनगति सर्वकाल समान आती है, पर उसका निश्चित समय ज्ञात नही है। राजमृगाङ्क (शके ९६४) मे भी अयनगति सदा समान मानी है। इसके पहिले का कोई निश्चित प्रमाण इस समय उपलब्ध नही है। इससे अनुमान होता है कि द्वितीय आर्यभट अयनगति का ठीक ज्ञान होने के पहिले हुए होंगे। भटोत्पल (शके ८८८) की टीकाओ मे अनेको ग्रन्थो के उद्धरण है, पर द्वितीय आर्यसिद्धान्त का एक भी नही है, अत' यदि ये भटोत्पल के पहिले हुए होगे तो अति निकट पूर्व हुए होगे। द्वितीय आर्यसिद्धान्त द्वारा लाये हुए अयनांश और उसका स्पष्ट मेषसक्रान्तिकालीन सायन रवि, इन दोनो के समान होने का काल लगभग शके ९०० आता है। अत यदि ये इसके पहिले हुए होगे तो कुछ ही वर्ष पहिले हुए होगे। इन सब हेतुओ से मुझे इनका काल शके ८७५ के आसपास ज्ञात होता है। बेटली द्वारा निश्चित किया हुआ इनके और पाराशर के सिद्धान्त का काल अशुद्ध है, यह ऊपर बता चुके है ।

बेरुनी का कथन है कि आर्यभट दो थे। एक कुसुमपुर निवासी और दूसरे उनसे प्राचीन। उसने लिखा है कि प्राचीन आर्यभट का ग्रन्थ मुझे नही मिला, पर कुसुमपुर निवासी आर्यभट उनके अनुयायी थे। बेरुनी के ग्रन्थ में इन दोनो का उल्लेख ३० स्थानों मे है। उन सब मे वर्णित बाते प्रथम आर्यभट मे पूर्णतया लागू होती हैं। ग्रहभगण-संख्या इत्यादि जिन विषयों में दोनो का स्पष्ट भेद है, बेरुनी-लिखित बाते द्वितीय आर्यभट मे किसी प्रकार लागू नही होती और वे प्रथम आर्यभट के अनुयायी नही थे, अत: बेरुनीकथित दोनो आर्यभट वस्तुत. एक ही है। यह बात प्रोफेसर साचो के ध्यान मे भी नही आयी। द्वितीय आर्यभट वेरुनी के पहिले हुए होगे और यद्यपि यह स्पष्ट है कि इनका ग्रन्थ बेरुनी ने नही देखा था तथापि मालूम होता है, उसे यह

भ्रम दो आर्यभटों की चर्चा सुनने के कारण ही हुआ होगा। इससे भी यही अनुमान होता है कि ये बेरुनी के सौ-पचास ही वर्ष पूर्व अर्थात् शके ८७५ के आस पास हुए होंगे।

ग्रन्थवर्णन

इनके ग्रन्थ मे १८ अध्याय और लगभग ६२५ आर्याए है। आरम्भ के १३ अध्यायो मे करणग्रन्थो के भिन्न भिन्न अधिकारो के सब विषय हैं। १४वे गोल-सम्बन्धी बाते और प्रश्न है। १५वे में १२० आर्याएँ है। उसमे पाटीगणित अर्थात् अंकगणित और क्षेत्रफल-घनफल विषय है। उसमे भास्कराचार्य की लीलावती की अधिकतर बातें है। १६वे मे भुवनकोश अर्थात् त्रैलोक्यसस्थानविवेचन है। १७वे मे ग्रहमध्यमगति की उपपत्ति इत्यादि है। १८वे मे बीजगणित और विशेषतः कुट्टगणित है। उसमे ब्रह्मगुप्त की अपेक्षा कुछ विशिष्ट बाते है।

अङ्कसंज्ञाएं

इन्होने पाटीगणित मे सख्याएँ प्रसिद्ध संज्ञाओ द्वारा और शेष सर्वत्र अक्षरो द्वारा दिखायी है। इनकी पद्धति प्रथम आर्यभट से भिन्न है। वह यह है—

वर्ण		वर्णबोधित संख्याएँ	वर्ण		वर्णबोधित संख्याए
क ट प य	=	१	च त ष	=	६
ख ठ फ र	=	२	छ थ स	=	७
ग ड ब ल	=	३	ज द ह	=	८
घ ढ भ व	=	४	झ ध	=	९
ङ ण म श	=	५	ञ न	=	०

वर्णों द्वारा सख्याएं दिखाने मे प्रथम आर्यभट ने 'अकानां वामतो गतिः' नियम नही छोडा, पर इन्होंने संख्याएँ बायी ओर से दाहिनी ओर लिखी है। इनकी पद्धति मे घडफ का अर्थ ४३२ होता है।[1] अक्षरों द्वारा सख्याएँ लिखने मे कितनी गड़बड़

---

१. स ७ भावः ४४ कामता ६५१ जह्निकरा २१९८ नारीरधीरयः।
जादूजारमराः काण्डाः प्रश्नाऽनुपदाक्षराः॥

इस श्लोक में उपर्युक्त अंक संज्ञाओं द्वारा तैत्तिरीय संहिता के काण्ड, प्रश्न (अध्याय), अनुवाक, पचासे, पद और अक्षर बताये है। इसमें अंक दाहिनी ओर से बायीं ओर लिखने का नियम है (और वहां उसी प्रकार लिखा है)। कुछ अंकों के विषय में सन्देह है, वे यहां नहीं लिखे है। एक तैलंग ब्राह्मण ने मुझसे कहा कि यह श्लोक तैत्तिरीय प्रातिशाख्य का है। मैंने वह प्रातिशाख्य नहीं देखा है।

होती है, यह प्रथम आर्यभट के वर्णन मे दिखा चुके है। बस, यही बात इनमे भी पूर्ण लागू होती है। इनके सिद्धान्त के और उसमे दिये हुए पाराशरसिद्धान्त के कल्पीय भगणादिमान नीचे लिखे है।

विषय	द्वितीय आर्यसिद्धान्त	पाराशरसिद्धान्त
सृष्टयुत्पत्तिवर्ष	३०२४०००	
नक्षत्रभ्रम	१५८२२३७५४२०००	१५८२२३७५७००००
रविभगण	४३२០០០០០០	४३२០០០០០០
सावन दिवस	१५७७९१७५४२०००	१५७७९१७५७००००
चन्द्रभगण	५७७५३३३४०००	५७७५३३३४५१५
चन्द्रोच्चभगण	४८८१०८६७४	४८८१०४६३४
राहुभगण	२३२३१३३५४	२३२३१३२३५
मगल	२२९६८३१०००	२२९६८३३०३७
बुध	१७९३७०५४६७१	१७९३७०५५४७४
गुरु	३६४२२१६८२	३६४२१९९५५
शुक्र	७०२२३७१४३२	७०२२३७२१४८
शनि	१४६५६९०००	१४६५७१८१३
सौरमास	५१८४००००००	५१८४००००००
अधिमास	१५९३३३४०००	१५९३३३४५१५
चान्द्रमास	५३४३३३३४०००	५३४३३३३४५१५
तिथि	१६०३००००२००००	१६०३००००३५४५०
क्षयाह	२५०८२४७८०००	२५०८२४६५४५
वर्षमान	३६५।१५।३१।१७।६	३६५।१५।३१।१८।३०

ग्रह	द्वितीय आर्यसिद्धान्त	पाराशर-सिद्धान्त	द्वितीय आर्यसिद्धान्त	पाराशर सिद्धान्त
	कल्पीय उच्चभगण		कल्पीय पातभगण	
रवि	४६१	४८०	×	×
मगल	२९९	३२७	२९८	२४५
बुध	३३९	३५६	५२४	६४८
गुरु	८३०	९८२	९६	१९०
शुक्र	६५४	५२६	९४७	८९३
शनि	७६	५४	६२०	६३०

आर्यसिद्धान्त में कुछ वर्ष सृष्टयुत्पत्ति के माने गये है, पर पाराशरसिद्धान्त में नही। दोनो मानों से कलियुगारम्भ मे सब ग्रह एकत्र नही आते, पर सृष्टिप्रचारारम्भ

मे आते है। दोनों के वर्षमान बीजसंस्कृत ब्रह्मतुल्य वर्षमान के पास पास है। इन्होने सप्तर्षियो मे गति मानी है और उनके कल्पभगण लिखे है, पर उनमे वस्तुत. गति बिलकुल नही है, ऐसा कह सकते है।

पाराशरसिद्धान्त

पाराशरसिद्धान्त के विषय मे इन्होने लिखा है—

पाराशर्या दिविचरयोगे नेच्छन्ति दृष्टिफलम् ॥१॥
अध्याय ११

कलिसञ्ज्ञे युगपादे पाराशर्यं मतं प्रशस्तमत ।
वक्ष्ये तदहं..... .... ॥१॥
अध्याय २।

इसके बाद इन्होंने उसके भगणादि मान लिखे है। इससे ज्ञात होता है कि पाराशरसिद्धान्त स्वतन्त्र ग्रन्थ था, पर सम्प्रति वह उपलब्ध नहीं है।

चतुर्वेद-पृथूदक स्वामी
काल

इन्होने ब्रह्मगुप्त के ब्रह्मसिद्धान्त की टीका की है। भास्कराचार्य ने इनका उल्लेख कई स्थानों पर किया है। वरुणकृत खण्डखाद्य की टीका लगभग शके ९६२ की है। उसमे इनका नाम आया है, अत इनका समय शके ९६२ से प्राचीन है। मालूम होता है, भटोत्पल इन्हे नही जानते थे, पर इनकी ब्रह्मसिद्धान्त की टीका मे बलभद्र का नाम है। अत. ये भटोत्पल के समकालीन होगे अथवा उनके कुछ ही दिनो बाद हुए होगे।

बेरुनी ने लिखा है कि पृथुस्वामी ज्योतिषग्रन्थकार है, पर उनके ग्रन्थ के नाम इत्यादि का पता नही लगता। इससे अनुमान होता है कि बेरुनी के समय पृथुस्वामी के टीकाग्रन्थ कम से कम सिन्ध प्रान्त मे तो प्रसिद्ध नही हुए थे। कुसुमपुर के आर्यभट के ग्रन्थ के नाम पर बेरुनी ने एक वाक्य उद्धृत किया है। उसका अर्थ है—पृथुस्वामी ने उज्जयिनी से कुरुक्षेत्र का देशान्तर १२० योजन माना है। दोनो आर्यभटो मे से एक के भी ग्रन्थ मे पृथुस्वामी का नाम नही है, अत. यह उद्धरण आर्यभट के ग्रन्थ की किसी टीका का होगा (बेरुनी ने कई स्थानो पर टीकोक्त विषयो को मूलग्रन्थोक्त समझ लिया है)। चूकि यह टीका बेरुनी के पहिले की है और पृथुस्वामी इस टीका से भी प्राचीन है, इसलिए इनका काल लगभग शके ८५० और ९०० के मध्य मे होगा।

स्थान

ब्रह्मसिद्धान्त की सप्तम अध्याय की ३५वी आर्या की टीका मे इन्होने लिखा है, "अथ साक्षभागा: कान्यकुब्जे. . .कान्यकुब्जे स्वनतभागा. . .।" इसी प्रकार ३८वी आर्या में लिखा है—"यथेह कान्यकुब्जे।" इससे ज्ञात होता है कि ये कान्यकुब्ज देश के अथवा खास कन्नौज शहर के ही निवासी थे।

ग्रन्थ

ब्रह्मसिद्धान्त के आरम्भ के १० अध्यायो पर इनकी टीका है। उसकी एक प्रति पूना के कालेजसग्रह मे है। उसमे अनेको स्थानो पर लिखा है—"उक्त पूर्वं गोलाध्याये-ऽस्माभि·।" इससे ज्ञात होता है कि इन्होने ब्रह्मसिद्धान्त के गोलाध्याय नामक २१ वे अध्याय की टीका करने के बाद आरम्भ के १० अध्यायो की टीका की थी। दसवे अध्याय की टीका के अन्त मे एक वाक्य लिखा है, उससे ज्ञात होता है कि गोलाध्याय की टीका लगभग डेढ सहस्र थी। दस अध्यायो की टीका लगभग ५३०० है। टीका अच्छी है, मूलग्रन्थ ही अच्छा है, अत· टीका के शुद्ध होने मे आश्चर्य नही है तथापि भास्कराचार्य ने दो एक स्थानों पर उसमे यह दोष दिखाया है कि चतुर्वेद ने ब्रह्मगुप्त की सुन्दर कृति भी बिगाड दी है, अर्थात् उसका विपरीत अर्थ किया है और यह दोषारोपण सत्य है। चतुर्वेद स्पष्टवक्ता ज्ञात होते है। एक स्थान (अध्याय ७ आर्या २८-२९) पर इन्होंने लिखा है—"पिष्टपेषणमेतत्।" दसवे अध्याय के अन्त मे "पृथुस्वामी चतुर्वेदश्चक्रे. . . मधुनन्दन." और कुछ अध्यायो के अन्त मे "मधुसूदनसुत" लिखा है। इससे इनके पिता का नाम मधुसूदन ज्ञात होता है।

वरुण की टीका से अनुमान होता है कि इन्होने खण्डखाद्य की भी टीका की थी और उसका कुछ भाग पद्यात्मक था। इन्होने अपने को पृथुस्वामी कहा है, अत: टीका करने के समय ये कदाचित् चतुर्थ आश्रम मे रहे होगे। इनकी ब्रह्मसिद्धान्त की टीका मे बलभद्र को छोड अन्य किसी भी पौरुष ग्रन्थ के उद्धरण नही है। अपौरुष भी बहुत थोड़े है। भगवान् मनु:, व्यासमुनि, पुराणकार., इतने ही नाम आये है।

भटोत्पल

काल

ये एक बहुत बडे टीकाकार हो गये हैं। बृहज्जातक की टीका के रचनाकाल के विषय मे इन्होंने लिखा है—

चैत्रमासस्य पञ्चम्यां सितायां गुरुवासरे।
वस्वष्टाष्ट ८८८ मिते शाके कृतेयं विवृतिर्मया।।

बृहत्संहिता के टीकाकाल के विषय मे लिखा है —

फाल्गुनस्य द्वितीयायामसिताया गुरोर्दिने ।
वस्वष्टाष्टमिते शाके कृतेयं विवृतिर्मया ।।

द्वितीय श्लोक के ८८८ को गतवर्ष मानने से वर्तमान शक ८८९ हो जाता है। वर्तमान ८८९ के अमान्त या पूर्णिमान्त किसी भी फाल्गुन की कृष्ण द्वितीया को गुरुवार नही आता, फाल्गुन शुक्ल द्वितीया को आता है, अतः ८८८ गत शक-सख्या नही है। इसे वर्तमान शक मानने से पूर्णिमान्त फाल्गुन कृष्ण द्वितीया को गुरुवार आता है, फाल्गुन शुक्ल द्वितीया या अमान्त फाल्गुन कृष्ण द्वितीया को नही आता। अत. सिद्ध हुआ कि इस श्लोक का फाल्गुन पूर्णिमान्त मास है अर्थात् यह अमान्त माघ है और ८८८ वर्तमान शक है अर्थात् यहाँ गत शक ८८७ है। प्रथम श्लोक मे चैत्र शुक्ल ५ को गुरुवार बतलाया है, परन्तु उसकी सगति किसी प्रकार नही लगती। ८८८ को वर्तमान शक मानने से चैत्र शुक्ल ५ को शुक्रवार और उसे गतवर्ष मानने से बुधवार आता है। अतः इस श्लोक मे कुछ अशुद्धि है और उसे समझे बिना शके ८८८ को निश्चयपूर्वक वर्तमान वर्ष नही कहा जा सकता, फिर भी यह निश्चित है कि यहाँ ८८८ और ८८९ इन्ही दोनो मे से एक शक अपेक्षित है अर्थात् श्लोकोक्त ८८ को वर्तमान वर्ष मानिए अथवा गतवर्ष।

टीकाएँ

इन्होंने वराहमिहिर के ग्रन्थो मे से यात्रा, बृहज्जातक, लघुजातक और बृहत्संहिता की टीकाएँ की है। बृहत्संहिता के ४४वे अध्याय की टीका से ज्ञात होता है कि यात्रा ग्रन्थ की टीका इसके पहिले की है। ब्रह्मगुप्त के खण्डखाद्य की टीका के समय का तो पता नही चलता, पर बृहत्संहिता टीका (अध्याय ५) के "खण्डखाद्यकरणे अस्मदीयवचनम्" उल्लेख से ज्ञात होता है कि उसकी टीका इन्होने इसके पहिले की थी। वराह के पुत्र पृथुयश के षट्पञ्चाशिका नामक जातकग्रन्थ पर इनकी टीका है। उसकी एक प्रति पूना कालेज संग्रह (न० ३५५, सन् १८८२-८३) मे है। यात्रा की टीका इस समय उपलब्ध नही है। बृहज्जातक, लघुजातक, और बृहत्संहिता की टीकाएँ इस प्रान्त मे है। इनमे से पहली दो छप चुकी है। डेक्कन कालेज सग्रह की खण्डखाद्य की इनकी भोजपत्र पर लिखी हुई टीका कश्मीर मे मिली है। अन्य प्रान्तो मे इस टीका के उपलब्ध होने की सम्भावना नही है।

स्थान

शके १५६४ की खण्डखाद्य की एक अन्य टीका और शके १५६७ का पञ्चाङ्ग-कौतुक, कश्मीर मे विरचित इन दो ग्रन्थो से ज्ञात होता है कि भटोत्पल की यह टीका

कश्मीर मे बडी प्रसिद्ध थी। इससे अनुमान होता है कि ये कश्मीरनिवासी थे और खण्डखाद्यटीकाकार वरुण ने तो इन्हे स्पष्ट ही कश्मीरवासी कहा है।

स्वतन्त्र ग्रन्थ

बृहत्संहिता टीका के प्रथमाध्याय मे इन्होने एक स्थान पर "अस्मदीयवचन" कहकर एक आर्या लिखी है। इससे अनुमान होता है कि गणितस्कन्ध पर इनका स्वतन्त्र ग्रन्थ रहा होगा। यह वचन इनकी खण्डखाद्य की टीका का भी हो सकता है। ७२ आर्याओ का 'प्रश्नज्ञान' नामक इनका एक प्रश्नग्रन्थ है। बेरुनी ने लिखा है कि इनके 'राहुन्ना-करण' और 'करणपात' नाम के दो करणग्रन्थ है और इन्होने 'बृहन्मानस' की टीका की है। एक ही ग्रन्थकार के दो करणो का होना असम्भव है और इनके नाम भी विचित्र है। अत· बेरुनी को इनके विषय मे कुछ भ्रम हुआ होगा। उसने लिखा है कि उत्पल का 'श्रूधव' नाम का एक और ग्रन्थ था। इस नाम में कुछ अशुद्धि है। उसने इस ग्रन्थ के कालादि मान लिखे है। उसका कथन है कि श्रूधव नाम के और भी ग्रन्थ है। श्रूधव के विषयो का थोडा-सा परिचय बेरुनी ने दिया है। उससे ज्ञात होता है कि वे शकुन या प्रश्न के ग्रन्थ होगे।

अन्वेषण

बृहत्संहिता की टीका से ज्ञात होता है कि उत्पल प्राचीन ग्रन्थो के अति शोधक थे और उनका वाचन बहुत अधिक था। उन्होने टीका मे स्थान-स्थान पर यह दिखाया है कि वराहलिखित अधिकाश विषय प्राचीन ग्रन्थो से लिये गये है। कही-कही इन्होने उन ग्रन्थो के नाम भी लिखे है। ऐसे प्रसङ्गो मे प्राय: सर्वत्र तत्तद् विषयो के प्राचीन सहिताकारो के आधारभूत वचन उद्धृत किये है। कही-कही एक विषय पर आठ दस प्राचीन संहिताकारो के वचन दिये है। इससे यह स्पष्ट है कि वे सब संहिताएँ उस समय उपलब्ध थी। इसी प्रकार इन्होने सहिता, जातक और उनके अन्तर्भेद विषयक अनेक पौरुष ग्रन्थकारो के भी नाम और उनके वचन दिये है। सहिता शाखा के विविध विषयों का ज्ञान हमारे देश मे प्राचीन काल मे कितना था और वह क्रमश. कैसे बढा, इसका इतिहास जानने का बृहत्सहिता की उत्पल टीका एक बहुत बड़ा साधन है। इसी प्रकार के अन्य भी अनेक महत्वशाली विषयो से परिपूर्ण होने के कारण वह छपाने योग्य है। टीका बड़ी विस्तृत है। उसकी ग्रन्थसख्या[1] लगभग १४००० होगी। उपर्युक्त

---

१. ३२ अक्षरों का एक अनुष्टुप् श्लोक होता है। किसी भी ग्रन्थ के सब अक्षरो की संख्या का ३२वां भाग उसकी ग्रन्थसंख्या कही जाती है।

दोनों श्लोको से ज्ञात होता है कि वह लगभग ११ मास मे लिखी गयी है। इतनी बड़ी टीका इन्होने केवल ११ मास मे लिखी, यह बडे आश्चर्य का विषय है।

वराहमिहिर के पुत्र पृथुयश के षट्पञ्चाशिका नामक जातक-ग्रन्थ पर उत्पल की टीका है और उसकी एक प्रति पूना कालेज-सग्रह मे उपलब्ध है (नम्बर ३५५, सन् १८८२-८३)।

विजयनन्दिकृत करणतिलक, शके ८८८

बेरुनी ने लिखा है कि काशीनिवासी टीकाकार विजयनन्दी ने करणतिलक बनाया। बेरुनी ने उसकी अहर्गण लाने की रीति, अहर्गण द्वारा मध्यमग्रह लाने की रीति, ग्रहणोपयोगी रविचन्द्रबिम्बसाधन, महापातगणित, इत्यादि विषय लिखे है उनसे ज्ञात होता है कि वह ग्रन्थ ग्रहलाघव सरीखा था। उसमे क्षेपक शके ८८८ चैत्र शुक्ल १ के थे। डॉ० स्काम ने टिप्पणी मे लिखा है कि इसमे अहर्गणसाधन पुलिशसिद्धान्तानुसार है। विजयनन्दी ने लिखा है कि धनिष्ठा, उत्तराभाद्रपदा इत्यादि तारे सूर्यसान्निध्य के कारण अस्त नही होते (भाग २ पृष्ठ ९०)। आफ्रेचसूची मे इस करण का नाम नही है, अत यह सम्प्रति प्राय. कही उपलब्ध नही होगा। वराहमिहिर लिखित विजयनन्दी इनसे बहुत प्राचीन है।

भानुभट्ट भानर्जु

बेरुनी ने लिखा है कि इनका रसायनतन्त्र नाम का तन्त्रग्रन्थ और 'करण पर तिलक' नामक करणग्रन्थ है। प्रो० साचो ने लिखा है कि ग्रन्थकार के नाम का उच्चारण भानुरज या भानुयश भी हो सकता है। खण्डखाद्य की वरुणकृत टीका (शक ९६२) मे भानुभट्ट के ग्रन्थ के और तन्त्र रसायन के कुछ अनुष्टुप् श्लोक उद्धृत किये गये है। वहाँ यह स्पष्ट नही लिखा है कि तन्त्ररसायन ग्रन्थ भानुभट्ट का ही है, पर पूर्वापरसन्दर्भानुसार ऐसा ही ज्ञात होता है। मेरी समझ से बेरुनी के भानुरज (भानुरज्जु?) और वरुणलिखित भानुभट्ट एक ही है। इनका समय शक ९०० के आसपास होगा। आफ्रेचसूची मे इनका अथवा इनके ग्रन्थ का नाम नही है। इससे ज्ञात होता है कि सम्प्रति यह कही उपलब्ध नही है। तन्त्र शब्द से ज्ञात होता है कि तन्त्ररसायन मे ग्रहसाधन युगारम्भ से किया गया था।

श्रीपति

ग्रन्थ

इनके 'सिद्धान्तशेखर' और 'धीकोटिदकरण' नाम के दो ज्योतिषगणितग्रन्थ,

'रत्नमाला' नामक मुहूर्तग्रन्थ और 'जातकपद्धति' नामक जातकग्रन्थ है। सिद्धान्त-शेखर मैंने नही देखा है। डेक्कन कालेज सरकारी पुस्तक-संग्रह, पूना के आनन्दाश्रम का पुस्तक संग्रह इत्यादि अनेक पुस्तकालयो के सूचीपत्रो मे भी इसका नाम नही है, परन्तु भास्कराचार्य ने इसका उल्लेख किया है। ज्योतिषदर्पण (शक १४७९) नामक मुहूर्तग्रन्थ और सिद्धान्तशिरोमणि की मरीचि नाम्नी टीका मे भी इसके वचन है। मुनीश्वर ने लीलावती की टीका मे इनके ग्रन्थ के कुछ वचन उद्धृत किये है। उनसे ज्ञात होता है कि इन्होने पाटीगणित और बीजगणित के भी ग्रन्थ बनाये थे। उन उद्धरणों मे एक वाक्य है—

दो. कोटिभागरहिताभिहता. खनागचन्द्रा १८० स्तदीयचरणोनशरार्कदिग्भि· १०१२५।
ते व्यासखण्डगुणिता विहृताः फलन्तु ज्याभिर्विनापि भवतो भुजकोटिजीवे।।

इसमे ज्याखण्डो के बिना, केवल चाप द्वारा ज्यासाधन बताया है। भास्कर ने ज्याचाप के बिना द्युतिसाधन किया है। गणेश दैवज्ञ ने ग्रहलाघव मे बिना ज्याचाप के सम्पूर्ण गणित किया है। सुधाकर द्विवेदी का कथन है कि उनके मस्तिष्क मे यह सूझ श्रीपति की रीति द्वारा ही आयी होगी। सुधाकर के कथनानुसार इनके 'रत्नावली' और 'रत्नसार' नामक दो और मुहूर्तग्रन्थ है। रत्नसार का नाम आफ्रेचसूची मे है। यह ग्रन्थ रत्नमाला का सक्षेप होगा। इन दो मुहूर्तग्रन्थो के रहते हुए तृतीय ग्रन्थ रत्नावली होना असम्भव है। रत्नमाला को ही कुछ लोग रत्नावली कहते रहे होगे। धीकोटिद करण की प्रसिद्धि सम्प्रति बिलकुल नही है, परन्तु पूना के आनन्दाश्रम मे इसके चन्द्र और सूर्य ग्रहण प्रकरण है। उनमे केवल १९ श्लोक है। आजकल के मुद्रित किसी भी ग्रन्थ में श्रीपति का काल जानने की मुझे कोई सामग्री नही मिली, पर इस खण्डित करण में वह है।

काल

इसमे गणितारम्भ वर्ष शक ९६१ है, अतः इनका काल इसी के आसपास है। उपर्युक्त दो प्रकरणों पर एक छोटी-सी टीका है। उसमे ग्रहण के दो उदाहरण है। एक शक १५३२ का है और दूसरा १५९३ का, अतः यह करण शक १५९३ पर्यन्त कुछ प्रान्तों मे प्रचलित रहा होगा। रत्नमाला और जातकपद्धति ग्रन्थ काशी में छप चुके है। दोनो पर महादेवी नाम की टीका है।

वंश

इन्होने अपना स्थान और वंशवृत्त इत्यादि नही लिखा है, पर रत्नमाला की टीका केआरम्भ में महादेव ने लिखा है—'कश्यपवंशपुण्डरीकखण्डमार्तण्डः केशवस्य

पौत्रः नागदेवस्य सूनु. श्रीपतिः सहितार्थमभिधातुमिच्छुराह'। इससे ज्ञात होता है कि इनका गोत्र काश्यप, इनके पितामह का नाम केशव और पिता का नाम नामदेव था। श्रीपति ने लिखा है कि रत्नमाला मैंने लल्ल के रत्नकोष के आधार पर बनायी है। धीकोटिदकरण से भी ये लल्ल के अर्थात् आर्यपक्ष के अनुयायी ज्ञात होते है।

वरुण

इन्होने ब्रह्मगुप्त के खण्डखाद्य की टीका की है। उसमे उदाहरणो मे मुख्य शक ९६२ है। अत. इनका काल इसी के आसपास होगा। टीका से ज्ञात होता है कि ये कश्मीर समीपवर्ती उरुषा देश के चारय्याट सरीखे नाम वाले ग्राम के निवासी थे। इन्होने अपने स्थान का अक्षाश ३४।२२ और उज्जयिनीयाम्योत्तर रेखा से पूर्व देशान्तर ९९ योजन (लगभग ७।। अश अथवा ४५० मील) लिखा है। खण्डखाद्य की इनकी टीका मे एक विलक्षणता यह है कि आरम्भ मे ही अहर्गणसाधन मे लिखा है—

उक्तञ्च सिद्धान्तशिरोमणौ—'अभीष्टवारार्थमहर्गणश्चेत् सैको निरेकस्तिथयोऽपि तद्वत्। तदाधिमासावमशेषके च कल्पाधिमासावमयुक्तहीने।।'[1]

यह श्लोक भास्कराचार्य के सिद्धान्तशिरोमणि मे है। इसके अनुसार वरुण का समय शके १०७२ के बाद होना चाहिए, परन्तु इनकी टीका के अनेक उदाहरणो से यह बात पूर्ण निश्चित हो जाती है कि इनका समय शके ९६२ के आसपास है। इसमे कोई सन्देह नही है कि यह श्लोक टीका मे बाद मे मिला दिया गया है अथवा ईश्वर जाने शके ९६२ के पहिले सिद्धान्तशिरोमणि नाम का कोई अन्य ग्रन्थ रहा हो और उसमे यह श्लोक अक्षरश इसी प्रकार रहा हो।

राजमृगाङ्क

काल और आधार

यह करणग्रन्थ है। इसमे आरम्भकाल शक ९६४ है। इसके क्षेपक शके ९६३ अमान्त फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशीसह चतुर्दशी रविवार के प्रात काल (मध्यम सूर्योदय) के हैं। यद्यपि इसमे यह नही लिखा है कि यह ग्रन्थ ब्रह्मसिद्धान्त के ग्रहो मे बीजसंस्कार

1. डेक्कनकालेजसंग्रह मे वरुणकृत टीका की दो पुस्तके (नं० ५२६, ५२७ सन् १८७५-७६) हैं। यह श्लोक प्रथम पुस्तक से लिया गया है।

देकर बनाया गया है, तथापि इसमे बतलाये हुए बीजसंस्कार से संस्कृत ब्रह्मसिद्धान्तीय ग्रह इसके क्षेपको से ठीक मिलते हैं। वे क्षेपक ये हैं—

	रा.	अ.	क.	वि		रा.	अ.	क.	वि.
सूर्य	१०	२८	४५	०	शुक्र	६	७	५२	३६
चन्द्र	१०	६	२	५३	शनि	६	२०	४	३१
मगल	८	२	६	४७	चन्द्रोच्च	५	१०	३०	४५
बुध	८	१	३३	१५	चन्द्रपात	२	१६	५८	५
गुरु	३	१	०	३०					

करणारम्भकालीन मन्दोच्च और पात भी ब्रह्मसिद्धान्त के ही हैं। इसमे बतलाया हुआ बीजसस्कार और उसे लाने की रीति यह है—

> नन्दाद्रीन्द्वग्नि ३१७९ सयुक्तान् भजेत् खाभ्राभ्रभानु १२००० भि ।
> शाकाब्दानविनष्ट तु भाजकाच्छेषमुत्सृजेत ।।१७।। तयोरल्य द्विशत्या
> २०० प्त बीज लिप्तादिक पृथक् । त्रिभि. ३ शरै ५ र्भुवा १ द्वयक्षै
> ५२ र्बाणै ५ स्तिथिभि १५ रब्धिभि· ४ ।।१८।।
> द्विकेन २ यमले २ नैव गुण्यमर्कादिषु क्रमात् ।
> स्व ज्ञशीघ्रे धरासूनौ सूर्यपुत्रे परेष्वृणम् ।।१९।। मध्यमाधिकार

कर्त्ता

ग्रन्थ के अन्त मे लिखा है—

> इत्युर्वीपतिवृन्दवन्दितपदद्वन्द्वेन सद्बुद्धिना,
> श्रीभोजेन कृत मृगाङ्ककरण ज्योतिर्विदा प्रीयते ।।

इससे सिद्ध होता है कि यह ग्रन्थ भोजराज कृत है। सम्प्रति उपलब्ध इससे प्राचीन अन्य किसी भी ग्रन्थ मे यह बीजसस्कार नही है। अत इसकी कल्पना भोजराज के ही समय हुई होगी। सम्भवत उन्होने अपने यहाँ ज्योतिषी रखकर कुछ वर्षों तक उनसे वेध कराया होगा और उस समय प्रत्यक्ष वेधोपलब्ध तथा ब्रह्मसिद्धान्त द्वारा लाये हुए ग्रहो मे जो अन्तर दृष्टिगोचर हुआ होगा, उसके अनुसार अन्य ग्रन्थो से सुसगत होने योग्य यह संस्कार निश्चित किया होगा। पता नही, भोजराज को स्वयं करणग्रन्थ बनाने योग्य ज्योतिषज्ञान था या नहीं। यदि नही रहा होगा तो उनके आश्रित ज्योतिषियों ने ग्रन्थ बनाकर उनके नाम से प्रसिद्ध किया होगा। ऐसा होने पर भी यह निश्चित है कि ज्योतिषियों को वेदाधिको के

अनुभव द्वारा नवीन करण ग्रन्थ बनाने का सामर्थ्य राजाश्रय के कारण ही प्राप्त हुआ होगा।

विषय

इस ग्रन्थ मे मध्यमाधिकार और स्पष्टाधिकार, ये दो ही अधिकार और सब लगभग ६६ श्लोक है। उस समय ग्रहणादि अन्य पदार्थ सिद्धान्तो द्वारा लाते रहे होगे। सम्प्रति इसका प्रचार कही नही है और यह ठीक भी है, क्योंक अधिक प्राचीन होने के कारण इसका अगर्हण बहुत बडा हो जाता है, जिससे मध्यम ग्रह लाने मे बडी अडचन होती है और दूसरी बात यह है कि इसके बाद अन्य भी बहुत से करण बन गये, तथापि मालूम होता है यह बहुत दिनो तक प्रचलित था। महादेवी-सारणी नामक शक १२३८ का एक ब्रह्मपक्षीय करणग्रन्थ है। उसमे इसका उल्लेख है और शक १४४५ के 'ताजकसार' नामक ग्रन्थ मे लिखा है—

श्रीसूर्यतुल्यात् करणोत्तमाद्वा स्पष्टा ग्रहा राजमृगाङ्कतो वा।

इससे ज्ञात होता है कि शके १४४५ पर्यन्त इससे स्पष्टग्रह लाते थे। इसमे अयनाश-साधन की विधि यह है—

शकः पञ्चाब्धिवेदो ४४५ न षष्टिभक्तोऽयनाशका.॥२५॥

मध्यमाधिकार

करणकमलमार्तण्ड

काल और कर्ता

यह करणग्रन्थ है। इसमे आरम्भ वर्ष शक ६८० है। इसे वल्लभवश के दशबल नामक राजा ने बनाया है। इसके अन्त मे लिखा है—

वलभान्वयसञ्जातो विरोचनसुत सुधी'। इद दशबल. श्रीमान् चक्रे करणमुत्तमम्॥१०॥

धन्यैरार्यभटादिभिर्निजगुणैर्दिण्डीरफेनोज्वलै
राब्रह्माण्डविसारिभि प्रतिदिन विस्तारिता कीर्तय।
स्मृत्वा तच्चरणाम्बुजानि रचितोऽस्माभि परप्रार्थितै
र्ग्रन्थोऽय तदुपार्जितैश्च सुकृतै. प्रीति भजन्ता प्रजाः॥११॥ अधिकार १०

आधार

यद्यपि इसमे नही लिखा है कि यह अमुक सिद्धान्त के अनुसार बना है, तथापि इसकी अब्दप (मध्यममेषसक्रमणकाल) और तिथिशुद्धि (मध्यम मेष मे गत मध्यम तिथि) की वार्षिक गति राजमृगाकोक्त बीजसस्कृत ब्रह्मसिद्धान्त-मान से मिलती है और इसके मन्दोच्च, नक्षत्रध्रुव, पात इत्यादि भी ब्रह्मसिद्धान्त से मिलते हैं। अत:

यह ग्रन्थ बीजसंस्कृत ब्रह्मसिद्धान्ततुल्य है, इसमे सन्देह नही है। इसमे बीजसस्कार पृथक् नही लिखा है, उससे संस्कृत ही गतियाँ दी है।

सुविधा

इससे प्राचीन प्रसिद्ध करणग्रन्थ पञ्चसिद्धान्तिका, खण्डखाद्य और राजमृगाङ्क मे मध्यमग्रहसाधन अहर्गण द्वारा किया है, अर्थात् करणगत वर्ष संख्या को लगभग ३६५$\frac{1}{4}$ से गुणने जो दिनसख्या आती है, उसके द्वारा दिनगति और मध्यमग्रह लाने की रीति दी है। परन्तु इस पद्धति मे वर्षसख्या ज्यों-ज्यो बढ़ती है त्यों-त्यो अहर्गण बढ़ता जाता है और इससे गुणन-भजन मे बडा गौरव हो जाता है। दिनगति के कोष्ठक बना लेने से अथवा ग्रहो की वार्षिक गति और करणगतवर्षगण द्वारा मध्यम ग्रह लाने मे बहुत थोडा समय लगता है, परन्तु आश्चर्य है कि पञ्चसिद्धान्तिका, खण्डखाद्य, राजमृगाक और इनके बाद के प्रसिद्ध करणग्रन्थ करणप्रकाश, करणकुतूहल और ग्रहलाघव मे, जिनके द्वारा आज भी गणित किया जाता है, अहर्गण द्वारा मध्यमग्रहसाधन की अति श्रमजनक रीति दी है। उससे एक ग्रह लान मे जितना समय लगता है, उसके दशाश अथवा उससे भी कम समय मे वर्षगण या कोष्ठको द्वारा मध्यमग्रहसाधन हो जाता है,। प्रस्तुत ग्रन्थ करणकमलमार्तण्ड मे ग्रहसाधन वर्षगण द्वारा किया है। इतना ही नही, इसमें बहुत बडी सुविधा यह है कि वर्षगण मे गति का गुणन करने के श्रम से मुक्त होने के लिए कोष्ठक बना दिये गये है। सम्प्रति ग्रहलाघव द्वारा गणित करनेवाले कुछ ज्योतिषियो के पास दिनगति के कोष्ठक मिलते है। सम्भव है, प्राचीन ज्योतिषियो ने पञ्चसिद्धान्तिकादि द्वारा गणित करने के ऐसे ही कोष्ठक बनाये होगे, परन्तु वह रीति ग्रन्थ में न होने के कारण मैंने बहुत से अल्पज्ञ ज्योतिषियो को कोष्ठको का प्रयोग छोड कर ग्रन्थोक्त अति श्रमजनक रीति द्वारा गणित करते हुए देखा है। अत. इस विषय मे करणकमलमार्तण्ड की पद्धति स्तुत्य है। इसमे मध्यमग्रहसाधन मध्यममेष से किया है। ग्रन्थारम्भ कालीन क्षेपक और वर्षगतियाँ इसमे श्लोको मे नही दी है, यह थोडा आश्चर्य है। परन्तु सम्पूर्ण ग्रन्थ मे ये सब बाते रही होगी। मैंने जो प्रति (पूना डेक्कन कालेज सग्रह न० २०, सन् १८७०-७१) देखी है, उसमे तिथिशुद्धि के अतिरिक्त अन्य कोष्ठक नही है। अत. इस ग्रन्थ का इतना ही भाग ग्रहसाधन के लिए पर्याप्त नही है। इसमे मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, त्रिप्रश्नाधिकार, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, उदयास्त शृङ्गोन्नति, महापात, ग्रहयुति और स्फुटाधिमाससवत्सरानयन, ये १० अधिकार और अनुष्टुप् छन्द के लगभग २७९ श्लोक है। इसमे शून्यायनाशवर्ष शक ४४४ और अयनाश की वार्षिक गति १ कला मानी है।

करणप्रकाश

काल और कर्ता

यह एक करणग्रन्थ है। इसमे आरम्भवर्ष शक १०१४ है। इसके आरम्भ मे ग्रन्थकार ने लिखा है—

नत्वाहमार्यभटशास्त्रसमं करोमि श्रीब्रह्मदेवगणक' करणप्रकाशम्।

इससे ज्ञात होता है कि इसे ब्रह्मदेय नामक ज्योतिषी ने आर्यभट के ग्रन्थानुसार बनाया है। इसके अन्त मे लिखा है—

आसीत् पार्थिववृन्दवन्दितपदाम्भोजद्वयो माथुरः।
श्रीश्रीश्चन्द्रबुधोगुणैकवसतिः ख्यातो द्विजेन्द्रःक्षितौ॥
नत्वा तस्य सुतोऽङ्घ्रिघपकजयुगं खण्डेन्दुचूडामणे',
वृत्तै. स्पष्टमिदञ्चकार करण श्रीब्रह्मदेव. सुधीः॥११॥

इससे इनके पिता का नाम चन्द्र और माथुर विशेषण से उनका निवासस्थान मथुरा ज्ञात होता है। चन्द्र किसी राजा के आश्रित रहे होगे अथवा राजाओ के यहाँ उनकी बड़ी प्रतिष्ठा रही होगी।

आधार

उपर्युक्त श्लोक के आर्यभट प्रथम आर्यभट है। इस श्लोक मे लिखा है कि यह ग्रन्थ आर्यभट-शास्त्र-तुल्य है, परन्तु प्रथम आर्यसिद्धान्त द्वारा लायी हुई गति-स्थिति मे लल्लोक्त बीज सस्कार देने पर इसकी गतिस्थिति मिलती है। इसमे बीजसस्कार पृथक् नही लिखा है, उससे सस्कृति ही गतिस्थिति दी है। इसके निम्नलिखित क्षेपक चैत्र शुक्ल प्रतिपदा शुक्रवार शके १०१४ के मध्यम सूर्योदय के है। लल्लोक्त बीजसंस्कृत प्रथम आर्यभटीय के ग्रहो की विकलाएँ तक इन क्षेपकों से मिलती है—

	रा.	अ.	क.	वि.		रा.	अं.	क.	वि.
सूर्य	११	१६	३२	५७	बुध	७	४	३१	१२
चन्द्र	११	२७	२०	२०	गुरु	६	२	५६	२७
मगल	३	१३	२०	६	शुक्र	१०	११	२८	५८
शनि	३	२	१४	२३	चद्रोच्च	१	५	४६	१६
					चन्द्रपात	१	३	१७	१२

विषय

इसमें मध्यमग्रहसाधन अहर्गण द्वारा किया है। इसमे मध्यमाधिकार, स्पष्टीकरणाधिकार, पञ्चतारास्पष्टीकरण, छाया, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, उदयास्त, शृङ्गोन्नति और ग्रहयुति, ये ९ अधिकार है। शून्यायनाशवर्ष ४४५ और वार्षिक अयनगति एक कला मानी है।

प्रचार

एकादशी व्रत के सम्बन्ध मे स्मार्त और भागवत दो मत है। एकादशी के पूर्व दिन दशमी और ५६ घटी अथवा इससे अधिक होने पर भागवत सम्प्रदाय वाले एकादशी को दशमीविद्ध मान कर उसके दूसरे दिन व्रत करते है। दशमी की घटिका लाने के विषय मे सोलापुर, कर्नाटक और प्राय दक्षिण के वैष्णव आर्यपक्ष का अनुसरण करते है। करणप्रकाश ग्रन्थ आर्यपक्षीय है। इससे लायी हुई प्रत्येक तिथि सूर्यसिद्धान्त और ब्रह्मसिद्धान्त की तिथि की अपेक्षा लगभग दो-तीन घटी अधिक होती है। मेरा विश्वास है कि सम्प्रति ऐसा पञ्चाङ्ग कही भी प्रचलित नही होगा, जिसमें सब तिथियाँ करणप्रकाश से बनायी जाती हो, क्योकि ग्रहलाघवीय पञ्चाङ्ग तिथिचिन्तामणि की सारणियो द्वारा बहुत शीघ्र बन जाता है, परन्तु करणप्रकाश के अनुसार गणित करने का ऐसा कोई साधन नही है। इस कारण महाराष्ट्र के वैष्णव अन्य तिथियो के विषय मे ग्रहलाघवीय पञ्चाङ्ग का व्यवहार करते है और एकादशी आर्यपक्षानुसार मानते है, परन्तु उसका भी यह स्थूल मान कि—आर्यपक्ष की तिथि ग्रहलाघवीय पञ्चाङ्ग से दो घटी अधिक होती है—निश्चित सरीखा ही है। ग्रहलाघवीय पञ्चाङ्ग मे दशमी ५४ घटी होने पर आर्यपक्षानुसार उसे ५६ घटी समझकर अग्रिम एकादशी को दशमीविद्ध मानते है। शके १८०९ के आषाढ़ कृष्णपक्ष मे ग्रहलाघवीय पञ्चाङ्गानुसार शुक्रवार को दशमी ५२ घटी १५ पल, शनिवार को एकादशी ५४।३२ और रविवार को द्वादशी ५५।३९ है।[1] यहाँ एकादशी दशमीविद्ध नही है और दो एकादशी होने का अन्य भी कोई कारण नही है, इसलिए सभी मराठी पञ्चाङ्गों में शनिवार को ही एकादशी लिखी है। परन्तु उस समय अकस्मात् मुझे रायपुर की ओर के एक वैष्णव आचार्य अपने शिष्यवर्ग के साथ मिले, उन्होंने कहा—'हमारी एकादशी कल है।' कारण पूछने पर उन्होने आर्यपक्ष, करणप्रकाश, लिप्ता इत्यादि कुछ शब्द कहे, पर वस्तुतः वे नही जानते थे कि आर्यपक्ष और करण

---

१. शके १८०९ के सायन पंचांग में छपे हुए ग्रहलाघवीय पंचांग से ये अंक लिये गये हैं।

प्रकाश क्या पदार्थ है। किञ्चित् छलपूर्वक पूछने पर बोले, धारवाड से पत्र आया है इसलिए हम दूसरी एकादशी रहते है। वहाॅ भी सम्प्रति प्रत्यक्ष करणप्रकाश द्वारा कोई गणित करता होगा, इस पर मेरा विश्वास नही है। शक १५७८ का बीजापुर का एक हस्तलिखित पञ्चाङ्ग मैंने देखा। वह ग्रहलाघवादिको द्वारा ही निर्मित ज्ञात होता था, परन्तु उसमे दशमी और एकादशी तिथिया करणप्रकाश द्वारा पृथक ठहरायी थी। सोलापुर के एक वैष्णव ज्योतिषी मुझसे कहते थे कि हम लोग एकादशी का गणित करणप्रकाश से करते है। शके १८०६ मे बीड के एक विद्वान् ज्योतिषी मिले। वे सम्पूर्ण करणप्रकाश जानते थे, परन्तु उन्होने कहा कि हम सदा सम्पूर्ण गणित करण-प्रकाश से नही करते। उपर्युक्त दशमी का गणित मैंने करणप्रकाश से किया। वह उज्जयिनी रेखाश पर मध्यमोदय से ५४ घटी ५६ पल और स्पष्टोदय से ५६ घटी आयी।[1] साराश यह कि करणप्रकाश का आज भी थोडा प्रचार है। इस प्रान्त मे इसकी प्रति प्राप्त करने मे मुझे बडा परिश्रम करना पड़ा, पर वह मिल गयी।

तीन पक्ष

यहाँ पर यह बतलाना आवश्यक है कि प्रथम आर्यसिद्धान्त मे लल्लोक्त बीजसस्कार देने से आर्यपक्ष की तिथि २-३ घटी अधिक आती है, अन्यथा अधिक नही आती। अत· आर्यपक्षानुसार एकादशी के भिन्नत्व का बाद लल्ल के पश्चात् उद्भूत हुआ होगा, उनके पहिले नही रहा होगा। 'मुहूर्तमार्तण्ड' नामक शक १४९३ का एक मुहूर्तग्रन्थ है। उसमे लिखा है—ब्राह्मपक्ष की तिथि से आर्यपक्ष की तिथि ५ घटी अधिक रहती है। इससे और ग्रहलाघव से ज्ञात होता है कि शक की १५वी शताब्दी मे आर्य, ब्राह्म और सौर, इन तीन पक्षों का भिन्नत्व और जनता मे तीनो का अभिमान प्रबल हो चुका था। करणकुतूहल और राजमृगाक ग्रन्थ ब्राह्मपक्ष के है। खण्डखाद्य को सौरपक्षीय कह सकते हैं। शक १०१४ के पहिले का आर्यपक्षीय स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध नही है। अत· शके १००० से अथवा कदाचित् लल्लकाल से ही तीन भिन्न-भिन्न पक्ष और उनके अभिमानी हो गये होगे। ग्रहलाघव मे जो ग्रह आर्यपक्ष के नाम पर लिये गये है वे करणप्रकाश के है।

---

१. करणप्रकाश द्वारा एकादशी का गणित ४ घंटे मे भी नहीं हो सकता। मैंने करणप्रकाश तुल्य परन्तु उससे सुलभ अन्य रीति से वही गणित लगभग पौन घंटे में किया।

भास्वतीकरण

काल, कर्ता और स्थान

यह एक करणग्रन्थ है। इसमें आरम्भवर्ष शक १०२१ है।[1] इसके रचयिता शतानन्द नामक ज्योतिषी है। भास्वती-टीकाकार अनिरुद्ध का कथन है कि शतानन्द पुरुषोत्तम अर्थात् जगन्नाथपुरी के निवासी थे और उन्होने क्षेपक वही के लिखे है। सिद्धान्तादि गणितग्रन्थो मे प्राय सर्वत्र देखा जाता है कि वे चाहे जहाँ बने हो, पर उनमे क्षेपक उज्जयिनी के ही रहते है। जगन्नाथपुरी उज्जयिनी-रेखा से अधिक दूर होने के कारण भास्वतीकार ने सुभीते के लिए इस पद्धति का त्याग किया होगा और यह ठीक भी है। इनके एक टीकाकार माधव का कथन है कि भास्वती के आरम्भ के 'नत्वा मुरारेश्चरणारविदम्' लेख से ज्ञात होता है कि ये वैष्णव थे। इसके प्रथम अधिकार मे लिखा है—

अथ प्रवक्ष्ये मिहिरोपदेशात् तत्सूर्यसिद्धान्तसम समासात् ॥३॥

आधार

टीकाकार माधव ने मिहिर का अर्थ सूर्य करते हुए इस ग्रन्थ को सूर्यसिद्धान्त के आधार पर बना हुआ बतलाया है और ग्रहो के क्षेपको और गतियो की उपपत्ति वर्तमान सूर्यसिद्धान्त के अनुसार लगाने का असफल प्रयत्न किया है। अनेकों स्थानों मे उन्हे यह कहकर समाधान करना पडा है कि आचार्य ने इतना अन्तर छोड़ दिया। यह बात उनके ध्यान मे बिलकुल नही आयी कि शतानन्द ने यह करण वराहमिहिर की पञ्च-सिद्धान्तिका के सूर्यसिद्धान्तानुसार बनाया है। हम समझते है, उस समय (शके १४४२) पञ्चसिद्धान्तिका के प्रचार का सर्वथा अभाव होने के कारण उन्हे यह भ्रम हुआ होगा। मैंने भास्वती की कुछ और टीकाएँ भी देखी है, पर उनमे क्षेपको की उपपत्ति नही है।

भास्वती के क्षेपक स्पष्टमेषसंक्रान्तिकालीन अर्थात् शके १०२१ अमान्त चैत्र कृष्ण ३० गुरुवार के है, पर वे उस दिन के किस समय के है, इसका ठीक ज्ञान न होने के कारण उनकी कला-विकलाओं की भी ठीक संगति लगती है या नही, इसकी परीक्षा मैं नहीं कर सका। फिर भी क्षेपक स्पष्टमेषसक्रान्ति-दिवस के है और वे वराहोक्त बीज-संस्कार से संस्कृत वराहमिहिर के पञ्चसिद्धान्तिकान्तर्गत सूर्यसिद्धान्त द्वारा लाये हुए मध्यम ग्रहों से प्राय मिलते है।[1] इससे यह नि सशय सिद्ध होता है कि भास्वतीकार

---

१. पञ्चसिद्धान्तिका द्वारा भास्वतीक्षेपक लाने में अहर्गण २१६९६२ आता है।

ने मूल सूर्यसिद्धान्त मे वराहोक्त बीजसस्कार देकर मध्यमग्रह लिये है और ग्रहो की वर्षगतियों मे भी इसी पद्धति का अनुसरण किया है।

स्पष्ट मेष

इसमे मध्यमग्रहसाधन अहर्गण द्वारा न करके वर्षगण द्वारा किया है और ऐसा करने मे बड़ी सुविधा होती है, यह ऊपर बता ही चुके है। अन्य जिन-जिन करण-ग्रन्थो मे वर्षगण द्वारा मध्यमग्रहसाधन किया गया है उन सबो मे आरम्भ मध्यम मेष-सक्रान्ति से है, पर इसमे स्पष्ट मेषसक्रान्ति से है। केरोपन्त ने भी अपने ग्रहसाधन कोष्ठक मे स्पष्ट मेष ही से ग्रहसाधन किया है।

शतांश पद्धति

शतानन्द के ग्रन्थ मे एक और विशेषता यह है कि उन्होने क्षेपको और ग्रहगतियो के गुणक-भाजक शताश पद्धति द्वारा लिखे है। इसमे सूर्य और चन्द्रमा की गति-स्थितियाँ नक्षत्रात्मक और भौमादि ग्रहो की रश्यात्मक हैं। यहा इनके दो उदाहरण देते है। चन्द्रमा की वार्षिक गति $९९५\frac{५}{६}$ लिखी है। ये शताश है। इनमे १०० का भाग देने से जो लब्धि आयेगी, वह नक्षत्र सख्या होगी। अर्थात् चन्द्रमा की वार्षिक गति है $\frac{९९५\frac{५}{६}}{१००}$ नक्षत्र $= \frac{९९५\frac{५}{६}}{१००} \times ८००$ कला $= ७९६६\frac{२}{३}$ कला $=$ ४ राशि १२ अश ४६ कला ४० विकला। इस रश्यादि गति द्वारा गणित करने की अपेक्षा $९९५\frac{५}{६}$ गति द्वारा करने मे बहुत कम परिश्रम होता है। दूसरा उदाहरण—शनिक्षेपक ५९४, यह राश्यात्मक है और ५९४ शताश है। इसलिए शनि का राश्यादि क्षेपक हुआ $\frac{५९४}{१००} =$ ५ राशि २८ अंश १२ कला। यह पद्धति कुछ आधुनिक दशाश पद्धति सरीखी ही है। पता नही चलता, इस शताश पद्धति के कारण ही ग्रन्थकार ने शतानन्द नाम स्वीकार किया अथवा वस्तुतः उनका नाम शतानन्द ही था।

विषय

भास्वती में तिथिध्रुवाधिकार, ग्रहध्रुवाधिकार, स्फुटतिथ्यधिकार,, ग्रहस्फुटाधिकार, त्रिप्रश्न, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण और परिलेख, ये ८ अधिकार और भिन्न-भिन्न छन्दो के लगभग ६० श्लोक हैं। इसमे शून्यायनाशवर्ष शक ४५० और वार्षिक अयनगति एक कला है।

इससे गुणन-भजन में बहुत अधिक परिश्रम होता है। यदि वर्षगति दी होती तो इस संख्या के स्थान मे (१०२१-४२७) ५९४ आता और इससे ग्रह लाने में बड़ी सुविधा होती।

टीकाएँ

इस पर काशीनिवासी अनिरुद्ध की शके १४१७ की टीका है। उसे देखने से ज्ञात होता है कि उसके पहिले इसकी कई टीकाए हो चुकी थी। माधव की टीका शक १४४२ के आसपास की है। ये कन्नौज (कान्यकुब्ज) के निवासी थे। गङ्गाधरकृत टीका शक १६०७ की है। शक १५७७ के पास की एक और टीका है। बलभद्र की टीका कोलब्रूक के कथनानुसार शक १३३० की है। आफ्रेचसूची[1] से उसका नाम बालबोधिनी ज्ञात होता है। इनके अतिरिक्त इस पर भास्वतीकरणपद्धति, रामकृष्णकृत तत्त्वप्रकाशिका, रामकृष्णकृत भास्वती चक्ररश्म्युदाहरण, शतानन्दकृत उदाहरण, वृन्दावनकृत उदाहरण तथा अच्युतभट्ट, गोपाल, चक्रविप्रदास, रामेश्वर और सदानन्दकृत टीकाएँ है और वनमालीकृत प्राकृत टीका है—ऐसाआफ्रेच सूची मे लिखा है।

इनमे अधिक टीकाकार उत्तर भारत के है, अत उत्तर मे इसकी अधिक प्रसिद्धि रही होगी। आजकल इसका प्रचार नही है और मुझे अन्य किसी ग्रन्थ मे इसका उल्लेख नही मिला।

करणोत्तम

'करणोत्तम' नाम के करणग्रन्थ का उल्लेख श्रीपति की रत्नमाला की महादेवकृत टीका मे अनेको स्थानो मे है। उसमे अयनांशविचार मे इस करण के ये—'शाको वसुत्र्यम्बरचन्द्र १०३८ हीन·=, कलारूपा याता करणशरद., षट्शतयुता करणोत्तमादौ चाप्ययनांशा दशसख्या·'—वाक्य आये है। इनसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि करणोत्तम ग्रन्थ शके १०३८ का है और उसमें शून्यायनांशवर्ष शके ४३८ तथा वार्षिक अयनगति एक कला मानी है। ताजकसार ग्रन्थ (शके १४४५) का—स्पष्टग्रह सूर्यतुल्य, करणोत्तम अथवा राजमृगाङ्क से लाने चाहिए—इस अर्थ का एक वाक्य ऊपर दिया है। इनमे सूर्यतुल्य ग्रन्थ और पक्ष का होना चाहिए। राजमृगांक ब्राह्मपक्षीय है, यह ऊपर बता चुके हैं, अत तृतीय ग्रन्थ करणोत्तम अनुमानत आर्यपक्षीय होगा। ताजकेसार

---

१. यूरोप के भिन्न-भिन्न स्थानों के संस्कृत ग्रन्थों की लगभग १९ और भारत की ३७ अर्थात् सब ५६ सूचियों के आधार पर थिओडोर आफ्रेच (Theodor Aufrecht) **नामक जर्मन विद्वान् की बनायी हुई एक बहुत बड़ी सूची** (Catalogus catalogorum) **जर्मन ओरियंटल सोसायटी ने सन् १८९१ में लिपजिक में छपायी है। उसी का नाम आफ्रेंच सूची है।**

के शक से ज्ञात होता है कि वह शक १४४५ मे प्रचलित था। सम्प्रति उसके प्रचलित या उपलब्ध होने की बात कही सुनने या पढने मे नही आती।

महेश्वर

ये प्रसिद्ध ज्योतिषी सिद्धान्तशिरोमणिकार भास्कराचार्य के पिता थे। इनका जन्म-शक लगभग १००० और इनके ग्रन्थो का रचनाकाल शक १०३०-४० के आसपास होगा। इनका वशवृत्त आगे भास्कराचार्य के वर्णन मे है। इनके प्रपौत्र अनन्तदेव के शिलालेख मे लिखा है कि इन्होने शेखर नामक करणग्रन्थ, लघुजातक की टीका, एक फलितग्रन्थ और प्रतिष्ठाविधिदीपक बनाया था (भास्कराचार्य का वर्णन देखिए)। 'वृत्तशत' नामक इनका एक और ग्रन्थ है। वृत्तशत नाम का एक मुहूर्तग्रन्थ है (Jour, R. A. S, N. S. vol,1, P. 410), वह यही होगा।

अभिलषितार्थ चिन्तामणि

उत्तर-चालुक्यवश के राजा तृतीय सोमेश्वर ने, जिसे भूलोकमल्ल और सर्वज्ञभूपाल भी कहते थे, 'अभिलषितार्थचिन्तामणि' अथवा 'मानसोल्लास' नामक ग्रन्थ बनाया है। इसमे अनेक विषयो के साथ ज्योतिष भी है। इसमे ग्रहसाधनार्थ आरम्भ काल शक १०५१ लिया है। इसके विषय मे लिखा है—

एकपञ्चाशदधिके सहस्रे १०५१ शरदा गते। शकस्य सोमभूपाले सति चालुक्यमण्डने॥
समुद्ररसनामुर्वी शासति क्षतविद्विषि। सर्वशास्त्रार्थसर्वस्वपयोधिकलशोद्भवे॥
सोम्यसवत्सरे चैत्रमासादौ शुक्रवासरे। परिशोधितसिद्धान्तलब्धाः स्युर्ध्रुवका इमे॥[1]

इससे ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ के क्षेपक शक १०५१ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा शुक्रवार के है और इसमे अहर्गण द्वारा ग्रहसाधन किया है। यह ग्रन्थ मैने स्वय नही देखा है, इससे इसमे ग्रह किस सिद्धान्त के अनुसार लिये गये है, इत्यादि बातो का पता नही लगता।

शक १०७२ पहले के अन्य ग्रन्थ और ग्रन्थाकार

यहाँ तक जिन ग्रन्थों और ग्रन्थकारो का वर्णन किया गया है, भास्कराचार्य के सिद्धान्तशिरोमणि मे उनके अतिरिक्त कुछ और नाम आये है। माधवकृत सिद्धान्त-

१. प्रोफेसर भण्डारकर के "दक्षिण का इतिहास" का पृष्ठ ६७-६८ (इंग्लिश) देखिए।

चूडामणि का उल्लेख सिद्धान्तशिरोमणि में दो स्थानो मे है (बापूदेव शास्त्री की पुस्तक का पृष्ठ २३४, २६९ देखिए)। सम्प्रति यह सिद्धान्त उपलब्ध नही है। भास्कर के बीजगणित से ज्ञात होता है कि उनके पहिले ब्रह्मा और विष्णुदैवज्ञ नाम के बीजगणित-ग्रन्थकार थे। उनके ग्रन्थ इस समय उपलब्ध नही है। ये ब्रह्मा कदाचित् करणप्रकाश-कार ब्रह्मा होगे।

भास्कराचार्य

काल

भारत मे ये एक बहुत बडे ज्योतिषी हो चुके है। लगभग ७०० वर्षों से भारत में ही नही, बाहर भी इनकी कीर्ति फैली हुई है। 'सिद्धान्तशिरोमणि' और 'करण-कुतूहल' नामक इनके दो गणितज्योतिषग्रन्थ हैं। इन्होने सिद्धान्त के शिरोमणि के गोलाध्याय मे लिखा है—

रसगुणपूर्णमही १०३६ समशकनृपसमयेऽभवन्ममोत्पत्ति ।
रसगुणवर्षेण मया सिद्धान्तशिरोमणी रचित ॥५८॥

इससे ज्ञात होता है कि इनका जन्म शके १०३६ मे हुआ और इन्होंने ३६ वर्ष की अवस्था मे सिद्धान्तशिरोमणि बनाया। करणकुतूहल मे आरम्भवर्ष शके ११०५ है अर्थात् वह उसी वर्ष मे बना है। सिद्धान्तशिरोमणि के ग्रहगणित और गोलाध्याय पर इनकी स्वकीय वासनाभाष्य नाम की टीका है। उसके पाताधिकार मे एक स्थान पर लिखा है, "तथा शरखण्डकानि करणे मया कथितानि" और टीका में कई अन्य स्थानों में अयनाश ११ लिये है, इससे टीका का रचनाकाल शके ११०५ के आसपास ज्ञात होता है, क्योकि इन्होने ११ अयनाश शके ११०५ मे माने है, पर कुछ टीका इसके पहिले और कुछ मूल ग्रन्थ के साथ लिखी होगी, यह भी सम्भव है,। ६९ वर्ष की अवस्था मे करण-ग्रन्थ और टीका के कुछ भाग की रचना से ज्ञात होता है कि इतने अधिक वय मे भी इनके उत्साह और वृद्धि मे किसी प्रकार की न्यूनता नही आयी थी। वर्तमान समय में हमारे देश मे ऐसे मनुष्य बहुत कम है। स्वय इनके और अन्य आचार्यों के ग्रन्थो मे पर्याप्त प्रमाण होने के कारण इनके काल के विषय मे किसी प्रकार का सन्देह नही है। इन्होने अपने कुल और निवासस्थान का थोडा-सा वर्णन अग्रिम श्लोको मे किया है—

आसीत् सह्यकुलाचलाश्रितपुरे त्रैविद्यविद्वज्जने, नानासज्जनधाम्नि विज्जडविडे शाण्डिल्यगोत्रो द्विज.। श्रौतस्मार्तविचारसारचतुरो निःशेषविद्यानिधिः, साधूनाम-वधिर्महेश्वरकृती दैवज्ञचूडामणिः ॥६१॥ तज्जस्तच्चरणारविन्दयुगलप्राप्तप्रसादः

सुधीर्मुग्धोद्बोधकरं विदग्धगणकप्रीतिप्रद प्रस्फुटम्। एतद् व्यक्त सदुक्तियुक्ति-बहुल हेलावगम्य विदा सिद्धान्तग्रथन कुबुद्धिमथन चक्रे कविर्भास्कर ।।६२।।
गोले प्रश्नाध्याये

इससे ज्ञात होता है कि इनका गोत्र शाण्डिल्य और निवासस्थान सह्यपर्वत के पास विज्जडविड नामक ग्राम था। इनके पिता का नाम महेश्वर था और वे ही इनके गुरू भी थे।

खानदेश मे चालीसगाव से १० मील नैऋत्य की ओर पाटण नाम का एक उजाड गाव है। वहा भवानी के मन्दिर मे एक शिलालेख है,[1] उसमे "भास्कराचार्य के पौत्र चगदेव यादववशीय सिघण राजा के ज्योतिषी थे। इस सिघण (सिह) राजा का राज्य देवगिरि मे शक ११३२ से ११५९ तक था। चगदेव ने भास्कराचार्य और उनके वश के अन्य विद्वानो के ग्रन्थो का अध्यापन करने के लिए पाटण मे एक मठ स्थापित किया। सिघण के माण्डलिक (भृत्य) निकुभवशीय सोइदेव ने शक ११२९ मे उस मठ के लिए कुछ सम्पत्ति नियुक्त कर दी। उसके भाई हेमाडी ने भी कुछ नियुक्त किया" इत्यादि बाते लिखी है। चगदेव ने शक ११२८ के कुछ वर्षो बाद यह लेख लिखवाया है। इस समय वह मठ तो नही है, पर मठ के चिह्न है। इस शिलालेख मे भास्कराचार्य के पूर्वापर पुरुषो का वृत्तान्त इस प्रकार है—

शाण्डिल्यवशे कविचक्रवर्ती त्रिविक्रमोऽभूत्तनयोऽस्य जातः।
यो भोजराजेन कृताभिधानो विद्यापतिर्भास्करभट्टनामा ।।१७।।
तस्माद् गोविन्दसर्वज्ञो जातो गोविन्दवन्निभ.।
प्रभाकर सुतस्तस्मात् प्रभाकर इवापर. ।।१८।।
तस्मान्मनोरथो जात सता पूर्णमनोरथः।
श्रीमन्महेश्वराचार्यस्ततोऽजनि कवीश्वरः ।।१९।।

तत्सूनु. कविवृन्दवन्दितपदः सद्वेदविद्यालताकन्द कसरिपुप्रसादितपदः सर्वज्ञविद्यासद.। यच्छिष्यै. सह. कोऽपि नो विवदितु दक्षो विवादी क्वचिच्छ्रीमान् भास्करकोविद. समभवत् सत्कीर्तिपुण्यान्वितः ।।२०।। लक्ष्मीधराख्योऽखिलसूरिमुख्यो वेदार्थवित्तार्किकचक्रवर्ती। ऋतुक्रियाकाण्डविचारसारविशारदो भास्करनन्दनोऽभूत ।।२१।।

---

१. कैलासवासी डा० भाऊ दाजी ने इस लेख का पता लगाया और उसे Jour. R. A. S. N. S. vol. I, P. 414 में प्रसिद्ध किया। इसके बाद वह Epigraphia Indica, vol., I, P. 340 मे पुनः अच्छी तरह छपा है। उसमें पाटण गांव का नाम आया है।

सर्वशास्त्रार्थदक्षोऽयमिति मत्वा पुरादत । जैत्रपालेन यो नीत कृतश्च विबुधाग्रणी ।।२२।।

तस्मात् सुत सिंघणचक्रवर्तिदैवज्ञवर्योऽजनि चगदेव ।
श्रीभास्कराचार्यनिबद्धशास्त्रविस्तारहेतो कुरुते मठ य ।।२३।।
भास्कररचितग्रन्था. सिद्धान्तशिरोमणिप्रमुखा. ।
तद्वश्यकृताश्चान्ये व्याख्येया मन्मठे नियमात् ।।२४।।

त्रिविक्रम
|
भास्करभट्ट
|
गोविन्द
|
प्रभाकर
|
मनोरथ
|
महेश्वर
|
भास्कर
|
लक्ष्मीधर
|
चगदेव

इन श्लोको द्वारा भास्कराचार्य की यह पार्श्वस्थित वशावली निष्पन्न होती है। इसमे लिखे हुए भास्कराचार्य के गोत्र और पिता के नाम भास्करोक्त नामो से मिलते है। शिलालेख मे भास्कराचार्य के षष्ठ पूर्वपुरुष भास्करभट्ट भोजराज के विद्यापति बतलाये गये है। सिद्धान्तशिरोमणिकार भास्कराचार्य का जन्म शक १०३६ मे हुआ था। प्रत्येक पीढ़ी मे २० वर्ष का अन्तर मानने से भास्करभट्ट का जन्मकाल शक ९३६ आता है। अत. उनका शके ९६४ मे बने हुए राजमृगांक के कर्त्ता भोज का विद्यापति होना असम्भव नही है। शिलालेख मे लिखा है कि राजा जैत्रपाल ने सिद्धान्तशिरोमणिकार भास्कराचार्य के पुत्र लक्ष्मीधर को लाकर अपनी सभा मे रखा था और उनका पुत्र चगदेव सिघण चक्रवर्ती का ज्योतिषी था। यादववशीय जैत्रपाल राजा का राज्य देवगिरि मे शके १११३ से ११३२ तक और उनके पुत्र सिघण का ११३२ से ११६९ तक था।[1]

खानदेश मे चालीसगाव से १० मील उत्तर गिरण के पास वहाल नाम का एक गाव है। वहा सारजा देवी के मन्दिर मे एक शिलालेख है। उसमे लिखा है—शाण्डिल्यगोत्रीय मनोरथ के पुत्र महेश्वर हुए। उनके पुत्र श्रीपति हुए। उनके पुत्र गणपति और गणपति के पुत्र अनन्तदेव हुए। ये यादववशीय सिंह (सिघण) राजा के दरबार मे दैवज्ञाग्रणी थे। इन्होंने शके ११४४ मे यह देवी का मन्दिर बनवाया। यह शिलालेख भी उन्ही का है।[2] यह वशवर्णन चगदेव के लेख के वर्णन से मिलता है। मालूम

---

१. प्रोफेसर भण्डारकर का दक्षिण का इतिहास (पृष्ठ ८२ इंग्लिश) देखिए।

२. यह लेख Epigraphia Indica, vol. 111, P. 112 **मे छपा है। लेख में देवी का नाम द्वारजा है।**

होता है, इस कुल मे विद्वत्परम्परा बहुत दिनो तक चली थी और यह कुल बड़ा प्रतिष्ठित था। चगदेव के शिलालेख के प्रथम पुरुष त्रिविक्रम दमयन्तीकथा नामक ग्रन्थ के कर्ता है।

स्थान

भास्कराचार्य किस राजा के दरबार मे रहते थे, इसके विषय मे उन्होने स्वय कुछ नही लिखा है और न तो उपर्युक्त दोनो शिलालेखो मे ही इसका वर्णन है। उन्होने अपना वसतिस्थान विज्जडविड लिखा है। इस शब्द के अन्तिम दो अक्षरो से अनुमान होता है कि वह स्थान बीड होगा, परन्तु बीड अहमदनगर से ४० कोस पूर्व मोगलाई मे हे। वह सह्याद्रि के पास नही है और मैने पता लगाया है, वहा भास्कराचार्य का कोई वशज भी नही है। अकबर ने सन् १५८७ ईसवी (शके १५०९) मे भास्कर की 'लीलावती' का परशियन भाषा मे अनुसाद कराया था। अनुवादक ने उसमे लिखा है कि भास्कराचार्य की जन्मभूमि दक्षिण मे बेदर नामक स्थान है।[1] बेदर सोलापुर से लगभग ५० कोस पूर्व मोगलाई मे है और वह भी सह्याद्रि के पास नही है। मोगलाई मे बेदर से १५ कोस पश्चिम कल्याण नामक प्रसिद्ध शहर है। भास्कराचार्य के समय वहा चालुक्यवश का राज्य था। इतने पास एक विस्तृत राज्य रहते हुए भास्कराचार्य का उससे किसी प्रगार का सम्बन्ध होने का कोई प्रमाण नही मिलता, अत बेदर भास्कराचार्य का वसतिस्थान नही है।

चगदेव के शिलालेख के २२वे श्लोक मे लिखा है—भास्कराचार्य के पुत्र लक्ष्मीधर को राजा जैत्रपाल ने इस (पाटण) पुर से बुलवाया। पाटण गॉव यादवो की राजधानी देवगिरि (दौलताबाद) के पास ही है और सह्याद्रि की एक शाखा "चॉदवड की पहाडी" से लगा हुआ है अर्थात् भास्कराचार्य के लेखानुसार वह सह्याचलाश्रित है। वहाल नामक गाव भी—जिसमे भास्कर के वशज अनन्तदेव का बनवाया हुआ देवी का मन्दिर है—पाटण के पास ही २० मील पर है। इससे नि सशय सिद्ध होता है कि भास्कराचार्य का मूल निवासस्थान पाटण अथवा उसके पास ही विजलविड सरीखे नाम वाला गाव था। सम्प्रति वह प्रसिद्ध नही है।

सिद्धान्तशिरोमणि-विषय

सिद्धान्तशिरोमणि मे मुख्य चार खण्ड है। इन्हे अध्याय भी कहते है। इन अध्यायो मे भी अध्याय है। प्रथम खण्ड को ग्रन्थकार ने पाटीगणित या लीलावती कहा है। अङ्कगणित और महत्त्वमापन (क्षेत्रफल, घनफल) का यह स्वतन्त्र ग्रन्थ कहा जा सकता

---

१. Pott's Algebra, 1886, Se. II.

है। इसमे सब लगभग २७८ पद्य है। बीच मे उदाहरणो का स्पष्टीकरण इत्यादि गद्य मे भी किया है। इसमे आरम्भ मे विविध परिमाणो के कुछ पैमाने और परार्ध पर्यन्त सख्याओ के नाम दिये है। इसके बाद पूर्णांको का योग, अन्तर, गुणा, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन और घनमूल है। इन आठ कृत्यो को इसमे परिकर्माष्टक कहा है। इसके बाद भिन्न (अपूर्णांक) परिकर्माष्टक, शून्यपरिकर्माष्टक, इष्टकर्म, त्रैराशिक, पञ्चराशिक, श्रेढी, भिन्न-भिन्न प्रकार के क्षेत्रो और घनो के क्षेत्रफल, घनफल इत्यादि विषय है। इसके बाद कुट्टकगणित तथा पाक्षिक विपर्यय और सर्वांशिक विपर्यय सम्बन्धी कुछ बाते और उनके उदाहरण इत्यादि है। बीच मे एक विशेष महत्त्व का उदाहरण यह है—९ हाथ ऊँचे स्तम्भ पर एक मोर बैठा था। उसने स्तम्भमूल से २७ हाथ दूर एक सर्प देखा जो कि स्तम्भमूल मे स्थित बिल की ओर आ रहा था। वह उसे पकडने के लिए सर्प की ही गति से चला तो उसने सर्प को बिल से कितनी दूरी पर पकडा? इसका उत्तर १२ हाथ लिखा है। समकोणत्रिभुज के कर्ण मे अर्थात् सरल रेखा मे मोर का गमन १५ हाथ मानने से यह उत्तर आता है, परन्तु मोर का गमनमार्ग वृत्तपरिधि से भिन्न एक वक्ररेखा होती है। ऐसे महत्व का गणितविचार अन्य किसी सस्कृतग्रन्थ मे नही है। भास्कराचार्य के मस्तिष्क मे वह आया था, यह ध्यान देने योग्य बात है। यद्यपि स्पष्ट है कि लीलावती पढ़ने से पेड़ की पत्तिया तक गिनना आ जाता है, इत्यादि वृद्धो की धारणाएँ व्यर्थ है, तथापि इससे उनकी लीलावती के प्रति पूज्यबुद्धि व्यक्त होती है। द्वितीय खण्ड बीजगणित मे धनर्ण सख्याओ का योग इत्यादि, अव्यक्त का योग इत्यादि, करणी सख्याओ के योगादि, इसके बाद कुट्टक, वर्गप्रकृति, एकवर्ण समीकरण, अनेकवर्णसमीकरण, एकानेकवर्णवर्गादिसर्माकरण, इत्यादि विषय है। इसमे लगभग २१३ पद्य है और बीच मे कुछ गद्य है। गणिताध्याय और गोलाध्याय नामक दो खण्डो मे ज्योतिषशास्त्र है। प्रथम मे उपोद्घात मे बतलाये हुए अधिकारो के ग्रह-गणितसम्बन्धी सब विषय है। टीकासहित इसकी ग्रन्थसया ४३४६ लिखी है। गोलाध्याय मे ग्रहगणिताध्याय के सब विषयो की उपपत्ति, त्रैलोक्यसस्थानवर्णन, यन्त्राध्याय इत्यादि विषय है। इसकी ग्रन्थसख्या २१०० लिखी है। अन्त मे ज्योत्पत्ति नामक एक छोटा सा पर बड़े महत्त्व का प्रकरण है। बीच मे ऋतुवर्णन नाम का एक छोटा सा प्रकरण भास्कराचार्य ने अपनी कविता दिखलाने के लिए लिखा है।

कर्तृत्व

मध्यमाधिकार के ग्रहभगणादि सब मान और स्पष्टाधिकार के परिध्यश इत्यादि सब मान भास्कराचार्य ने ब्रह्मगुप्तसिद्धान्त से लिये है। मध्यमग्रह सम्बन्धी बीजसंस्कार अक्षरशः राजमृगाङ्क से लिया है। अयनगति भी प्राचीन ग्रन्थो की ही है। साराश

यह कि इनके सिद्धान्त मे वेधसाध्य कोई भी नवीन विषय नही है, परन्तु केवल विचार-साध्य से वह भरा है। ऐसा ज्ञान है ज्योतिषसिद्धान्तो की उपपत्ति। अहर्गण द्वारा ग्रहसाधन ऐसे सामान्य विषय से लेकर लम्बन, ज्योत्पत्ति इत्यादि गहन विषयो तक की भिन्न-भिन्न सुलभ रीतियो और उनकी उपपत्ति इत्यादिको से युक्त होने के कारण सिद्धान्तशिरोमणि इतना उत्कृष्ट ग्रन्थ बन गया है कि केवल उसी का अध्ययन कर लेने से भारतवर्षीय ज्योतिषशास्त्र का सर्वस्व यथार्थ रूप मे ज्ञात हो जाता है और मालूम होता है इसी कारण भास्कराचार्य की इतनी कीर्ति हुई है। इनके सिद्धान्त के कारण अनेक उत्तम और निकृष्ट ग्रन्थ लुप्त हो गये होगे। इनका गुरुस्थानीय ब्राह्म-सिद्धान्त ही इनके सिद्धान्त के कारण पीछे पड गया तो अन्य कितने ग्रन्थो का लोप हुआ होगा, इसका अनुमान सहज किया जा सकता है। प्रथम आर्यभट से भास्कर पर्यन्त सीमा का काल भारतीय ज्योतिषशास्त्र के पूर्ण विकास का काल है। इसी काल मे बगदाद के खलीफा भारत से ज्योतिषी ले गये, हिन्दू ग्रन्थो का अरबी और लैटिन भाषाओ मे अनुवाद हुआ, अरब और ग्रीक लोग ज्योतिषशास्त्र मे हिन्दुओ के शिष्य हुए और अयनगति का पूर्ण विचार हुआ। अतः ज्योतिषशास्त्र के इस उन्नतिकाल मे अनेक ग्रन्थकार हुए होगे परन्तु इनमे से कुछ केवल नामशेष रह गये है और कुछ का इतना भी भाग्य नही है।[1] कालमाहात्म्य के साथ-साथ भास्कराचार्य का ग्रन्थ भी मेरी समझ से इसका एक बड़ा कारण है। इनके बाद दूसरा कोई ऐसा ग्रन्थकार नही हुआ। भास्कराचार्य के ग्रन्थो का प्रचार भारत के कोने-कोने तक है, इतना ही नही, विदेशी भाषाओ मे भी इसके अनुवाद हो चुके है, परन्तु इतने बडे कल्पक ने आधुनिक यूरोपियन अन्वेषणो सरीखा कोई महत्वशाली अन्वेषण नही किया, न तो किसी आविष्कार की नीव ही डाली, यह हमारे देश का दुर्भाग्य है। भास्कर ने वेध सम्बन्धी प्रयत्न कुछ भी नही किया। इन्होंने अपनी सम्पूर्ण बुद्धि उपपत्तिविवेचन मे ही लगा दी जो कि केवल एक टीकाकार का कार्य है। मुझे स्वकीय अत्यल्प अनुभव से भी ज्ञात होता है कि ये

---

१. करणचूड़ामणि, लोकानन्दकृत लोकानन्दकरण और भहिलकृत भहिलकरण का नाम लिखने के बाद बेरुनी ने (भाग १ पृष्ठ १५७) लिखा है कि ऐसे ग्रन्थ असंख्य है। इससे मेरे उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है। देश और कालभेद के कारण अनेक करण-ग्रन्थों का बनना स्वाभाविक है। सम्प्रति वे उपलब्ध नहीं है। यद्यपि उपलब्ध होने पर भी आज उनकी आवश्यकता नहीं है तथापि ज्योतिषशास्त्र और सामान्यतः अपने देश का इतिहास जानने के लिएँ वे बड़े उपयोगी है।

यदि इस कार्य को छोड़कर वेधानुसन्धान करते तो इनका झुकाव नवीन आविष्कार की ओर अवश्य हुआ होता।

नवीन विशेषताओ का सर्वथा अभाव होते हुए भी उपपत्ति मे सम्पूर्ण बुद्धि लगा देने के कारण इनके ग्रन्थ मे वेधसाध्य तो नही, पर केवल विचारसाध्य कुछ नवीन बाते आयी है। गोल तो मालूम होता है इन्हे करतलामलकवत् था। त्रिप्रश्नाधिकार मे इन्होने बहुत सी नवीन रीतिया लिखी है और उसमे अनेक विषयो मे अपना विशेष कौशल दिखाया है। शकु सम्बन्धी इष्टदिक्छायासाधन किया है जो कि पूर्वाचार्यों के ग्रन्थो मे नही है। पूर्वाचार्यों के पातसाधन को भ्रमपूर्ण कह कर उसकी नवीन रीति लिखी है। इनके पहिले के आचार्य ग्रहो का शर क्रान्तिसूत्र मे अर्थात् ध्रुवाभिमुख मानते थे, परन्तु इन्होने स्पष्ट दिखा दिया है कि शर क्रान्तिवृत्त पर लम्ब होता है। उदयान्तर इनकी एक नवीन शोध है। उसका स्वरूप यह है—अहर्गण द्वारा यह लाने मे सब दिन समान मानने पडते है, पर वस्तुस्थिति ऐसी नही है। विषुववृत्त मे भी अहोरात्र ६० घटी से कुछ न्यूनाधिक होता है। इससे मध्यम और स्पष्ट सूर्योदय मे अन्तर पडता है। अहर्गणागत ग्रह मध्यम सूर्योदय के होते है। उन्हे स्पष्टोदयकालीन करने के लिए पूर्वग्रन्थकारो ने भुजान्तर और चर-सस्कार लिखे है। भास्कर ने उदयान्तर एक अधिक सस्कार लिखा। सूर्य की गति क्रान्तिवृत्त मे सदा समान नही रहती। इष्टकालीन मध्यम और स्पष्ट रवि के अन्तर अर्थात् फलसस्कार के अनुसार स्पष्टोदय आगे-पीछे होता है। इस सम्बन्धी सस्कार को भुजान्तर कहते है। पृथ्वी अपनी धुरी पर विषुववृत्त मे घूमती है, क्रान्तिवृत्त मे नही। इसलिए क्षितिज मे क्रान्तिवृत्तीय ३० अश का उदय होने मे जितना समय लगता है, नाडीवृत्त के ३० अश का उदय होने मे सदा उतना ही नही लगता। इस विषय सस्कार को भास्कर ने उदयान्तर कहा है। यह सस्कार अपेक्षित है, इसमे सन्देह नही। यूरोपियन ज्योतिष मे 'इक्वेशन आफ टाइम' नाम का एक सस्कार है। उसमें भुजान्तर और उदयान्तर दोनो का अन्तर्भाव हो जाता है। साराश यह कि उदयान्तर भास्कर का एक आविष्कार है। सूर्यसिद्धान्त के स्पष्टाधिकार के ५९वे श्लोक की टीका मे रङ्गनाथ ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि सूर्यसिद्धान्तकार को यह सस्कार अभीष्ट था, पर उन्होंने स्वल्पान्तरत्वात् इसका त्याग किया। सिद्धान्ततत्त्वविवेककार ने भास्कर के उदयान्तर का खण्डन करने का व्यर्थ और दुराग्रहपूर्ण यत्न किया है। उदयान्तर के अतिरिक्त सिद्धान्त-शिरोमणि मे कुछ और भी फुटकर बातें नवीन है। दो-तीन स्थानो पर इसमे ब्रह्मगुप्त की त्रुटिया दिखायी है।

करणकुतुहल

यह करणग्रन्थ है। इसमें आरम्भकाल शक ११०५ है। क्षेपक शक ११०४ फाल्गुन कृष्ण ३० गुरुवार के सूर्योदय के है। मध्यमग्रहसाधन अहर्गण द्वारा किया है। भास्कराचार्य ने इस ग्रन्थ को ब्रह्मतुल्य कहा है, पर यह राजमृगाङ्कोक्त-बीजसस्कृत ब्रह्मतुल्य है। इसका नाम 'ग्रहागमकुतूहल' भी है। पहिले इसकी बडी प्रसिद्धी थी। कुछ लोग आजकल भी इससे गणित करते हैं। ग्रहलाघवोक्त ब्रह्मपक्षीय ग्रह इसी के हैं। इससे गणित करने का जगच्चन्द्रिकासारणी नामक एक विस्तृत सारणीग्रन्थ है। इसमे मध्यम, स्पष्ट, त्रिप्रश्न, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, उदयास्त, शृङ्गोन्नति, ग्रहयुति, पात और पूर्वसम्भव ये १० अधिकार और उनमे क्रमश १७, २३, १७, २४, १०, १५, ५, ७, १६, ५ अर्थात् सब १३९ पद्य हैं।

टीकाएं

भास्कराचार्य के ग्रन्थ की जितनी टीकाए अन्य किसी ज्योतिषग्रन्थ की नही होगी। कुछ टीकाए सिद्धान्तशिरोमणि के चारो भागो पर है, कुछ केवल लीलावती पर, कुछ केवल बीजगणित पर और कुछ केवल ग्रहगणिताध्याय-गोलाध्याय पर है लीलावती की टीकाए ये हैं—

जम्बूनिवासी गोवर्धनपुत्र गङ्गाधर की गणितामृतसागरी नाम की टीका है। यह प्राय शक १३४२ की होगी। आफ्रेचसूची मे लिखा है कि इसका नाम अङ्कामृतसागरी भी है और गङ्गाधर का एक और नामलक्ष्मीधर था। ग्रहलाघवकार गणेश दैवज्ञ की शक १४६७ की बुद्धिविलासिनी नाम की टीका है। धनेश्वर दैवज्ञकी लीलावतीभूषण नाम्नी टीका है। शक १५०९ की एक महीदास की टीका है। मुनीश्वर की शक १५५७ के आसपास की लीलावतीविवृति नाम की टीका है। महीधर की लीलावती-विवरण नाम की टीका है। उसमे मुनीश्वर का उल्लेख है, अत वह शक १५५७ के बाद ही होगी। आफ्रेचसूची मे इनके अतिरिक्त ये अन्य टीकाएँ भी लिखी है— नृसिंहपुत्र रामकृष्ण की सन् १३३९ की गणितामृतलहरी, नृसिहपुत्र नारायण की सन् १३५७ की पाटीगणितकौमुदी, सदादेव के पुत्र रामकृष्णदेव की मनोरजना, रामचन्द्रकृत लीलावतीभूषण, विश्वरूपकृत, निसृष्टदूती, सूर्यदासकृत गणितामृत-कूपिका, चन्द्रशेखर पट्टनायककृत उदाहरण, विश्वेश्वरकृत उदाहरण, दामोदर, देवीसहाय, परशुराम, रामदत्त, लक्ष्मीनाथ, वृन्दावन और श्रीधरमैथिलकृत टीका। निसृष्टदूती टीका मुनीश्वर की होगी क्योकि उनका नाम विश्वरूप भी था।

बीजगणित की टीकाएँ—जहागीर बादशाह के आश्रित सुप्रसिद्ध ज्योतिषी कृष्ण

की शक १५२४ के आसपास की बीज-नवाकुर नामक टीका है। उसे बीजपल्लव और कल्पलतावतार भी कहते है। यह बडी विस्तृत है। अमरावतीस्थ नृसिहदैवज्ञात्मजलक्ष्मणसुत रामकृष्ण की बीजप्रबोध नाम्नी टीका है। रामकृष्ण ने अपने को मुनीश्वरशिष्य कहा है। अत यह लगभग शक १५७० की होगी। आफ्रेचसूची में परमसुख की बीजविवृतिकल्पलता और कृपारामकृत उदाहरण—ये दो और टीकाए लिखी है। ग्रहगणिताध्याय और गोलाध्याय पर ग्रहलाघवकार गणेश दैवज्ञ की टीका है और उनके प्रपौत्र गणेश की शक १५०० के आसपास की शिरोमणिप्रकाश नाम की टीका है। गोलग्रामस्थ नृसिह की शक १५४३ की वासनाकल्पलता अथवा वासनावार्तिक नाम की टीका है। मुनीश्वर अथवा विश्वरूप की शक १५५७ की मरीचि नाम्नी टीका बडी ही उत्कृष्ट तथा विस्तृत है। भैरवात्मज रघुनाथानुज गोपीनाथ की शक १४५० के बाद की सिद्धान्तसूर्योदय नाम की टीका है।

सम्पूर्ण सिद्धान्तशिरोमणि की टीकाएँ—ज्ञानराज के पुत्र सूर्यदास की सूर्यप्रकाश नाम्नी टीका चारो खण्डो पर है। उसमे लीलावती और बीजगणित की टीकाए शक १४६३ की है। प्रथम आर्यभट के टीकाकार परमादीश्वर ने सुनते है भास्कर के ग्रन्थो पर सिद्धान्तदीपिका नाम की टीका की थी। अनुमानत वह चारो अध्यायो पर थी। गोलग्रामस्थ नृसिहपुत्र रङ्गनाथ की मितभाषिणी नाम्नी टीका शक १५८० के थोडे ही दिनो बाद बनी है। आफ्रेचसूची मे सिद्धान्तशिरोमणि की अन्य टीकाओ के ये नाम है—सन् १५०१ की वाचस्पतिपुत्र लक्ष्मीदास की गणिततत्वचिन्तामणि नाम्नी टीका, विश्वनाथ का उदाहरण, राजगिरिप्रवासी, चक्रचूडामणि, जयलक्ष्मण या जयलक्ष्मी, महेश्वर, मोहनदास, लक्ष्मीनाथ, वाचस्पतिमिश्र (?)और हरिहर की टीकाएँ है। सम्भवत इनमे अधिक टीकाएँ केवल ग्रहगणिताध्याय और गोलाध्याय पर होगी।

करणकुतूहल पर सोढल, नार्मदात्मज पद्मनाभ और शकर कवि की टीकाएँ है। शकर कवि की टीका मे उदाहरणार्थ शक १५४१ लिया गया है। शक १४८२ की एक उदाहरणात्मक टीका है। इसका कर्ता उन्नतदुर्ग का निवासी था। उस स्थान की पलभा ४।४८ और देशान्तर ६० योजन पश्चिम है। आफ्रेचसूची मे ये अन्य टीकाएँ है—केशवार्ककृत ब्रह्मतुल्यगणितसार, हर्षगणितकृत गणककुमुद-कौमुदी, विश्वनाथीय उदाहरण और एकनाथकृत टीका।

भास्कर के ग्रन्थो की अन्य भी बहुत सी टीकाएँ होगी।[1] शक १५०९ मे लीलावती

---

1. उपर्युक्त कुछ टीकाओं का पता मुझे अन्य ग्रन्थों द्वारा लगा है। मैंने यह सब टीकायें नहीं देखी है।

का और शक १५६७ मे बीजगणित का पर्शियन भाषा मे अनुवाद हुआ है। कोलब्रूक ने सन् १८१७ मे लीलावती और बीजगणित का इग्लिश मे अनुवाद करके छपाया है। सन् १८६१ मे बापूदेव शास्त्री ने बिब्लिओथिका इण्डिका मे गोलाध्याय का स्वकीय इगलिश अनुवाद छपाया है। उसमे बहुत-सी टिप्पणियाँ भी है। सिद्धान्तशिरोमणि के चारो खण्ड और करणकुतूहलग्रन्थ सम्प्रति हमारे देश मे अनेक स्थानो मे छप चुके है।

रत्नमाला के टीकाकार माधव (शक ११८५) और अन्य ग्रन्थकारो ने भास्कर-व्यवहार नामक एक मुहुर्त ग्रन्थ का उल्लेख किया है। वह इन्ही का होगा। रामकृत विवाहपटलटीका (शक १४४६) मे भास्कर का विवाह विषयक एक श्लोक आया है। भास्करकृत विवाहपटल का उल्लेख मुझे शार्ङ्गीय विवाहपटल और अन्य भी दो एक ग्रन्थो मे मिला है। डेक्कन कालेज सग्रह मे भास्करविवाहपटल नाम का एक छोटा-सा ग्रन्थ है। उसमे ग्रन्थकार का केवल नाम मात्र है, फिर भी अनुमानत. भास्कराचार्य का विवाहपटल नाम का ग्रन्थ रहा होगा।

अनन्तदेव

ये भास्कराचार्य के वशज थे। इनके बहाल नामक गाव के उपर्युक्त शक ११४४ के शिलालेख मे लिखा है कि इन्होने ब्रह्मगुप्तसिद्धान्त के छन्दश्चित्युत्तर नामक २०वे अध्याय की और बृहज्जातक की टीकाएँ की थी।

आदित्यप्रतापसिद्धान्त

श्रीपतिकृत रत्नमाला की महादेवकृत टीका मे इस सिद्धान्त के कुछ वाक्य दिये हैं। महादेव की टीका शके ११८५ की है, अत यह ग्रन्थ इसके पहिले का होगा। आफ्रेचसूची मे इसके कर्ता भोजराज बतलाये है। यदि यह सत्य है तो इसका रचनाकाल शक ९६४ के आसपास होगा।

वाविलालकोच्चन्ना

तैलङ्ग प्रान्त मे वाविलालकोच्चन्ना नामक ज्योतिषी का बनाया हुआ शके १२२० का एक करणग्रन्थ है। उसमे क्षेपक शके १२१९ फाल्गुन कृष्ण ३० गुरुवार के दोपहर के है। वर्तमान सूर्यसिद्धान्त द्वारा मैने इस समय के ग्रह निकाले, वे इसके क्षेपको से पूर्णतया मिलते हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि यह ग्रन्थ वर्तमान सूर्यसिद्धान्त के आधार पर बना है। मकरन्दादि ग्रन्थो मे कथित सूर्यसिद्धान्त का दिया हुआ बीजसस्कार इसमे नही है। वारन नामक एक यूरोपियन ने, जो कि मद्रास की ओर रहते थे, सन् १८२५ मे अगरेजी मे कालसकलित नाम का एक ग्रन्थ लिखा है। उसमे इस करण-सम्बन्धी कुछ बाते आयी है। उनसे ज्ञात होता है कि तैलङ्ग प्रान्त मे यह ग्रन्थ अभी भी

प्रचलित है और इससे पञ्चाङ्ग बनते हैं। उस पञ्चाङ्ग को सिद्धान्तचान्द्रपञ्चाङ्ग कहते हैं।

केशव

इन्होंने विवाहवृन्दावन नामक ग्रन्थ बनाया है। ग्रहलाघवकार गणेश दैवज्ञ ने इसकी टीका की है। उनका कथन है कि करणकण्ठीरव नामक ग्रन्थ इन्ही केशव का है। इसके नाम से स्पष्ट है कि यह करणग्रन्थ है; यह मुझे कही नही मिला। ये केशव भारद्वाजगोत्रीय औदीच्य ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम राणग, पितामह का नाम श्रियादित्य और प्रपितामह का जनार्दन था। विवाहवृन्दावन प्रसिद्ध ग्रन्थ है। यह छप चुका है। इसमे लग्नशुद्धि प्रकरण मे नार्मदीय पलभा ४।४८ लिखी है। इस पलभा द्वारा अक्षांश २१।४८ आते है। नर्मदातटवर्ती भडोच शहर का अक्षाश २१।४१ है अत. इसका स्थान इसी के आसपास नर्मदा के किनारे रहा होगा। आफ्रेचसूची मे विवाहवृन्दावन की कल्याणवर्मकृत एक और टीका लिखी है। ग्रहलाघवकार गणेश दैवज्ञ के पिता केशव से ये प्राचीन होने चाहिए। पीताम्बरकृत विवाहपटल की शक १४४६ की निर्णयामृत नाम की टीका मे विवाहवृन्दावन का उल्लेख है। अत ये शक १४०० से अर्वाचीन नही होगे। विवाहवृन्दावन मे "त्रिभागशेषे ध्रुवनाम्नि" इत्यादि श्लोक मे लिखा है—ध्रुवयोग का तृतीय भाग रह जाने पर व्यतीपात महापात होता है। यह स्थिति उस समय थी, जब कि अयनाश १२$\frac{1}{4}$ थे। गणेश दैवज्ञ ने इसकी टीका मे लिखा है—ग्रन्थनिर्माणकाल मे अयनाश १२ थे, इसीलिए ऐसा लिखा है। इससे सिद्ध होता है कि इनका समय १२ अयनाश काल अर्थात् शक ११६५ के आसपास है।

महादेवकृत ग्रहसिद्धि

यह करणग्रन्थ है। इसे महादेवी सारणी भी कहते है। इसमे आरम्भवर्ष शक १२३८ है, अत. इसका रचनाकाल इसी के लगभग होगा। इसके आरम्भ मे ही ग्रन्थकार ने लिखा है—

चक्रेश्वरारब्धनभश्चराशुसिद्धि महादेव ऋषीश्च नत्वा ।।१।।

इससे अनुमान होता है कि चक्रेश्वर नामक ज्योतिषी के आरम्भ किये हुए इस अपूर्ण ग्रन्थ को महादेव ने पूर्ण किया है। इस पर धनराजकृत टीका है। आरम्भ के ४ श्लोकों मे महादेव ने अपना कुलवृत्तान्त लिखा था, परन्तु उनके अत्यन्त अशुद्ध होने के कारण टीकाकार ने उनकी टीका नही की। इस टीका की एक प्रति डेक्कन कालेज संग्रह

मे है। आनन्दाश्रम मे इस ग्रन्थ की एक टीका विरहित प्रति (न० २०८६) है। उसमे ये श्लोक है। वे भी अशुद्ध ही है, तो भी उनसे ज्ञात होता है कि महादेव गौतमगोत्रीय ब्राह्मण थे और उनके पिता का नाम पद्मनाभ पथा पितामह का नाम माधव था। गणकतरङ्गिणीकारलिखित इस ग्रन्थ के कुलवृतान्त सम्बन्धी श्लोक शुद्ध है। उनसे ज्ञात होता है कि इनके पिता इत्यादि के नाम क्रमश परशुराम, पद्मनाभ, माधव और जोजदेव थे और ये गोदावरी के निकट रासिण नामक स्थान मे रहते थे। वहा की पलभा ४$\frac{1}{2}$ थी। अहमदनगर के दक्षिण रासिन नाम का एक गाव है, पर उसकी पलभा ४ के लगभग है और वह गोदा के पास नही बल्कि महाराष्ट्र मे भीमा के पास है। वश-वृत्तान्त मे आरम्भ मे ही लिखा है—

कुल और स्थान

ईश्वरकौबेरजजौदाससमस्तज्जजोग्रजन्मासीत्।
श्रीजोजदेवनामा गौतमगोत्र स दैवज्ञ ॥

इससे ये गुजराती ज्ञात होते है। सस्कृत और गुजराती भाषा मे लिखा हुआ जातकसार नामक एक प्राचीन ग्रन्थ मुझे मिला। उसमे महादेवी सारणी द्वारा ग्रह-साधन करने का आदेश किया है। महादेवी सारणी की डेक्कनकालेजसग्रहवाली प्रति अहमदाबाद मे मिली है। उसका टीकाकार भी गुजर देश के पास का ही है और स्वय महादेव ने भी चरसाधनार्थ पलभा ४$\frac{1}{2}$ ली है, अत इनका मूलस्थान गुजरात मे सूरत के पास रहा होगा और ये स्वय अथवा इनके कोई पूर्वज बाद मे रासिन मे आकर बसे होगे। इनका ग्रन्थ गुजरात मे बहुत दिनो तक प्रचलित रहा होगा।

विषय

इस ग्रन्थ मे लगभग ४३ पद्य है। उनमे केवल मध्यम और स्पष्ट ग्रहो का साधन है। क्षेपक मध्यम-मेषसक्रान्तिकालीन है और वर्षगण द्वारा मध्यमग्रहसाधन करने के लिए सारणियां बनायी है। इससे ग्रहसाधन मे बडी सुविधा होती है। ग्रहगति-स्थिति राजमृगाङ्कोक्तबीजसंस्कृत-ब्रह्मसिद्धान्ततुल्य है। टीकाकार ने अन्त मे अपना वश-वृत्तान्त लिखा है। उसका कुछ भाग यह है—

टीका

वर्षे नेत्रनवागभू १६९२ परिमिते ज्येष्ठस्य पक्षे सिते-
ऽष्टम्या सद्गुण पृथक्यमन्नरयु (?) पद्मावतीपत्तने।
राजा ह्युत्करवैरिनागदमनो राठोडवशोद्भव

श्रीमान् श्रीगर्जसिंहभूपतिवरोऽस्ति श्रीमरोर्मण्डले ।।
जैने शासन एवमञ्चलगणे . ।।

इससे ज्ञात होता है कि टीकाकार जैन थे। इन्होंने अपना नाम धनराज लिखा है। टीका में सिरोही (उज्जयिनी से ३० योजन पश्चिम) का देशान्तरसाधन किया है, अतः इनका निवासस्थान वही रहा होगा। टीका का नाम महादेवीदीपिका है। उसकी टीकासंख्या १५०० लिखी है। उपर्युक्त श्लोक का १६९२ विक्रमसंवत् है अर्थात् टीका-काल शक १५५७ है।

महादेवकृत कामधेनुकरण, शक १२८९

गोदातीरस्थ त्र्यम्बक की राजसभा के मान्य कौडिन्य गोत्रीय बोपदेव के पुत्र महादेव ने ब्राह्म और आर्यपक्षो के अनुसार कामधेनु ग्रन्थ बनाया है। इसमें ३५ श्लोक और सारणिया है। वर्षगति और क्षेपक दिये है। इसमे लिखा है कि २२ कोष्ठको के पट मे तिथिसिद्धि होती है।

नार्मद

सूर्यसिद्धान्त-विचार मे लिख चुके है कि नार्मद ने वर्तमान सूर्यसिद्धान्त की टीका की होगी अथवा उसके आधार पर कोई ग्रन्थ बनाया होगा। इनका काल शक १३०० के आसपास होगा। इसका विवेचन नीचे दामोदरीय भटतुल्यविवेचन मे किया है। इनकी टीका या ग्रन्थ सम्प्रति उपलब्ध नही है।

पद्मनाभ

ये उपर्युक्त नार्मद के पुत्र है। इनका काल लगभग शक १३२० है। इसका विवेचन नीचे किया है। इनका यन्त्ररत्नावली नाम का एक ग्रन्थ है। उसका द्वितीय अध्याय ध्रुवभ्रमयन्त्र मेरे पास है। उस पर ग्रन्थकार की ही टीका है। इस ग्रन्थ का विवेचन आगे यन्त्रप्रकरण मे करेगे।

दामोदर

इनका भटतुल्य नामक एक ग्रन्थ है। उसमे आरम्भवर्ष शक १३३९ है। ग्रन्थकार ने लिखा है—

दामोदर. श्रीगुरुपाद्मनाभपादारविन्दं शिरसा प्रणम्य ।
प्रत्यब्दशुद्धयार्यभटस्य तुल्यं विदा मुदेऽहं करणं करोमि ।।२।।

मध्यमाधिकार

श्रीनर्मदादेवसुतस्य मत्पितुः श्रीपद्मनाभस्य समस्य भावतः।
यस्मात् सुसम्पन्नमनुग्रहाद् गुरोर्भूयादिहैतत्पठनात् प्रद श्रियः ॥१६॥

सच्छिष्यैरसकृत् कृतप्रणतिभिः सम्प्रार्थितो बीजविद्
वक्त्राम्भोजरविश्चकार करणं दामोदरः सत्कृती ॥१६॥

उपसंहार

इससे ज्ञात होता है कि दामोदर के पिता का नाम पद्मनाभ था और वे ही इनके गुरू भी थे और इनके पितामह का नाम नर्मदादेव था। उपर्युक्त ध्रुवभ्रमयन्त्र नामक ग्रन्थ के आरम्भ मे ग्रन्थकार ने लिखा है—

श्रीनर्मदानुग्रहलब्धजन्मनः पादारविन्दं जनकस्य सद्गुरोः।
नत्वा त्रियामासमयादिबोधक ध्रुवभ्रमं यन्त्रवरं ब्रवीम्यथ ॥१॥

और अन्त में लिखा है—

इति श्रीनार्मदात्मजश्रीपद्मनाभविरचितयन्त्ररत्नावल्या
स्वविवृतौ ध्रुवभ्रमणाधिकारो द्वितीयः ॥

इससे निःसंशय प्रतीत होता है कि पद्मनाभ के पिता नार्मद थे और ये पद्मनाभ दामोदर के पिता थे। दामोदर का ग्रन्थ शक १३३६ का है। अत. पद्मनाभ के ग्रन्थ का काल शक १३२० के लगभग होगा। शके १४६० के जातकाभरण नामक ग्रन्थ में ध्रुवभ्रमयन्त्र का उल्लेख है, इससे भी इस अनुमान की पुष्टि होती है। यद्यपि उपर्युक्त श्लोक से यह निःसंशय सिद्ध नही होता कि रङ्गनाथ ने जिस नार्मद का श्लोक लिखा है वे ही पद्मनाभ के पिता है, पर नामसादृश्य अवश्य है। पद्मनाभ के लेख से ज्ञात होता है कि उनके पिता नार्मद विद्वान् थे और वे ही उनके गुरू भी थे, अत. उनका ग्रन्थकार होना असम्भव नहीं है। रङ्गनाथकथित नार्मद रङ्गनाथ (शक १५२५) से प्राचीन होने चाहिए। इससे भी उपर्युक्त कथन में कोई विरोध नही आता और सब से अधिक महत्व की बात यह है कि दामोदर ने अपने भटतुल्य ग्रन्थ मे वार्षिक अयनगति ५४ विकला मानी है। यह गति सूर्यसिद्धान्त की है। अब तक वर्णित किसी भी पौरुष ग्रन्थकार ने इतनी अयनगति नही मानी हैं और दामोदर ने मानी है, अतः इनके पितामह नार्मद ही रङ्गनाथकथित सूर्यसिद्धान्त के टीकाकार होंगे—इसमे सन्देह नही है। इनकी टीका का काल शक १३०० होगा।

काशी की छपी हुई पुस्तक मे ग्रन्थारम्भकाल शक १४०० लिखा है। मुझे इसका अन्तः या बाह्य कोई प्रमाण नही मिला पर इसे असत्य कहने का भी कोई कारण दिखाई नही देता। दिवाकर ने शक १५४० के आसपास इस पर मकरन्दविवरण नाम की टीका की है। इस ग्रन्थ द्वारा तिथ्यादिकों की घटी-पल और सब ग्रह बहुत थोडे परिश्रम से आते हैं। ग्रन्थविस्तार होने के भय से यहा इसकी पद्धति नही लिखी है। सम्प्रति उत्तर भारत मे काशी, ग्वालियर इत्यादि अनेक स्थानों मे इससे पञ्चाङ्ग बनते है और वे उन प्रदेशों मे चलते भी है। यह ग्रन्थ काशी में छपा है। गोकुलनाथ दैवज्ञ ने शक १६८८ मे इसकी सारणियो की उपपत्ति लिखी है, वह भी छपी है। मकरन्द ने सूर्यसिद्धान्त मे बीजसंस्कार दिया है, यह पहिले लिख ही चुके हैं।

केशव (द्वितीय)

सुप्रसिद्ध ज्योतिषी, ग्रहलाघवकार गणेश दैवज्ञ के ये पिता थे। ये स्वय भी बहुत बडे विद्वान् थे। इनके पुत्र गणेश दैवज्ञ ग्रहगणित के इनसे बडे पण्डित हुए, यह बात 'सवत्र विजयं चेच्छेत् शिष्यादिच्छेत् पराजयम्' न्याय से इनके लिए बड़ी भूषणास्पद है। यदि ये स्वयम् विद्वान् न होते तो इनके पुत्र का इतना बडा पण्डित होना असम्भव था। इनका ग्रहकौतुक नामक एक करणग्रन्थ है, उसमे आरम्भवर्ष शक १४१८ है। अतः इनका काल इसी के आसपास है। मुहूर्ततत्त्व के अन्त मे इन्होने लिखा है:—

... ...गुरुवैजनाथचरणद्वन्द्वे रत केशव.।
नन्दिग्रामगतः सुतस्तु कमलज्योतिर्विदग्र्यस्य..।

इसकी टीका में इनके पुत्र गणेश दैवज्ञ ने लिखा है—'नन्दिग्रामगतः अपरान्तदेशे पश्चिमसमुद्रस्य पूर्वतीरस्थितो नन्दिग्राम. प्रसिद्धस्तत्र गतः निवासीत्यर्थ.।' इससे ज्ञात होता है कि इनके पिता का नाम कमलाकर था और वे भी बहुत बडे ज्योतिषी थे, इनके गुरु का नाम वैजनाथ था और इनका निवासस्थान समुद्र के किनारे कोकण प्रान्त मे नन्दिग्राम नामक गांव था। सम्प्रति यह गाव जजीरा रियासत में है और उसे नादगांव कहते है। यह बम्बई से लगभग २० कोस दक्षिण है। गणेश दैवज्ञ लिखित वंशवृत्तान्त से ज्ञात होता है कि इनका गोत्र कौशिक था और केशव की पत्नी का नाम लक्ष्मी था। वंशवृत्तान्त इनके अन्य ग्रन्थो मे भी है। इनके ग्रन्थो का नाम गणेश दैवज्ञ ने मुहूर्ततत्त्व की टीका में इस प्रकार लिखा है—

ग्रन्थ

सोपाय ग्रहकौतुक खगकृति तच्चालनाख्य तिथेः,
सिद्धिं जातकपद्धति सविवृति तार्तीयके पद्धतिम् ।
सिद्धान्तेऽप्युपपत्तिपाठनिचय मौहूर्ततत्त्वाभिध,
कायस्थादिजधर्मपद्धतिमुख श्रीकेशवार्योऽकरोत् ।।

ग्रहकौतुकतट्टीकावर्षग्रहसिद्धितिथिसिद्धिग्रहचालनगणितदीपिका-जातकपद्धतितट्टीकाताजिकपद्धतिसिद्धान्तपाठकायस्थाद्याचारपद्धतिकुण्डाष्ट-लक्षणादिग्रन्थजातनिबन्धानन्तरमह केशवो मुहूर्ततत्त्व वक्ष्ये ।

इनमे से जातकपद्धति और ताजिकपद्धति ग्रन्थ सम्प्रति प्रसिद्ध है । इन्हे 'केशवी' भी कहते है और बहुत से ज्योतिषी इनका उपयोग करते है । दोनो ग्रन्थ छप चुके है । मुहूर्ततत्त्व भी छपा है। शक १४९३ मे देवगिरि (दौलताबाद) के पास निर्मित मुहूर्त-मार्तण्ड नामक ग्रन्थ में केशवी जातकपद्धति का और शक १५२५ मे काशी मे रङ्गनाथ की बनायी हुई सूर्यसिद्धान्त की टीका मे मुहूर्ततत्त्व का उल्लेख है। इससे ज्ञात होता है कि केशव के थोडे ही दिनों बाद इस देश मे इन ग्रन्थों का पर्याप्त प्रचार हो गया था।

वेध

यद्यपि इनके पुत्र के ग्रन्थो के कारण इनके ग्रन्थ दब गये तथापि वेध के विषय में इनकी योग्यता बहुत बडी थी। ऐसे ज्योतिषी हमारे देश मे बहुत कम हुए है। ग्रहकौ-तुक की स्वकीय मिताक्षरा टीका मे इन्होने लिखा है—

ब्राह्मार्यभटसौराद्येष्वष्टापि ग्रहकरणेषु बुधशुक्रयोर्महदन्तर अङ्कतया दृश्यते । मन्दे आकाशे नक्षत्रग्रहयोगे उदयेऽस्ते च पञ्चभागा अधिका. प्रत्यक्षमन्तर दृश्यते । ... एवं क्षेपेष्वन्तरं वर्षभोगेष्वपि अन्तरमस्ति। एवं बहुकाले बह्वन्तर भविष्यति। यतो ब्राह्माद्येष्वपि भगणानां सावनादीनाञ्च बह्वन्तरं दृश्यते। एवं बहुकाले बह्वन्तर भवत्येव।...एव बह्वन्तरं भविष्यै सुगणकै· नक्षत्रयोगग्रहयोगोदयास्तादिभिर्वर्त-मानघटनामवलोक्य न्यूनाधिकभगणाद्यैर्ग्रहगणितानि कार्याणि। यद्वा तत्कालक्षेपक-वर्षभोगान् प्रकल्प्य लघुकरणानि कार्याणि।. एवं मया परमफलस्थाने चन्द्रग्रहण-तिथ्यन्ताद्विलोमविधिना मध्यश्चन्द्रो ज्ञातः। तत्र फल ह्रासवृद्धयभावात्। केन्द्रगोलादि-स्थाने ग्रहणतिथ्यन्ताद्विलोमविधिना चन्द्रोच्चमाकलितम्। तत्र फलस्य परमह्रास-वृद्धित्वात्। तत्र चन्द्रः सूर्यपक्षात् पञ्चकलोनो दृष्टः। उच्चं ब्रह्मपक्षाश्रितम्। सूर्यः

सर्वपक्षेऽपीषदन्तर: स सौरो गृहीत.। अन्ये ग्रहा नक्षत्रग्रहयोगग्रहयोगास्तोदयादिभिर्वर्तमानघटनामवलोक्य साधिता'। तत्रेदानी भौमेज्यौ ब्राह्मपक्षाश्रितौ घटत:। ब्राह्मो बुध:। ब्राह्मार्यमध्ये शुक्र.। शनि: पक्षत्रयात् पञ्चभागाधिको दृष्ट: । एवं वर्तमानघटनामवलोक्य लघुकर्मणा ग्रहगणित कृतम् ।

स्वयं किये हुए वेधो का ऐसा वर्णन मुझे अन्य किसी भी ज्योतिषी के ग्रन्थ मे नही मिला। अधिक क्या, केशव के विषय मे मेरी तो यहा तक धारणा है कि मूल-सूर्यसिद्धान्तकार, प्रथम आर्यभट, ब्रह्मगुप्त और भोज के ज्योतिषियो को छोड़कर इनके सदृश ज्योतिषी दूसरा हुआ ही नही। इन्होने वेधदिवस और वेध द्वारा ग्रहानयनप्रकार इत्यादि बाते उपर की भॉति लिखी होती तो उनसे बड़ा लाभ होता, परन्तु दु.ख है कि हमारे देश के ज्योतिषियो मे इन सब बातो को ग्रन्थ मे लिख रखने की पूर्वपरम्परा ही नही है। ग्रहकौतुक द्वारा गणित करने से मुझे ज्ञात हुआ कि इन्हे ग्रहो का जैसा अनुभव हुआ तदनुसार इन्होने ग्रहकौतुक मे ग्रहो के क्षेपक और वर्षगतिया लिखी है। ग्रहकौतुक और जातकपद्धति की इन्होने स्वय टीकाए की हैं।

गणेश दैवज्ञ

ये एक बहुत बडे ज्योतिषी हो चुके है। सम्प्रति ,सम्पूर्ण भारत के जितने प्रदेशों मे इनके ग्रहगणित-ग्रन्थ प्रचलित है, उतने अन्य किसी के भी नही। इनके पिता का नाम केशव, माता का लक्ष्मी, गोत्र कौशिक और वसतिस्थान पश्चिमसमुद्रतटवर्ती नादगाव था, इत्यादि बाते ऊपर लिख ही चुके है। इनके ग्रहलाघव की टीका मे विश्वनाथ दैवज्ञ ने लिखा है—श्रीमद्गुरुणा गणेशदैवज्ञेन ये ग्रन्था: कृतास्ते तद्भ्रातृपुत्रेण नृसिंहज्योतिर्विदा स्वकृतग्रहलाघवटीकाया श्लोकद्वयेन निबद्धा:। ते यथा—

ग्रन्थ

कृत्वादौ ग्रहलाघवं लघुबृहत्तिथ्यादिचिन्तामणी
सत्सिद्धान्तशिरोमणौ च विवृति लीलावतीव्याकृतिम् ।
श्रीवृन्दावनटीकिका च विवृति मौहूर्ततत्त्वस्य वै
सत्-श्राद्धादिविनिर्णयं सुविवृति छन्दोर्णवाख्यस्यवै ।।१।।
सुधीरञ्जनं तर्जनीयन्त्रकञ्च सुकृष्णाष्टमीनिर्णयं होलिकाया: ।
लघूपायपातस्तथान्या: ... ...।।

इससे ज्ञात होता है कि इन्होने ग्रहलाघव, लघुतिथिचिन्तामणि, बृहत्तिथिचिन्तामणि, सिद्धान्तशिरोमणिटीका, लीलावतीटीका, विवाहवृन्दावनटीका, मुहूर्ततत्त्वटीका, श्राद्धनिर्णय, छन्दोर्णवटीका, तर्जनीयन्त्र, कृष्णाष्टमीनिर्णय, होलिकानिर्णय, लघूपायपात (पातसारणी) इत्यादि ग्रन्थ बनाये थे। विवाहवृन्दावन की टीका मे इन्होने स्वय भी अपने कुछ ग्रन्थो के नाम लिखे है। वे ये है—

कृत्वादौ ग्रहलाघवाख्यकरण तिथ्यादिसिद्धिद्वय
श्लोकैः श्राद्धविधिं सवासनतया लीलावतीव्याकृतिम्।
सप्रक्षेपमुहूर्ततत्त्वविवृतिं पर्वादिसन्निर्णयं
तस्मान्मङ्गलनिर्णयाद्यथकृता वैवाहसद्दीपिका ॥

काल

इसमे ऊपर की अपेक्षा पर्वनिर्णय एक अधिक ग्रन्थ है। ये नाम कालक्रमानुसार लिखे है, यह बात नही है, तथापि ग्रहलाघव इनका सर्वप्रथम ग्रन्थ ज्ञात होता है। इसमे आरम्भवर्ष शक १४४२ है। इस समय ये २०–२२ वर्ष के अवश्य रहे होगे अर्थात् इनका जन्मकाल लगभग शक १४२० है। लघु चिन्तामणि ग्रन्थ शक १४४७ का है। लीलावतीटीका शक १४६७ की है। पातसारणी से उसका रचनाकाल शक १४६० के बाद ज्ञात होता है। विवाहवृन्दावन की मैने एक मुद्रित प्रति देखी। उसमे टीका-काल बड़ी विचित्र रीति से लिखा है। वह यह है—

हायनार्क १२ लघुतुल्यमायनं तद्युती रस ६ युता युतिर्भवेत्।
सापि सागर ४ युतोडुपोडुक तत्त्रिनेत्र २३ लव एव पक्षकः ॥१॥
पक्ष. सपक्षो २ यदि वासरः स्यात् तदीयरामां ३ शसमस्तिथिः स्यात्।
यच्चाखिलैक्यं[1] कुयमाहत तत् नन्दाधिकं मत्शकवत्सराः स्युः॥
तदयनतिथिपक्षास्तुल्यता यान्ति यस्मिन्... ... ...॥

इससे ज्ञात होता है—शक १५००, बहुधान्य संवत्सर, उदगयन, माघ शुक्ल १ भौमवार, धनिष्ठानक्षत्र, परिघयोग—मे यह टीका समाप्त हुई। शक १५०० माघ शुक्ल १ का गणित करने से उपर्युक्त वार, नक्षत्र और योग ठीक मिलते है।

1. संवत्० अयन योग नक्षत्र पक्ष वासर तिथि मास
१२+१+१६+२३+१+३+१+११ +२१+६=१५००

गणेशकृत विवाहवृन्दावन की टीका का काल यदि यही है तो उस समय इनकी अवस्था ८० वर्ष की रही होगी। १६ वर्ष की अवस्था मे ग्रहलाघव की रचना मानने से टीका के समय अवस्था ७५ वर्ष आती है। यह असम्भव नही है तथापि मुझे कोकण मे दापोली तालुके के मुरुड़ नामक अपने गांव मे रघुनाथ जोशी के पास विवाहवृन्दावन की टीका की एक हस्तलिखित प्रति मिली है, उसमे एक सरल श्लोक मे लिखा है—'रसनगमनुतुल्ये शाक आनन्दवर्षे' (शक १४७६ आनन्द नामक सवत्सर मे) टीका की है। यह लेख विश्वसनीय है। उपर्युक्त श्लोक दूसरे किसी का होगा।

ग्रहलाघव

ग्रहलाघव में आरम्भ-वर्ष शक १४४२ है। इसके क्षेपक शक १४४१ अमान्त फाल्गुन कृष्ण ३० सोमवार (ता० १९ मार्च, सन् १५२०) के सूर्योदय के है। वे ये है—

	रा०	अं०	क०		रा०	अं०	क०
सूर्य	११	१९	४१	बुधशीघ्रकेन्द्र	८	२९	३३
जन्द्र	११	१९	६	गुरु	७	२	१६
चन्द्रोच्च	५	१७	३३	शुक्रशीघ्रकेन्द्र	७	२०	९
राहु	०	२७	३८	शनि	९	१५	२१
मंगल	१०	७	८				

कौन-सा ग्रह किस ग्रन्थ का आकाश में ठीक मिलता है, इसके विषय मे गणेश दैवज्ञ ने लिखा है—

> सौरोऽर्कोऽपि विधूच्चमङ्ककलिकोनाब्जो गुरुस्त्वार्यजो-
> ऽसृग्राहू च कुजज्ञकेन्द्रकमथार्यः सेषुभाग. शनि ।
> शौक्रं केन्द्रमजार्यमध्यगमितीमे यान्ति दृक्तुल्यताम् ।।

मध्यमाधिकार

इसका अभिप्राय यह है कि वर्तमान सूर्यसिद्धान्तानुसार सूर्य और चन्द्रोच्च मिलते है। उसके चन्द्रमा मे से ९ कला घटा देनी चाहिए। आर्यपक्षीय ग्रन्थ करणप्रकाश द्वारा लाये हुए गुरु, मंगल और राहु मिलते हैं। उसके शनि में ५ अंश जोड़ देना चाहिए। ब्राह्मपक्षीय ग्रन्थ करणकुतूहल से लाया हुआ बुधकेन्द्र ठीक होता है। करणप्रकाश

और करणकुतूहल द्वारा लाये हुए शुक्रकेन्द्रो को जोड़कर आधा करने से वह ठीक होता है। इस कथनानुसार शके १४४१ फाल्गुन कृष्ण ३० सोमवार के प्रातःकाल के ग्रह लाने से इन क्षेपको से ठीक मिलते है, परन्तु गणेश ने विकलाएँ बिलकुल छोड़ दी है और कही-कही कलाएँ भी कुछ न्यूनाधिक कर दी है, इससे कही-कही कलाओ मे थोड़ा अन्तर पड़ गया है। उपर्युक्त ग्रह लाने मे करणप्रकाश का अहर्गण १५६३३४ और करणकुतूहल का १२३११३ आता है,[1] इससे ज्ञात हो सकता है कि यह गणित करना कितना कठिन है। गणेश ने अहर्गण द्वारा ही ग्रहसाधन करने की रीति दी है, पर उसमे ऐसी युक्ति की गयी है जिससे वह अधिक बढ़ने न पाये। वह युक्ति यह है—११ वर्षो मे लगभग ४०१६ दिन होते है। इतने अहर्गण का एक चक्र मान लिया है और इतने दिनो मे ग्रहो की जितनी मध्यम गति होती है उसका नाम ध्रुव रख दिया है। इस गति का सस्कार[2] करके मध्यम ग्रह लाये गये हैं। इस युक्ति से अहर्गण कभी भी ४०१६ से अधिक नही होता।

विशेषता

ग्रहलाघव की एक और विशेषता यह है कि इसमे ज्याचाप का सम्बन्ध बिलकुल नही रखा गया है और ऐसा होने पर भी प्राचीन किसी भी करणग्रन्थ से यह कम सूक्ष्म नही है—यह नि.सकोच कहा जा सकता है। आधुनिक अग्रेजी ग्रन्थो मे प्रत्येक अंश की ही नही प्रत्येक कला की भुजज्या इत्यादि दी रहती है। कुछ तो ऐसे भी ग्रन्थ बन गये हैं जिनमे प्रत्येक विकला की भुजज्या दी है। हमारे सिद्धान्तों मे प्रति पौने चार अश की भुजज्याएँ है अर्थात् उनमे सब २४ ज्यापिण्ड है, परन्तु करणग्रन्थों मे बहुधा ९ (प्रत्येक १० अश पर) अथवा इससे भी कम ज्यापिण्ड होते है। ग्रहलाघव मे भुज-ज्याओं का प्रयोग न होते हुए भी उससे लाया हुआ स्पष्ट सूर्य उन करणग्रन्थो की अपेक्षा सूक्ष्म होता है जिनमें ये है, इतना ही नही, कभी-कभी तो २४ ज्यापिण्डो वाले सिद्धान्तग्रन्थों से भी सूक्ष्म आता है। इस ग्रन्थ मे गणेश ने सभी पदार्थों को सुलभ रीति से लाने का प्रयत्न किया है, इस कारण कुछ विषयो में स्थूलता तो अवश्य आ

---

१. मेरी तरह किसी भी टीकाकार ने यह नहीं दिखाया है कि गणेश ने मुकामुकअ ग्रह अमुक ग्रन्थ से लिये है।

२. ११ वर्षों में दिवस कुछ न्यूनाधिक होते हैं। वे छूटने न पायें, इसके लिए युक्ति की है। चक्रसंबंधी ग्रहगति चक्रशुद्ध की होने के कारण उसे क्षेपक में से घटा कर अहर्गणागत गति उसमें जोड़ने से इष्टकालीन मध्यम ग्रह आता है।

गयी है, पर अन्य करण ग्रन्थों की भी यही स्थिति है। उपसंहार मे इन्होने लिखा है—

पूर्वे प्रौढतरा. क्वचित् किमपि यच्चक्रुर्धनुर्ज्ये विना,
ते तेनैव महातिगर्वकुभृदुच्छृङ्गेऽधिरोहन्ति हि।
सिद्धान्तोक्तमिहाखिल लघु कृत हित्वा धनुर्ज्ये मया
तद्गर्वो मयि मास्तु कि न यदह तच्छास्त्रतो वृद्धधी· ।।

इसका तात्पर्य यह है कि प्राचीन प्रौढतर गणक कही-कही थोडा-सा ही गणितकर्म[1] ज्याचाप के बिना करके गर्व के पर्वत के शिखर पर चढ गये है तब सिद्धान्तोक्त सब कर्म बिना ज्याचाप के करने का अभिमान मुझे क्यो न हो, परन्तु वह मुझे नही है क्योकि मैंने उन्ही के ग्रन्थो द्वारा ज्ञान प्राप्त किया है। गणेश का यह कथन कि मैंने सिद्धान्तोक्त सब विषय ग्रहलाघव मे दिये है, सत्य है और इसी कारण ग्रहलाघव सिथान्त-रहस्य कहा जाता है। मैंने बहुत से करणग्रन्थ देखे है, उनमे अधिक ऐसे हैं जिनमे केवल ग्रहस्पष्टीकरण मात्र है। करणकुतूहलादि केवल तीन-चार करण ऐसे है जिनसे सिद्धा-न्तोक्त अधिकाश कर्म किये जा सकते है, पर उनमे ग्रहलाघव जितना पूर्ण कोई नही है। इस पर शक १५०८ की गङ्गाधर की, शक १५२४ की मल्लारि की और लगभग शक १५३४ की विश्वनाथ की टीका है। कुछ और भी टीकाएँ है। बार्शी मे मुझे शक १६०५ मे लिखी हुई ग्रहलाघव की एक पुस्तक मिली। इससे ज्ञात होता है कि इसके बनने के थोडे ही दिनो बाद दूर-दूर तक इसका प्रचार हो गया था। सम्प्रति सम्पूर्ण महाराष्ट्र, गुजरात और कर्नाटक के अधिकाश भागो मे इसी द्वारा गणित किया जाता है। काशी, ग्वालियर, इन्दौर इत्यादि प्रान्तो के दक्षिणी लोग इसी से गणित करते है।[2] अन्य प्रान्तों मे भी इसका पर्याप्त प्रचार मालूम होता है। अत्यन्त सरल गणित-पद्धतियुक्त तथा सिद्धान्त की सभी आवश्यकताओ को पूर्ण करने वाले इस ग्रन्थ का सर्वत्र शीघ्र ही प्रचलित हो जाना और इसके कारण प्राचीन करणग्रन्थों का दब जाना बिलकुल स्वाभाविक है।

ग्रहशुद्धि

आधुनिक यूरोपियन ग्रन्थो द्वारा लाये हुए ग्रहो से ग्रहलाघवोक्त ग्रहों की सूर्य

---

१. करणकुतुहल के त्रिप्रश्नाधिकार में भास्कराचार्य ने लिखा है—इति कृतं लघु-कार्मुकशिञ्जिनीग्रहणकर्मविना द्युतिसाधनम्।

२. इन्दौर और ग्वालियर के सरकारी पञ्चांग ग्रहलाघव और तिथिचिन्तामणि से बनते हैं और वहां सर्वत्र प्रायः वे ही चलते है। हैदराबाद रियासत के अधिकांश भागों मे ग्रहलाघवीय पञ्चांग ही चलता है।

सम्बन्धी तुलना करने पर शक १४४२ के आरम्भ मे ग्रहलाघव के मध्यम ग्रह कितने. न्यूनाधिक आते हैं, यह नीचे दिखाया है—

		अंश	कला			अंश	कला
सूर्य		०	०	बुधशीघ्रोच्च	+	८	२१
चन्द्र	—	०	२	गुरु	+	०	५८
चन्द्रोच्च	+	१	५५	शुक्रशीघ्रोच्च	+	१	२२
राहु	—	०	१७	शनि	+	१	२६
मंगल	+	०	४४				

यहां बुध मे अधिक त्रुटि है। शुक्र, शनि और चन्द्रोच्च में १ से २ अंश तक और शेष मे एक अंश से कम ही अशुद्धि है। चन्द्रमा तो बहुत ही सूक्ष्म है। राहु भी अधिक अशुद्ध नही है। इनके पिता केशव के वर्णन में लिख ही चुके है कि चन्द्रमा और राहु सूर्यग्रहण द्वारा लाये गये है। बुध वर्ष मे बहुत थोडे ही दिन दिखाई देता है इससे उसके वेध का अवसर कम मिलता है। मालूम होता है, इसी कारण उसमे अधिक अशुद्धि हुई है। और भी ध्यान देने योग्य बात यह है कि ये अशुद्धिया मध्यम ग्रहो की है। वेध द्वारा स्पष्टग्रह आते है। उनमे ग्रहलाघवकाल में इससे कम अशुद्धि रही होगी, इसका विचार ऊपर बेटली की पद्धति के विवेचन मे कर चुके है। आगे पञ्चाङ्ग-विचार मे यह दिखाया है कि सम्प्रति ग्रहलाघवागत स्पष्ट ग्रहो मे कितना अन्तर पड़ता है।

गणेश ने लिखा है कि अमुक ग्रन्थ के अमुक ग्रह को इतना न्यूनाधिक कर देने से वह दृक्तुल्य होता है, उसमें उन्होंने शनि मे बहुत अधिक अर्थात् ५ अंश का अन्तर किया है, अन्य ग्रहों मे भी कुछ कलाएँ न्यूनाधिक की है। इससे स्पष्ट है कि पुराने ग्रन्थो का आधार केवल नाम मात्र के लिए लेकर इन्होंने अपने समय की अनुभूत ग्रह-स्थिति ली है।

प्राचीन ग्रन्थो के ग्रहो मे अन्तर पड़ता देखकर इनके पिता केशव ने वेध करके उनमें चालन देने की बहुत कुछ तैयारी की थी और तदनुसार 'ग्रहकौतुक' ग्रन्थ भी बनाया था। गणेश दैवज्ञ ने लघुचिन्तामणि में लिखा है कि उसमें भी कुछ अन्तर पडते देखकर मैंने ग्रहशुद्धि की। ग्रहकौतुक और ग्रहलाघव की तुलना से भी ऐसा ही ज्ञात होता है। ग्रहलाघव के उदयास्ताधिकार मे इन्होंने लिखा है—

पूर्वोक्ता भृगुचन्द्रयोः क्षणलवाः स्पष्टा भृगोश्चोनिता
द्वाभ्या तैरुदयास्तदृष्टिसमता स्याल्लक्षितैषा मया ॥२०॥

यहाँ इनका कथन यह है कि प्राचीन-आचार्यकथित शुक्र के कालांश में २ अंश कम कर देने से उदयास्त का ठीक अनुभव होता है, इसे मैंने देखा है। इन सब बातो से ज्ञात होता है कि ये स्वयं वेध करते थे। इनके विषय मे सम्प्रति कई दन्तकथाएँ प्रचलित है। कुछ लोगो का कथन है कि इनके पैरो मे भी आखे थी, जिससे इन्हे चलते समय भूमि की ओर नही देखना पड़ता था। यह बात असम्भव है तथापि इससे सिद्ध होता है कि इनका ध्यान सदा आकाश की ओर रहता था। कुछ लोग कहते है कि ये समुद्र के किनारे ऊँची शिला पर बैठकर आकाश की ओर देखते रहते थे। यह सम्भव है। कोकण मे समुद्रतट पर ऐसी बहुत-सी शिलाएँ है और वह शान्त प्रदेश वस्तुत. वेध करने योग्य है।

योग्यता

ग्रहलाघव मे केशव और गणेश दोनो के अनुभवो का उपयोग होने के कारण ग्रहकौतुक की अपेक्षा उसे अधिक ृक्प्रत्ययद होना चाहिए। कही-कही ग्रह ौतुक की गणित करने की पद्धति ग्रहलाघव की अपेक्षा सरल है पर कुछ बातो मे ग्रहलाघव की पद्धति अधिक सुविधाजनक है। मालूम होता है, इसी कारण ग्रहकौतुक का लोप और ग्रहलाघव का प्रचार हुआ। सब बातो का विचार करने से मुझे गणेश की अपेक्षा केशव की योग्यता अधिक मालूम होती है, पर ग्रहलाघव की योग्यता ग्रहकौतुक की अपेक्षा अधिक है, क्योकि उसमें पिता-पुत्र दोनो के अनुभव एकत्र हो गये है।

ग्रहलाघव मे मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, पञ्चताराधिकार, त्रिप्रश्न, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, मासग्रहण, स्थूल ग्रहसाधन, उदयास्त, छाया, नक्षत्रछाया, शृङ्गोन्नति, ग्रहयुति और महापात ये १४ अधिकार और उनमे भिन्न-भिन्न छन्दो के क्रमश. १६, १०, १७, २६, १३, १३, १६, ८, २५, ६, १२, ४, ४, १४ और सब मिलकर १८७ श्लोक है। सम्प्रति इस ग्रन्थ के १४ ही अधिकार प्रसिद्ध है, परन्तु विश्वनाथ और मल्लारि की टीकाओ मे १५ श्लोको का पञ्चाङ्गग्रहणाधिकार नामक एक और १५वाँ अधिकार है। १४ अधिकारो मे ४ ग्रहणविषयक है। अत. ग्रहणविषयक अन्य अधिकार की आवश्यकता न होने के कारण इसका लोप हुआ होगा। गणित को सरल करने की ओर अधिक झुकाव होने के कारण मालूम होता है, गणेश ने कही-कही जान-बूझकर सूक्ष्मत्व की उपेक्षा की है और इसी लिए १४ अधिकारो मे चन्द्रसूर्यग्रहणविषयक दो अधिकारो के रहते हुए भी सातवे और आठवे दो और अधिकार लिखे हैं, परन्तु वस्तुतः इनका कोई प्रयोजन नही है। ग्रहलाघव मे अन्यत्र भी कुछ श्लोक न्यूनाधिक हुए हैं। शक १६०५ में लिखी हुई ग्रहलाघव की एक प्रति मुझे बार्शी मे मिली, उसमे १५वाँ

अधिकार नही है और पञ्चताराधिकार मे ३ श्लोक अधिक है। उनमे ग्रहोदयास्त सम्बन्धी कुछ बाते है। वे श्लोक विश्वनाथ की टीका मे नही है। कुछ श्लोको मे पाठभेद है। कुछ श्लोक विश्वनाथ की टीका मे है और कृष्णशास्त्री गोडबोले की छपायी हुई पुस्तक मे नही है। चन्द्रमा का सूक्ष्म शर लाने के विषय मे एक श्लोक है। वह विश्वनाथी टीका और कृष्णशास्त्री के छपाये हुए ग्रहलाघव मे है, पर बार्शी वाली प्रति मे नही है। भिन्न-भिन्न पुस्तको में कुछ श्लोको का क्रम भिन्न-भिन्न है। नक्षत्र-छायाधिकार के एक श्लोक के विषय मे विश्वनाथ दैवज्ञ ने लिखा है कि यह गणेश दैवज्ञ के पौत्र नृसिह का है। यह बार्शी की प्रति मे नही है। इस न्यूनाधिकत्व के होते हुए भी इसके कारण ग्रन्थकार की पद्धति मे कहीं विरोध नही आया है।

अन्य ग्रन्थ

गणेश के अन्य पञ्चाङ्गोपयोगी ग्रन्थ 'बृहच्चिन्तामणि' और'लघुचिन्तामणि' है। इनसे तिथि, नक्षत्र और योग बहुत शीघ्र आते है। ग्रहलाघव द्वारा स्पष्ट रवि, चन्द्र लाकर तिथ्यादि बनाने मे सतत परिश्रम करने पर ६ मास लगेगे। मध्यमस्पष्ट सूर्य, चन्द्र लाने के लिए सारणियाँ बनायी गयी है। उनका उपयोग करने से वर्ष के तिथि, नक्षत्र, योग बनाने मे सतत परिश्रम करने पर लगभग २४ दिन लगेगे, यह मेरा अनुमान है। परन्तु लघुचिन्तामणि द्वारा मैने तिथि, नक्षत्र, योग ३ दिन मे बनाये है। बृहच्चिन्तामणि द्वारा गणित करने मे इससे भी कम समय लगेगा। ऐसा होने पर भी तिथिचिन्तामणि और प्रत्यक्ष ग्रहलाघव द्वारा लाये हुए घटी-पलो मे लगभग ३० पल से अधिक अन्तर नही पड़ता, इसकी मैने स्वयं परीक्षा की है। ग्रन्थविस्तार के भय से यहाँ तिथिचिन्तामणि के स्वरूप[1] का वर्णन नही किया है। गणेश दैवज्ञ के ग्रथ से प्राचीन इस प्रकार का कोई ग्रन्थ नही मिलता। ऊपर बतलाये ग्रन्थ मकरन्द से भी गणित शीघ्र होता है, पर उसकी पद्धति कुछ भिन्न है और वह शक १४०० का है। गणेश दैवज्ञ ने कदाचित् उसे देखा भी न रहा हो। इस स्थिति मे उन्हे तिथिचिन्तामणि सदृश अत्यन्त उपयोगी और अत्यल्प श्रमद ग्रन्थ स्वतन्त्रतया बनाने का श्रेय देना अनुचित नही है।

---

१. केरोपन्त ने अपने ग्रहसाधन कोष्ठक में प्रथम तिथिसाधन गणेशदैवज्ञ की तिथि चिन्तामणि की रीति से किया है, परन्तु उसमें उपपत्ति नहीं लिखी है। मैंने सन् १८८७ के अप्रैल की इण्डियन ऐंटिक्वरी में एक निबन्ध छपा है, उसमें उन रीतियों सम्बन्धी प्रत्येक बात की उपपत्ति लिखी है।

दोषारोपण

केरो लक्ष्मण क्षत्रे ने गणेशदैवज्ञ को यह दोष दिया है कि उन्होंने सरल युक्तियाँ बनाकर गणित सुलभ तो कर दिया...परन्तु ..इससे उसमें स्थूलता आकर... भविष्यकालीन अशुद्धि की नीव पड गयी। दूसरा परिणाम.. सिद्धान्तज्योतिष के अध्ययन और वेध का लोप हो गया, जिससे ज्योतिषियो को शास्त्र के मूल सिद्धान्तो का ज्ञान ही नही रह गया।[1] कुछ और लोग भी ग्रहलाघव मे यही दोष दिखाते है। आधुनिक यूरोपियन ग्रन्थो से तुलना करते हुए उसमें स्थूलता का दोष दिखाना मेरी समझ से ठीक नही है। पहिले यह सोचना चाहिए कि उस समय जो साधन उपलब्ध थे, उनसे कहाँ तक कार्य किया जा सकता था। प्राचीन करणग्रन्थकारों का गणित गणेश की अपेक्षा सूक्ष्म है अथवा नही और गणेश ने वेध सम्बन्धी क्या-क्या आविष्कार किये है, इत्यादि बातो का विचार करने के अब तक पर्याप्त साधन नही थे। हम समझते है, इसी से केरोपन्त और अन्य दोष देनेवालो ने इसका विचार ही नही किया। यदि वे विचार करते तो गणेश को दोष कभी न देते। सिद्धान्तग्रन्थों द्वारा अत्यन्त परिश्रमपूर्वक जो फल लाया जाता है, वही यदि थोडे श्रम में आता है तो उसे लेने मे मुझे कोई दोष नही दीखता। दूसरी बात यह कि गणेश गणित मे सौकर्य लाकर भी सूक्ष्मता में किसी भी विषय मे प्राचीन ग्रन्थकारो से पीछे नही है। सब सिद्धान्त-करण ग्रन्थो का मैंने यहाँ तक जो सम्बन्ध दिखाया है, उससे ज्ञात होगा कि केरोपन्त का यह कथन कि गणेश दैवज्ञ से अशुद्धि का आरम्भ हुआ, भ्रमपूर्ण है। यदि वे वर्ष-मान को अशुद्ध कहते है तो वह पहिले से ही अशुद्ध है। कल्पकता और क्रियावत्ता, दोनों गुणों वाले ज्योतिषी मेरी समझ से गणेश के पहले बहुत कम हुए है। वेध के विषय मे तो ये भास्कराचार्य से भी नि सशय श्रेष्ठ थे। सम्प्रति ज्योतिषसिद्धान्तग्रन्थो का अध्ययन लुप्तप्राय ही है। सम्पूर्ण ग्रहलाघव पढ़े हुए ज्योतिषी भी कम मिलते है तो फिर सिद्धान्त का तो कहना ही क्या है। परन्तु यह दोष गणश के ग्रन्थों का नही है। अग्रिम इतिहास देखने से ज्ञात होगा कि इनके पश्चात् ज्योतिषसिद्धान्त के रहस्यवेत्ता, सिद्धान्त-ग्रन्थकर्ता औरवेध करनेवाले ज्योतिषी अनेक हुए ह। सिद्धान्तशिरोमणि और लीलावती की इन्होंने स्वयं टीकाएँ की ह। उपपत्तिविषयक ग्रन्थ लिखने का कार्य भास्कराचार्य कर ही चुके थे। आधुनिक यूरोपियन अन्वेषणों का आरम्भ लगभग इन्ही के समय से हुआ है। यद्यपि यह सत्य है कि इस ओर इनकी प्रवृत्ति नही हुई, परन्तु इस देश मे उस समय लोकसमुदाय की अभिरुचि विद्या की ओर कम थी और अनेक कारणो से नवीन

---

१. केरोपन्त ग्रहसाधनकोष्ठक की प्रस्तावना का पृष्ठ २ देखिए।

शोध करने का नाम ही नहीं रह गया था। इस विषय में गणेश के माथे दोष मढ़ना अनुचित है।

टीकाएँ

ग्रहलाघव पर टापरग्रामस्थ गङ्गाधर की शक १५०८ की टीका है। मल्लारि की टीका शक १५२४ की और विश्वनाथ की शक १५३४ के आसपास की है। उसमे उदाहरण है। इस टीका को उदाहरण भी कहते है। मल्लारि और विश्वनाथ की टीकाएँ छप चुकी है। बृहच्चिन्तामणि मे कोष्ठक अधिक होने से कारण प्रायः उससे कोई गणित नही करता। लघुचिन्तामणि से गणित किया जाता है। यह छपी है। इसमे अंक ही अधिक है। क्रमशः बढते-बढ़ते इसमे अशुद्धियाँ बहुत हो गयी है। मैंने इसकी सारणियाँ प्रायः शुद्ध की है। बृहच्चिन्तामणि पर विष्णु दैवज्ञ की सुबोधिनी नाम की टीका है। उसमे उपपत्ति है। लघुचिन्तामणि पर यज्ञेश्वर नामक ज्योतिषी ने 'चिन्तामणिकान्ति' नाम की टीका की है। उसमे उपपत्ति है। मुहूर्ततत्त्व और विवाहवृन्दावन की टीकाएँ छप चुकी है। तर्जनीयन्त्र कालसाधनोपयोगी है। उसे प्रतोदयन्त्र भी कहते है। उस पर सखाराम की और सङ्गमेश्वरनिवासी गोपीनाथ की टीकाएँ है। गोपीनाथ के पिता का नाम भैरव और पितामह का राम था। इस ग्रन्थ का अधिक विवेचन यन्त्रप्रकरण मे करेगे।

ताजकभूषणकार गणेश और जातकालकार के कर्ता गणेश, ये दोनों ग्रहलाघवकार से भिन्न है।

दन्तकथाएँ

कहते है, केशव ने एक बार ग्रहण निकाला। उसमे अन्तर पड़ता देखकर वहाँ के किसी यवन राजा ने उनका उपहास किया। यह बात उन्हे बहुत बुरी लगी। वे नन्दिग्राम के गणेश के एक मन्दिर में तपस्या करने लगे। उस समय उनकी वृद्धावस्था थी। उनकी यह दशा और निष्ठा देखकर गणेश ने स्वप्न में कहा कि अब तुझसे ग्रहशोधन का कार्य नही हो सकता। इसे मै ही तेरे पुत्ररूप मे अवतार लेकर सम्पन्न करूँगा। तदनुसार उन्हें पुत्र हुआ और उसका नाम गणेश ही रखा गया। आजकल के ज्योतिषी गणेश को ईश्वरीय अवतार मानते है। इनके विषय की दो और दन्तकथाएँ ऊपर लिख चुके है। इससे इनके प्रति लोगों की पूज्य बुद्धि प्रकट होती हैं। ऐसे बुद्धिमान् पुरुषो को ईश्वरीय अंश मान लेने से मनुष्य की यह दृढ़ धारणा हो जाती

है कि मुझसे इनके जैसा महत्वशाली कार्य नही हो सकता। यही बात देश मे नवीन आविष्कारो के अभाव का बडा कारण है।

वंशज

इनके वंश मे और भी विद्वान् पुरुष हुए है। गनेश के लघुभ्राता अनन्त ने शक १४५६ जय नाम सवत्सर में वराहमिहिर के लघुजातक की टीका की है। अनन्त ने इसे उत्पल की टीका से लघुतर और सुगम कहा है। अनन्त अपने बडे भाई गणेश के ही शिष्य थे। विश्वनाथ की टीका से ज्ञात होता है कि ग्रहलाघव पर गणेश के पौत्र नृसिंह की टीका थी, पर मुझे वह कही नही मिली। गणेश के पौत्र तथा केशव के पुत्र गणेश ने सिद्धान्तशिरोमणि की शिरोमणिप्रकाश नाम की टीका की थी। वह शक १५२० के आसपास की होगी। इसी वश के रुद्र के पुत्र केशव ने शक १६२९ सर्वजित् संवत्सर मे 'लग्नकलाप्रदीप' नामक ग्रन्थ बनाया है।

कल्पद्रुमकरण

करणकुतूहल की शक १४८२ की एक टीका में इस करण का उल्लेख है। उस टीका से ज्ञात होता है कि उसे रामचन्द्र नामक ज्योतिषी ने बनाया है और उन्होने करणकुतूहल मे बीजसंस्कार दिया है। आगे वर्णित दिनकर और श्रीनाथ के ग्रन्थों के रामबीज के अक उस टीकाकार के दिये हुए अको से भिन्न है, अतः रामबीज उससे भिन्न होगा।

लक्ष्मीदास, शक १४२२

इन्होंने भास्कराचार्य के सिद्धान्तशिरोमणि के गणिताध्याय और गोलाध्याय पर गणिततत्वचिन्तामणि नाम्नी टीका की है। उसकी ग्रन्थसंख्या ८५०० है। उसमें उपपत्ति और उदाहरण है। इनका गोत्र उपमन्यु, पिता का नाम वाचस्पति मिश्र और पितामह का नाम केशव था। मुख्य उदाहरण मे इन्होंने वर्तमान शक १४२२ लिखा है। ग्रहण का उदाहरण कलिगतवर्ष ४५९९ (शक १४२०) का है। टीका करने का कारण इन्होंने लिखा है—

शिरोमणिविबोधने सुजननागनाथेरित: सुहृद्गुणगणाकरप्रगुणदेवनाथार्थित:।
हितैरनघराघवैरपि निजानुजोर्वीधरप्रियप्रतिविधैषयास्मि विविधप्रयत्नोन्मुख:।।

ये उत्तम कवि भी ज्ञात होते है।

ज्ञानराज, शक १४२५
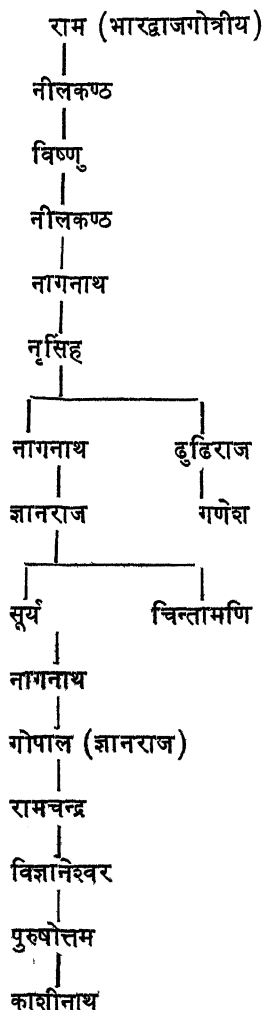
ज्ञानराज का जन्म एक ऐसे प्रसिद्ध विद्वत्कुल मे हुआ था जिनकी विद्वत्परम्परा अभी तक चल रही है। मुझे शक १८०७ में बार्शी मे सम्प्रति मोगलाई के बीड नामक स्थान के निवासी, इस वंश के काशीनाथ शास्त्री नामक एक विद्वान् मिले थे। उनका बतलाया हुआ ज्ञानराज का थोड़ा सा कुलवृत्त मैंने लिख रखा था। उसे ज्ञानराज के कुलवृत्त से मिलता देखकर सम्प्रति (शक १८१७) उनसे उसके विषय मे और बाते पूछी। उन्होने कुछ और बातें और वंशवृक्ष लिख भेजा। उससे, आफ्रेचसूची मे दिये हुए वंशवृत्त से और स्वयं प्राप्त किये हुए साधनों के आधार पर मैंने पार्श्वस्थित वशावली लिखी है। इसमे आरम्भ के पाँच पुरुष केवल आफ्रेचसूची के आधार पर लिखे है। उसमे भी उस सूची मे तीन स्थानो के लेखो मे थोडा पूर्वापर विरोध है। मुझे जो नाम सुसङ्गत ज्ञात हुए वे ही लिखे है। आफ्रेचसूची मे लिखा है कि प्रथम पुरुष राम देवगिरि के राजा राम की सभा मे रहते थे। काशीनाथ शास्त्री के भेजे हुए वंशवृक्ष मे नृसिह के पिता का नाम दैवज्ञराज है और वही से आरम्भ हुआ है। मालूम होता है, नागराज अथवा उनके किसी पूर्वपुरुष की दैवज्ञराज उपाधि थी।[1]

१. बाद में भेजे हुए काशीनाथ शास्त्री के एक पत्र का शारांश यह है—'सूर्यादिकों के जन्म-मरण शक—सूर्य १४२९-१५१०, नागनाथ १४८०-१५३७, गोगाल १५४५-९०, ज्ञानराज जन्म १५९५, रामभरण १७३१, विज्ञानेश्वर १७१२-६९, पुरुषोत्तम १७४८-९९, काशीनाथ जन्म १७६८। सूर्यपुत्र नागनाथ को दिल्ली दरबार से रणशूर

आफ्रेचसूची मे लिखा है कि रामपार्थपुर के निवासी थे। सूर्य पण्डित ने भास्करीय लीलावती की अमृतकूपिका नाम की टीका की है। उसमे अपने पिता और पितामह का वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है—

स्थान

आस्ते त्रस्तसमस्तदोषनिचय गोदाविदर्भायुते
क्रोशेनोत्तरतस्तदुत्तरतटे पार्थाभिधान पुरम् ।
तत्राभूद् गणकोत्तम पृथुयशा श्रीनागनाथाभिधो
भारद्वाजकुले सदैव परमाचारो द्विजन्माग्रणी ।।१।।

भास्करीय बीजगणित की टीका मे लिखा है—

गोदोदक्तटपूर्णतीर्थनिकटावासे तथा मङ्गला-
गङ्गासङ्गमतस्तु पश्चिमदिसि क्रोशान्तरेण स्थिते ।
श्रीमत्पार्थपुरे बभूव. .श्रीनागनाथाभिध ।।

सम्प्रति पैठण से लगभग ७० मील पूर्व गोदावरी के उत्तर तट के पास ही पाथरी नामक गॉव है। वही इस श्लोक का पार्थपुर है। यह देवगिरि (दौलताबाद) से लगभग ८५ मील आग्नेय मे है। विदर्भा नदी का ही दूसरा नाम मङ्गला होगा। उपर्युक्त वर्णनानुसार विदर्भा और गोदा के सङ्गम से वायव्य मे एक कोस पर पार्थपुर है। कमलाकर दैवज्ञ ने इस पाथरी का वर्णन किया है (आगे विष्णु का वर्णन देखिए)। इन्होने लिखा है—यह विदर्भ देश मे है, राजाओ की नगरी है और देवगिरि से १६ योजन आग्नेय मे है। ५ मील का योजान मानने से १६ योजन की ठीक सङ्गति लगती है। इस समय के कुछ अन्य ग्रन्थो मे भी पाथरी विदर्भ देश मे बतलायी गयी है।

पदवी मिली थी। उन्होंने नरपतिजयचर्या नामक ग्रन्थ बनाया है। सूरिचूड़ामणि पदवी (काशीनाथ शास्त्री को) शक १८६३ में मिली है। वंशवृक्ष में सूर्य के नीचे लिखे हुए नागराज सूर्य के पुत्र है। गोपाल और ज्ञानराज भिन्न-भिन्न दो पुरुष होंगे। नागनाथ और गोपाल तथा गोपाल और ज्ञानराज, इन दो-दो के बीच में एक-एक पुरुष और होगें अथवा इनके शक अशुद्ध होगे। उपर्युक्त शकों पर पूर्ण विश्वास न होते हुए भी मैंने ये अगत्या लिखे है। नागनाथ को रणशूर पदवी अकबर या जहाँगीर के दरबार में मिली होगी। नरपतिजयचर्या नामक प्राचीन ग्रन्थ शक १०९७ का है। इसीलिए मैंने लिखा है कि नागनाथ ने नरपतिजयचर्या की टीका की है, पर इसी नाम का उनका स्वतन्त्र ग्रन्थ भी हो सकता है।

काल

ज्ञानराज ने 'सिद्धान्तसुन्दर' मे क्षेपकादि शक १४२५ के दिये है। अतः उनका काल यही है। प्रति पीढी में लगभग ३० वर्ष का अन्तर मानने से उपर्युक्त वंशवृक्ष के प्रथम पुरुष राम का काल लगभग शक १२१५ आता है। यह देवगिरि के राजा राम के काल से मिलता है।

ज्ञानराज ने सिद्धान्तसुन्दर नामक ज्योतिषसिद्धान्त ग्रन्थ बनाया है। मैने इसके दो मुख्य भाग गणिताध्याय और गोलाध्याय (आनन्दाश्रमपुस्तकाङ्क ४३५०) देखे है। गोलाध्याय मे भुवनकोश, मध्यमगतिहेतु छेद्यक, मण्डलवर्णन, यन्त्रमाला और ऋतुवर्णन ये ६ अधिकार और उनमे क्रमश. ७९, ३०, २१, १६, ४४, ३४ श्लोक है। गणिताध्याय मे मध्यम, स्पष्ट, त्रिप्रश्न, पर्वसम्भूति, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, ग्रहास्तोदय, नक्षत्रच्छायादि, शृङ्गोन्नति, ग्रहयोग, महापात ये ११ अधिकार और उसमे क्रमश. ८९, ४८, ४३, ७, ४०, १६, १९, २०, १८, १०, ११ श्लोक है। सुन्दरसिद्धान्त पर ज्ञानराज के पुत्र चिन्तामणि की टीका है, उसके एक स्थान के लेख से ज्ञात होता है कि सुन्दरसिद्धान्त मे बीजगणित भी है, पर मैने उसे नही देखा है। सुधाकर द्विवेदी ने लिखा है[1] कि वह भास्करीय बीजच्छायानुरूप है और उसमे भास्कर के "सरूपके वर्णकृती तु यत्र" सूत्र का खण्डन है।

सिद्धान्तसुन्दर वर्तमान सूर्यसिद्धान्तानुसार बना है। इसमें ग्रहगणित के लिए करणग्रन्थो की भॉति क्षेपक और वर्षगतियॉ दी है। क्षेपक शक १४२५ के है। उसमें यह नही लिखा है कि वे किस समय के है, परन्तु गणित करने से मुझे ज्ञात हुआ है कि वे उस वर्ष के आश्विन शुक्ल ८ गुरुवार के सूर्योदय से ५६ घटी ३९ पल के हैं। क्षेपक और वर्षगतियॉ बिलकुल वर्तमान सूर्यसिद्धान्तानुसार है। इसमे मध्यम सूर्य ६।०।१४।१७ है अर्थात् वह मध्यम तुलासक्रान्ति के ठीक १५ घटी बाद का है। इससे ज्ञात होता है कि ग्रन्थकार का उद्देश्य इसी समय का क्षेपक देने का था। मध्यमाधिकार में ग्रहों में निम्नलिखित बीजसस्कार दिया है—

खाभ्रखाभ्राष्टभूमिर्गतं यत्कलेस्तष्टमेतस्य यातैष्ययोरल्पकम्।
तद्भुवा पावकैः सिद्धसख्यैर्हृत दृग्यमैः खाग्निभिः खाङ्कैर्वह्निभिः ॥८३॥

---

१. काशी की राजकीय संस्कृत पाठशाला के गणिताध्यापक सुधाकर द्विवेदी ने संस्कृत में गणकतरंगिणी नामक गणकों के इतिहास का ग्रन्थ शक १८१४ में लिखा है। उसका ५६ वाँ पृष्ठ देखिए।

नन्दविग्नायुतेनाप्तभागैर्युता सूर्यसौरावनीजा परे वर्जिता.।
दृक्समत्व ग्रहाणामनेन स्फुट प्राह दामोदराचार्य एव बुध· ॥८४॥

वर्तमान सूर्यसिद्धान्त सम्बन्धी एक बीजसस्कार ऊपर लिखा है। उससे यह ३० गुना है। शेष बातो मे दोनो बिलकुल समान हैं। उक्त पृष्ठ मे दिये हुए अङ्कानुसार शक १३२१ मे सूर्य का बीजसस्कार केवल ६ विकला आता है। यह बहुत थोडा है। ज्ञानराजकथित दामोदरोक्त सस्कार इस वर्ष मे ३ कला आता है। यही सम्भवनीय ज्ञात होता है। सूर्यसिद्धान्त के बीजोपनयनाध्याय के ७वे श्लोक के 'भागादि' के स्थान मे 'राश्यादि' पाठ मानने से वह सस्कार दामोदरोक्त सस्कार से ठीक-ठीक मिलता है। भागादि पाठ लेखकप्रमाद के कारण प्रचलित हुआ होगा और सूर्यसिद्धान्त मे बतलाया हुआ यह सस्कार अनुमानत दामोदरोक्त ही होगा। दामोदरोक्त रवि-संस्कार का मान वर्ष में + २५ विकला आता है। इससे सौरवर्षमान विपलादि २।२६।६ कम हो जाता है, अर्थात् सूर्यसिद्धान्तोक्त वर्षमान ३६५।१५।३१।३१।२४ हो जाता है। ऊपर के पृष्ठो मे वर्णित शक १३३९ के पास के दामोदर ये ही होगे।

ज्ञानराज ने अपने समय के अयनाश कही नही लिखे हैं। उनके बारे मे केवल इतना ही लिखा है कि मध्याह्नछाया द्वारा लाये हुए रवि और करणागत स्पष्टरवि का अन्तर अयनाश होता है। इन्होने वार्षिक अयनगति एक कला लिखी है। अयनाश लाने की सूर्यसिद्धान्त की भी रीति दी है। उससे वर्षगति ५४ विकला आती है। चन्द्र-शृङ्गोन्नत्यधिकार मे चन्द्रकला की क्षयवृद्धि के विषय मे श्रुतिपुराण-मत बताने के बाद इन्होने लिखा है—

वेदे सुरा सूर्यकरा. प्रसिद्धास्त एव यच्छन्ति कला:
क्रमेण। सितेऽसिते ते क्रमशो हरन्ति . . ॥६५॥

अर्थ—वेदों मे सूर्यकिरणो को ही देव कहा है। वे ही शुक्ल और कृष्ण पक्ष में (चन्द्रमा को) कलाएँ देतीं और हरती हैं।

अन्य ग्रन्थ

सुन्दरसिद्धान्त मे वेधसम्बन्धी कोई नवीनता नही है तथापि कही-कही भास्कर-सिद्धान्त से विशिष्ट उपपत्तियाँ है। यन्त्रमालाधिकार मे एक नवीन यन्त्र बनाया है। सिद्धान्तसुन्दर अपने नाम सरीखा ही है, ऐसा कह सकते है।

सूर्य ने भास्करीय बीज-भाष्य मे लिखा है कि ज्ञानराज ने सिद्धान्तसुन्दर के अतिरिक्त जातक, साहित्य और सङ्गीत विषयक एक-एक ग्रन्थ बनाये है।

वंशवृत्त

इस वश के ढुण्ढिराज, गणेश और सूर्य का आगे पृथक् वर्णन किया है। चिन्तामणि ने सुन्दरसिद्धान्त की टीका की है, यह ऊपर लिख ही चुके है। काशीनाथ शास्त्री के भेजे हुए वृत्तान्त के आधार पर इस वश के कुछ और विद्वानो का वर्णन करते हैं।

यह वश पाथरी से बीड कब गया, इसका पता नही चलता। बीड पाथरी से लगभग ५० मील पश्चिम--नैऋत्य, दौलताबाद से लगभग ६० मील दक्षिण और पैठण से लगभग ५० मील आग्नेय मे है। नागनाथ ने नरपतिजयचर्या की टीका की है। पुरुषोत्तम ने 'केशवीप्रकाश' और 'वर्षसग्रह' नाम के ज्योतिषग्रन्थ बनाये है और 'दत्त-कुतूहल' नाम का एक और ग्रन्थ बनाया है। केशवीप्रकाश मे उन्होने लिखा है कि रामचन्द्र होराशास्त्रपारङ्गत थे और विज्ञानेश्वर न्यायव्याकरणज्योतिषशास्त्रज्ञ तथा बाजीराव-नृपतिसम्मान्य थे। ये बाजीराव अन्तिम बाजीराव पेशवा (शक १७१७-३९) है। काशीनाथ शास्त्री सम्प्रति विद्यमान है। ये न्यायव्याकरणज्योतिषज्ञ है। बीड मे ये सर्वाधिकारी है। हैदराबाद सस्थान मे इनकी अच्छी प्रतिष्ठा है। हम्पी-विरूपाक्ष के शंकराचार्य ने इन्हे 'सूरिचूडामणि' उपाधि दी है। इन्होने 'न्यायपोत' नामक ग्रन्थ बनाया है। सम्प्रति देवीभागवतचूर्णिका बना रहे है। उसके पाँच स्कन्ध समाप्त हो चुके है।

सूर्य, जन्मशक १४३०

सिद्धान्तसुन्दरकार ज्ञानराज के ये पुत्र है। इन्होने भास्करीय बीज का भाष्य किया है, उसमें अपने को सूर्यदास और ग्रन्थ को सूर्यप्रकाश कहा है। टीकाकाल इन्होने अपने वय का ३१वाँ वर्ष शक १४६० लिखा है, अत इनका जन्म शक १४२९ या १४३० होगा। इस टीका की सख्या २५०० है। कही-कही इन्होने अपना नाम सूर्य लिखा है। भास्कराचार्य की लीलावती पर इनकी शक १४६३ की 'गणितामृतकूपिका' नाम की टीका है। इसमे उपपत्ति व्यक्त सख्याओ द्वारा ही लिखी है और लीलावती को काव्य समझ कर उसके किसी-किसी श्लोक के अनेक अर्थ किये है। इस टीका की ग्रन्थसख्या ३५०० है। इन दोनों ग्रन्थो के अन्त में एक श्लोक है, उसमें लिखा है कि सूर्य ने अमुकामुक ८ ग्रन्थ बनाये है। ग्रन्थो के नाम ये है—लीलावतीटीका, बीजटीका, श्रीपतिपद्धति गणित, बीजगणित, ताजिकग्रन्थ, काव्यद्वय, बोधसुधाकर नामक आध्यात्मिक ग्रन्थ। इसमें चतुर्थ ग्रन्थ बीजगणित सूर्य का स्वतन्त्र ग्रन्थ है। ताजिकग्रन्थ का नाम

ताजिकालकार है। उसकी एक प्रति डेक्कन कालेज संग्रह मे है। उपर्युक्त श्लोक उसमे भी है। उसमे काव्यद्वय के स्थान मे काव्याष्टक पाठ है। काशीनाथ शास्त्री ने भी लिखा है कि सूर्य पण्डित ने काव्याष्टक बनाया है। उन्होने ग्रन्थो के नाम पद्यामृत-तरङ्गिणी, रामकृष्णकाव्य, शकराभरण, नृसिहचम्पू, विघ्नमोचन, भगवतीगीत इत्यादि लिखे है। रामकृष्णकाव्य प्रसिद्ध है। वह द्वचर्थी है। उसका एक अर्थ राम पर और दूसरा कृष्ण पर है।

कोलब्रूक ने लिखा है[१] कि "सूर्यदास ने सम्पूर्ण सिद्धान्तशिरोमणि की टीका की है और गणितविषयक 'गणितमालती' नामक एक स्वतन्त्र ग्रन्थ बनाया है। 'सिद्धान्त सहितासारसमुच्चय' नामक इनका एक और ग्रन्थ है, उसमे शिरोमणि टीका का उल्लेख है।" इन तीनो ग्रन्थो के नाम उपर्युक्त ८ ग्रन्थो मे नही है, काशीनाथ शास्त्री के भेजे हुए वृत्तान्त मे भी नही है और मैंने भी नही देखे है। आफ्रेचसूची मे सूर्यसूरि, सूर्यदास अथवा सूर्यकृत ग्रन्थो के नामो मे ये तीन नाम, उपर्युक्त नामो मे से अधिकतर और उनके अतिरिक्त ग्रहविनोद, कविकल्पलताटीका, परमार्थप्रपा, नाम की भगवद्गीताटीका, भक्तिशत, वेदान्तशतश्लोकी टीका, शृङ्गारतरङ्गिणी नाम की अमरुकशतक की टीका, ये नाम है। साराश यह कि सूर्य बहुत बडे विद्वान् थे। गणितामृतकूपिका मे इन्होने अपने को 'गणितार्णवप्रसरणसत्कर्णधार, छन्दोलकृतिगीतशास्त्रनिपुण वैदग्ध्य-पारङ्गत' कहा है, वह यथार्थ है। अमृतकूपिका मे इन्होने लिखा है—'अह सूर्याभिधान कवि स्वप्रज्ञापरिणामत लीलावती व्याख्यातु विहितादरोस्मि।' और भी लिखा है—

> निर्मथ्य बीजगणितार्णवमात्मयत्नात् सद्वासनामृतमवाप्तमिद मया यत्।।
> तत् सग्रहाय गणितार्णवकूपिकेय टीका विरच्यत इहावनिदेवतुष्ट्यै।।

बीजभाष्य के आरम्भ मे लिखा है—

> यत्पादाम्बुरुहप्रसादकणिकासञ्जातबोधादह पाटीकुट्टकबीजतन्त्र—
> गहनाकूपारपारङ्गम। छन्दोलकृतिकाव्यनाटकमह (?) सङ्गीतशा—
> स्त्रार्थवित् त वन्दे निजतातमुत्तमगुण श्रीज्ञानराज गुरुम्।।२।।

---

१. Miscellaneous Essays, 2nd Ed. Vol. II, p. 451.

कोलब्रूक ने इनकी लीलावती टीका का काल भूल से शक १४६० लिखा है वस्तुत: वह शक १४६३ की है।

पर अन्त मे लिखा है—

> तत्सूनु: (ज्ञानराजसूनु) सूर्यदास. सुजनविधिविदा प्रीतये।
> बीजभाष्य चक्रे सूर्यप्रकाश स्वमतिपरिचयादादिति. सोपपत्ति ॥३॥

इससे ज्ञात होता है कि इन्होने अपने पिता से ज्ञान प्राप्त किया था, फिर भी मुख्यत. यह सब इनका स्वकीय बुद्धिवैभव है।

अनन्त, शक १४४७

इन्होंने सूर्यसिद्धान्तानुसार अनन्तसुधारस नाम का पञ्चाङ्गगणितग्रन्थ शक १४४७ मे बनाया है। उसके आरम्भ मे लिखा है—

> ढुण्ढिविनायकचरणद्वन्द्व मुदमादधन् नत्वा।
> सूक्त्यानन्तरसाख्य तनुते श्रीकान्तजोऽनन्त: ॥

अत. इनके पिता का नाम श्रीकान्त था। मैने यह ग्रन्थ नही देखा है। यह वर्णन सुधाकर की गणकतरङ्गिणी के आधार पर लिखा है। सुधाकर का कथन है कि "यह सारणीग्रन्थ है। मुहूर्तमार्तण्डकार नारायण के पिता अनन्त के पिता का नाम हरि था (आगे गङ्गाधर—शक १५०८ का वर्णन देखिए)। इस अनन्त के पिता का नाम श्रीकान्त भी हरि का ही पर्याय है। दोनो का समय भी लगभग एक ही है, अत. ये मुहूर्त मार्तण्डकार के पिता होगे।" परन्तु अनन्तकृत सुधारस पर ढुण्ढिराज की 'सुधारसकरण-चषक' नाम की टीका है और ग्रहणोदय नाम का इस ग्रन्थ का एक भाग काशी-राज-कीय सस्कृत पाठशाला के पुस्तकालय तथा आफ्रेचसूची मे है इससे ज्ञात होता है कि यह करणग्रन्थ है और इसमे पञ्चाङ्गोपयोगी सारणियाँ भी हैं। मुहूर्तमार्तण्डकार नारा-यण और उनके पुत्र गङ्गाधर के ग्रन्थो मे वशवर्णन दो-तीन स्थानो मे है, उनमे सर्वत्र अनन्त के पिता का नाम हरि ही है, श्रीकान्त कही नही है और अनन्त का अन्य बहुत सा वर्णन होते हुए भी उनके ग्रन्थ का नाम कही नही है। अत ये अनन्त मुहूर्तमार्तण्डकार के पिता है, यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता।

ढुण्ढिराज

इन्होने अपने 'जातकाभरण' मे और इनके पुत्र गणेश ने 'ताजिकभूषण' मे वंशवर्णन किया है, इससे सिद्ध होता है कि ये देवगिरि (दौलताबाद) के पास गोदावरी के उत्तर पार्थपुर (पाथरी) नामक स्थान मे रहते थे। इन्होने अपने पिता का नाम नृसिंह लिखा है। ज्ञानराज के वर्णन मे मैने काशीनाथ शास्त्री के भेजे हुए वंशवृक्षानुसार इन्हें नृसिंह का

पुत्र लिखा है, तदनुसार ये सिद्धान्तसुन्दरकार ज्ञानराज के पितृव्य होते हैं, परन्तु इन्होने अपने जातकाभरण मे ज्ञानराज गुरु की वन्दना की है। इससे शका होती है कि इनके गुरु ज्ञानराज सिद्धान्तसुन्दरकार से भिन्न होगे अथवा ढुण्ढिराज इसी वश के किसी अन्य नृसिह के पुत्र होगे। आफ्रेचसूची मे लिखा है कि ढुण्ढिराज ने अनन्तकृत सुधारस नामक करण की 'सुधारसकरणचषक' नाम्नी टीका की है और ग्रहलाघवोदाहरण, ग्रहफलोपपत्ति, पञ्चाङ्गफल और कुण्डकल्पलता ग्रन्थ बनाये हैं। यदि ये और जातकाभरणकार ढुण्ढिराज एक ही हैं तो इनका काल शक १४४७ से अर्वाचीन होगा। जातकाभरणकार के पुत्र गणेश के ताजिकभूषण ग्रन्थ का उल्लेख विश्वनाथ (शक १५५१) ने किया है[1] अत. जातकाभरण का काल शक १५०० से प्राचीन होगा।[2]

ढुण्ढिराज का जातकाभरण बडा प्रसिद्ध ग्रन्थ है। वह छप चुका है। उससे ज्ञात होता है कि ढुण्ढिराज के चाचा ने एक जातक ग्रन्थ बनाया था। इनके चाचा और उनके ग्रन्थ के नाम ज्ञात नही है। गणेश का ताजिकभूषण भी प्रसिद्ध ग्रन्थ है। आफ्रेचसूची मे इस गणेश का गणितमञ्जरी नामक ग्रन्थ भी लिखा है।

नृसिह

ये ग्रहलाघवकार गणेश दैवज्ञ के भ्राता राम के पुत्र थे। राम गणेश दैवज्ञ के लघु भ्राता होंगे। सुधाकर ने लिखा है कि इन्होने शक १४८० मे महादेवी ग्रहसिद्धि के अनुसार 'मध्यमग्रहसिद्धि' नामक ग्रन्थ बनाया है। उसमे केवल मध्यम ग्रह है। स्पष्ट ग्रह महादेव के ग्रन्थ से बनाये हैं। कृष्णशास्त्री गोडबोले की हस्तलिखित मराठी पुस्तक मे लिखा है कि "केशव दैवज्ञ के पौत्र, राम के पुत्र नृसिंह ने शक १५१० मे ग्रहकौमुदी नामक ग्रन्थ बनाया है और नृसिह का जन्म शक १४७० है।" यह और उपर्युक्त शक १४८०, इन दोनों मे एक अशुद्ध होगा। नृसिह ने शक मे से १४८० घटाकर शेष मे

---

१. विश्वनाथ ने ताजिकनीलकण्ठी की टीका में लिखा है कि —"जन्मकालनलिनी विलासिना नैव याति तुलनां कलासु चेत्। वर्षकालनलिनीपति. . . . ।।— इस श्लोक का ताजिकभूषणकार का कथन अशुद्ध है, विश्वनाथ का यह कथन ठीक है।

२. काशीनाथ शास्त्री ने लिखा है कि ढुण्ढिराज ने ज्ञानराज से ही अध्ययन किया था। भतीजे से चचा की अवस्था कम होने के अनेक उदाहरण मिलते हैं, अतः इसे असम्भव नहीं कहा जा सकता। इससे अनुमान होता है कि जातकाभरणकार के ग्रन्थ का काल लगभग शक १४३० से १४६० पर्यन्त और ताजिकभूषण का काल शक १४८० होगा।

वर्षगण का गुणा कर ग्रह लाने को कहा है, अत यह शक अशुद्ध नही होगा। सम्भव है शक १४८० के कुछ वर्षों बाद नृसिह ने यह ग्रन्थ बनाया हो।

अनन्त

'कामधेनु' नामक एक तिथ्यादिपञ्चाङ्गसाधनोपयोगी ग्रन्थ है। अनन्त ने उसकी टीका की है। कामधेनुग्रन्थ गोदातीरस्थ त्र्यम्बक नामक स्थान के निवासी बोपदेवात्मज महादेव ने शक १२७९ मे बनाया है। इसमे ब्राह्म और आर्य पक्षानुसार तिथ्यादि-साधनार्थ सारणियाँ बनायी है। इन अनन्त के पुत्र नीलकण्ठ और राम के ग्रन्थ क्रमश शक १५०९ और १५१२ है, अतः अनन्तकृत कामधेनुटीका का काल लगभग शक १४८० होगा। जातकपद्धति नामक अनन्त का एक जातकग्रन्थ है।[1] इनके पुत्र राम ने अपने मुहूर्तचिन्तामणि के उपसहार मे अपना कुलवृत्तान्त इस प्रकार लिखा है—

वंशवृत्त

आसीद्धर्मपुरे षडङ्गनिगमाध्येतृद्विजैर्मण्डिते
ज्योतिर्वित्तिलक फणीन्द्ररचिते भाष्ये कृतातिश्रम ।
तत्तज्जातकसहितागणितकृन्मान्यो महाभूभुजा
तर्कालिकृतिवेदवाक्यविलसद्बुद्धि स चिन्तामणि ।।८।।
ज्योतिर्विदगणवन्दिताघ्रि कमलस्तत्सूनुरासीत् कृती
नाम्नानन्त इति प्रथामधिगतो भूमण्डलाहस्कर ।
यो रम्या जनिपद्धति समकरोद्दुष्टाशयध्वसिनी
टीका चोत्तमकामधेनुगणितेऽकार्षीत सता प्रीतये ।।९।।
तदात्मज उदारधीर्विबुधनीलकण्ठानुजो
गणेशपदपकज हृदि निधाय रामाभिध ।
गिरीशनगरे वरे भुजभुजेषुचन्द्रैर्मिते १४२२
शके विनिरमादिम खलु मुहूर्तचिन्तामणिम् ।।१०।।

इसके और इनके अन्य वशजो के लिखे हुए कुलवृत्तान्त के आधार पर इनकी वंशावली नीचे लिखी है। इनका गोत्र गार्ग्य था। इनका मूल निवासस्थान गोदा के पास विदर्भ देश मे धर्मपुरी नामक गाँव था। अनन्त वहाँ से काशी आये। इनके बाद के पुरुष काशी मे ही रहे है।

---

१. मैंने अनन्त के ग्रन्थ नहीं देखे है। यह वर्णन उनके वंशजों के लिखे हुए वर्णन और सुधाकरकृत गणकतरंगिणी के आधार पर लिखा है।
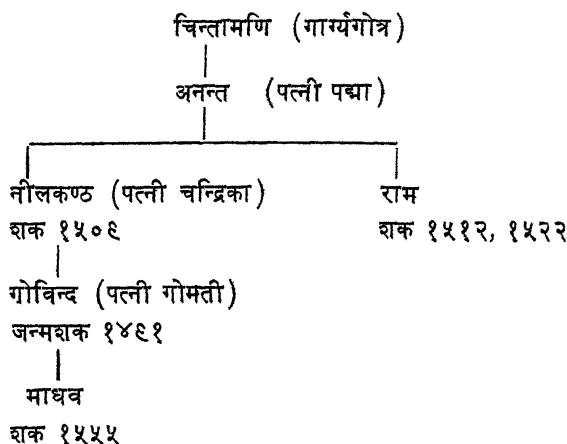
नीलकण्ठ और रामकृत वर्णनो से ज्ञात होता है कि चिन्तामणि ज्योतिष और अन्य शास्त्रो के बहुत बडे पण्डित थे। अनन्त का वर्णन कर ही चुके है। नीलकण्ठ की माता का नाम पद्मा था। इन्होने 'टोडरानन्द' नामक ग्रन्थ बनाया था। अन्य ग्रन्थो मे आये हुए उसके वर्णनो से अनुमान होता है कि उसमे गणित, मुहूर्त और होरा, तीनो स्कन्ध रहे होगे। नीलकण्ठ के पौत्र माधव ने भी ऐसा ही लिखा है। पीयूषधाराकार ने लिखा है कि उसके चन्द्रवारविलासप्रकरण मे ग्रहास्तोदय का और कालशुद्धिसौख्यप्रकरण मे न्यूनाधिमास का विवेचन है। इस ग्रन्थ का कुछ भाग (आनन्दाश्रमग्रन्थाङ्क ५०८८) मैने देखा है, इसमे मुहूर्तस्कन्ध मात्र है। इसमे प्राचीन ग्रन्थकारो के वचनो का बहुत बडा सग्रह है। मैने जो भाग देखा है उसकी ग्रन्थसख्या १००० के लगभग होते हुए भी उसमे केवल यात्राप्रकरण है और वह भी अपूर्ण। अत सम्पूर्ण ग्रन्थ बहुत बडा होगा। अकबर के प्रधान टोडरमल के नाम पर ही इस ग्रन्थ का नाम टोडरानन्द रखा गया होगा। पुत्र गोविन्द के लेख से ज्ञात होता है कि नीलकण्ठ मीमासा और साख्य शास्त्रो के भी बहुत बडे ज्ञाता थे और अकबर बादशाह की सभा में पण्डितेन्द्र थे। ताजिक-विषयक नीलकण्ठ का 'समातन्त्र' (वर्षतन्त्र) नामक ग्रन्थ है। इसे नीलकण्ठी भी कहते है। यह बडा प्रसिद्ध है और अनेक टीकाओ सहित छप भी चुका है। नीलकण्ठ ने इसे शक १५०९ मे बनाया है। इस पर विश्वनाथ की शक १५५१ की सोदाहरण टीका है। आफ्रेचसूची मे इसकी द्विघटिका, लक्ष्मीपतिकृत और श्रीहर्ष की श्रीफलवर्धिनी ये तीन और टीकाएँ लिखी है। अन्य टीकाओ का वर्णन नीचे किया है। गणकतरङ्गिणीकार ने लिखा है कि नीलकण्ठ की एक जातकपद्धति है, उसमे ६० श्लोक है और वह मिथिला प्रान्त मे प्रसिद्ध है। आफ्रेचसूची मे लिखा है कि नीलकण्ठ ने

तिथिरत्नमाला, प्रश्नकौमुदी अथवा ज्योतिषकौमुदी नामक प्रश्नग्रन्थ और दैवज्ञ-वल्लभा ये ज्योतिष ग्रन्थ बनाये है और जैमिनिसूत्र की सुबोधिनी नाम्नी टीका की है। उस सूची से यह भी ज्ञात होता है कि इन्होने ग्रहकौतुक, ग्रहलाघव, मकरन्द और एक मुहूर्तग्रन्थ की टीकाएँ की है। इनके भाई राम का वर्णन आगे किया गया है।

नीलकण्ठ के पुत्र गोविन्द की मुहूर्तचिन्तामणि की शक १५२५ की पीयूषधारा नाम्नी बडी विस्तृत और सुप्रसिद्ध टीका है। यह इन्होने काशी में बनायी है। उसमे अपना मूल निवासस्थान विदर्भदेश मे मातृपुर बताया है। कदाचित् धर्मपुर का ही दूसरा नाम मातृपुर होगा। इनका जन्म शक १४९१ मे हुआ था। इनकी माता का नाम चन्द्रिका था। इन्होने शक १५४४ मे ताजिकनीलकण्ठी की रसाला नाम्नी टीका की है। पीयूषधारा टीका से गोविन्द बडे अन्वेषक जान पडते है, परन्तु सक्रान्तिप्रकरण के नवे श्लोक की टीका मे इन्होने लिखा है—सायन गणना से ग्रहण मे विसवाद होता है, शक १५१६ वैशाख शुक्ल पूर्णिमा वाला चन्द्रग्रहण सायन गणना से नही आता। इससे ज्ञात होता है कि इन्हे गणित का मार्मिक ज्ञान नही था। केवल चन्द्रमा को सायन करके इन्होने दिखाया है कि ग्रहण नही आता, परन्तु इन्हे जानना चाहिए था कि सायन गणना मे राहु भी सायन करना पडता है।

गोविन्द के पुत्र माधव ने काशी मे शक १५५५ में नीलकण्ठी की शिशुबोधिनी समाविवेकविवृति नाम की टीका की है। इसमे उदाहरण भी है। इन्होने अपने पिता पीयूषधाराकार के विषय मे लिखा है कि वे जहागीर बादशाह के मान्य थे। इन वर्णनो से ज्ञात होगा कि इस वश मे बहुत से उत्तम विद्वान् हुए हैं।

रघुनाथ, शक १४८४

इनका सुबोधमञ्जरी नामक एक ब्राह्मपक्षीय करणग्रन्थ डे० का० सं० (नं० २१७ सन् १८८३-४) मे है। इसमे आरम्भवर्ष शक १४८४ है। इसमे ग्रहसाधन अहर्गण द्वारा किया है। शून्यायनाशवर्ष शक ४४४ माना है।

रघुनाथ, शक १४८७

सोमभट्टात्मज रघुनाथ का 'मणिप्रदीप' नामक करणग्रन्थ शक १४८७ का है। इन्होने लिखा है कि भास्करकृत सब ग्रन्थो को देखकर सूर्यमतानुसार सक्षेप में ग्रहसाधन करता हूँ। इस ग्रन्थ मे कोई विशेषता नही है। मैंने इसे देखा नही है। यह वर्णन सुधाकर की गणतरङ्गिणी द्वारा लिखा है।

कृपाराम

आफ्रेचसूची से ज्ञात होता है कि इन्होने सर्वार्थचिन्तामणि, पञ्चपक्षी और

मुहूर्ततत्व की टीकाएँ की है, वास्तुचन्द्रिका नामक ग्रन्थ बनाया है और बीजगणित मकरन्द तथा यन्त्रचिन्तामणि की उदाहरण रूपी टीकाएँ की है। केशवकृत मुहूर्ततत्त्व का काल लगभग शक १४२० है अत. इनका समय शक १४२० से अर्वाचीन होगा।

दिनकर

इनके खेटकसिद्धि और चन्द्रार्की नामक दो करणग्रन्थ मैने डेक्कनकालेजसंग्रह (न० ३०३, ३०८ सन् १८८२-८३) मे देखे है। खेटकसिद्धि मे इन्होने लिखा है—

विना द्युवृन्दाशुमृदुक्रियाद्यै: श्रीब्रह्मसिद्धान्तसमाश्च खेटा ।
करोम्यह ता गगनेचराणा सिद्धि. ॥२॥

क्षेपक शक १५०० मध्यम मेष के है। वे और गतियाँ राजमृगाङ्कबीजसस्कृत ब्राह्म-तुल्य है। ग्रन्थ मे केवल ग्रहो का स्पष्टीकरण मात्र है और सब ४६ श्लोक है। ग्रन्थ के साथ सारणियाँ भी होनी चाहिए। मेरी देखी हुई पुस्तक मे वे नही है परन्तु उनके बिना गणित नही किया जा सकता। ग्रन्थकार ने इसे लघुखेटकसिद्धि कहा है, इससे अनुमान होता है कि इनकी अन्य वृहत्खेटकसिद्धि भी होगी। महादेवी सारणी की टीका मे दिनकर के कुछ श्लोक दिये है, वे इसमे नही है। इससे भी अनुमान की पुष्टि होती है। इन्होने अपने विषय मे लिखा है—

श्रीमद्गोत्रे कौशिके साग्निकोऽभूदुन्दाक्षोय ज्ञातिमोढप्रसूत ।
जातो ग्रामे साभ्रमत्या समीपे वारेजाख्ये विप्रवर्याश्रिते च ॥३१॥
तत्पुत्रजो दिनकर सकलानि खेटकर्माणि वीक्ष्य सतत हि सवासनानि ।
चक्रे शके खखतिथि १५०० प्रमिते च सवत्पञ्चाग्निभूपतिमिते १६३५
लघुखेटकसिद्धिम् ॥३२॥

चन्द्रार्की ग्रन्थ मे सब ३३ श्लोक है और उसमे केवल सूर्य तथा चन्द्रमा का स्पष्टी-करण है। उसमे भी आरम्भ वर्ष शक १५०० ही है। ग्रन्थ के साथ-साथ चन्द्रसूर्य-स्पष्टीकरणार्थ फलसारणियाँ भी रही होगी। उनके द्वारा स्पष्ट सूर्य-चन्द्र लाकर तिथ्यादि साधन करना कहा है। इससे ज्ञात होता है कि उस समय तक गुजरात मे गणेश दैवज्ञकृत लघुचिन्तामणि की सारणियाँ प्रचलित नही हुई थी।

दोनो ग्रन्थो मे एक बीजसस्कार दिया है। उसके विषय में लिखा है—'गुर्जरप्रदेश-बीजम्।' आगे वर्णित ग्रहचिन्तामणि और महादेवीसारणी की टीका मे भी यह बीज है। इसे कही-कही रामबीज कहा है।

गङ्गाधर, शक १५०८

अनन्त
|
कृष्ण
|
हरि
|
अनन्त
|
नारायण
|
गङ्गाधर

इन्होने शक १५०८ मे ग्रहलाघव की मनोरमा नाम्नी टीका की। मुहूर्तमार्तण्डकार नारायण के ये पुत्र है। दोनो के दिये हुए वशवृत्त के आधार पर यह वशवृक्ष बनाया है। मुहूर्तमार्तण्ड ग्रन्थ शक १४९३ का है। उसमे ग्रन्थकार ने अपना कुलवृत्तान्त लिखा है। उससे ज्ञात होता है कि वे कौशिकगोत्रीय वाजसनेयी ब्राह्मण थे, देवगिरि (दौलताबाद) के उत्तर शिवालय (घृणेश्वर) नामक जो प्रसिद्ध स्थान है, उसके उत्तर टापर नामक गाव के ये निवासी थे और इनके पूर्वजो का मूल निवास-स्थान सासमणूर था। दौलताबाद के पास ही दो कोस पर वेरुळ नामक गाव है, वहा सम्प्रति घृष्णेश्वर का मन्दिर है। जनार्दन हरि आठले ने शक १७७९ मे मराठी टीका सहित मुहूर्तमार्तण्ड छपाया है। उसकी प्रस्तावना मे उन्होने लिखा है कि टापर गाव और उसके आसपास पता लगाने से ज्ञात हुआ कि अब ग्रन्थकार का केवल मातुलवश रह गया है।

रामभट, शक १५१२

इनका 'रामविनोद' नामक एक करणग्रन्थ है। इसमे आरम्भवर्ष शक १५१२ है और वर्षमान, क्षेपक तथा ग्रहगतिया वर्तमान सूर्यसिद्धान्त की है। ग्रहगति मे दिये हुए बीजसस्कार का वर्णन ऊपर के पृष्ठो मे कर ही चुके है। अकबर के प्रधान श्री महाराज रामदास की आज्ञानुसार अकबर शक ३५ (शालिवाहनशक १५१२) मे रामभट ने रामविनोद बनाया है।[1] इसमे ११ अधिकार और २८० श्लोक है। इस पर विश्वनाथकृत उदाहरण है। इस ग्रन्थ का अङ्गभूत १७ श्लोको का तिथ्यादि-साधनोपयोगी सारणीग्रन्थ राम ने बनाया है और उसके अनुसार जयपुर की ओर पञ्चाङ्ग बनाते है, ऐसा सुधाकर द्विवेदी ने लिखा है।

इनका 'मुहूर्तचिन्तामणि' बडा प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसे इन्होने शक १५२२ मे काशी मे बनाया है। इस पर ग्रन्थकार की प्रमिताक्षरा और इनके भ्रातृपुत्र गोविन्द की पीयूषधारा नाम की प्रसिद्ध टीका है। ये दोनो छप चुकी है। इनका वशवृत्त ऊपर पृष्ठ ३७७ मे लिख ही चुके हैं।

---

१. प्रोफेसर भण्डारकर का कथन है (सन् १८८३-८४ के पुस्तकसंग्रह की रिपोर्ट का पृष्ठ ८४ देखिए) कि यह ग्रन्थ इन्होंने शक १५३५ में बनाया है, पर यह उनकी भूल है।

श्रीनाथ, शक १५१२

इनका शक १५१२ का 'ग्रहचिन्तामणि' नामक करणग्रन्थ है। उसमे वर्षगण द्वारा-ग्रहसाधन किया है। ग्रन्थ के साथ सारणियाँ भी होनी चाहिए। मेरी देखी हुई पुस्तक (डे० का० स० न० ३०४, सन् १८८२-८३) मे वे नही थी पर उनके बिना ग्रन्थ निरुपयोगी है। इसमे क्षेपक नही है और अन्य भी कोई ऐसा साधन नही है जिससे पता चले कि यह किस पक्ष का ग्रन्थ है। इसमे दो अध्याय है। साधन (होरास्कध) भी इसी मे है। श्रीनाथ के पिता का नाम राम[1] और ज्येष्ठ भ्राता का नाम रघुनाथ था।

विष्णु

विदर्भ देश मे पाथरी नामक एक प्रसिद्ध ग्राम है। उसका वर्णन ऊपर के पृष्ठो में कर चुके है। उससे २॥ योजन पश्चिम गोदा नदी के उत्तर तट के पास ही गोला नामक ग्राम है। पहिले वहा एक बडा प्रसिद्ध विद्वत्-कुल रहता था। बाद मे वह काशी चला गया। उसमे बहुत से ग्रन्थकार हुए है। विष्णु भी उसी मे है। इन्होने एक सौरपक्षीय करणग्रन्थ बनाया है। उसमे आरम्भवर्ष शक १५३० है। ग्रहलाघवकार गणेश दैवज्ञ की बृहच्चिन्तामणि पर इनकी सुबोधिनी नामक टीका है। उसमे उपपत्ति है। ज्योतिषशास्त्र का नवीन ग्रन्थ बनानेवालो के लिए ऐसी टीकाएँ बडी उपयोगी होती है। इनके करणग्रन्थ पर इनके भाई विश्वनाथ का उदाहरण है। मुहूर्तचूडामणि में शिव ने विष्णु को जगद्गुरु कहा है। प्रसिद्ध टीकाकार विश्वनाथ और सिद्धान्ततत्त्वविवेककार कमलाकर इसी वश मे हुए है। कमलाकर ने अपना कुलवृत्तान्त इस प्रकार लिखा है—

अथात्र सार्धाम्बरदस्र २०।३० सख्यपलाशकैरस्ति च दक्षिणस्याम्।
गोदावरीसौम्यविभागसस्थ दुर्गञ्च यद्देवगिरीति नाम्ना ॥१॥
प्रसिद्धमस्मान्नृप १६ योजनै प्राक् याम्यान्तराशास्थितपाथरी च।
विदर्भदेशान्तरगास्ति रम्या राज्ञा पुरी तद्गतदेशमध्ये ॥२॥
तस्यास्तु किञ्चित परभाग एव सार्धद्वितुल्यै २½ किल योजनैश्च।
गोदा वरीर्वति सदैव गङ्गा या गौतमप्रार्थनया प्रसिद्धा ॥३॥

---

१. प्रोफेसर भण्डारकर ने लिखा है (१८८२-८३ पुस्तक संग्रह रिपोर्ट का पृष्ठ २८) कि ये राम और मुहूर्त चिन्तामणिकार राम प्रायः एक ही है, परन्तु मुहूर्त चिन्तामणिकार राम के उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि उनका यह कथन असम्भव है।

अस्या सता सौम्यतटोपकण्ठे ग्रामोऽस्ति गोलाभिधया प्रसिद्ध ।
तथैव याम्ये पुरुषोत्तमाख्या पुरी तयोरन्तरगा स्वयं सा ॥४॥
गोदावरीसौम्यतटोपकण्ठगोलाख्यसद्ग्रामसुसिद्धभूमौ ।
विप्रो महाराष्ट्र इति प्रसिद्धो रामो भारद्वाजकुलावतस ॥७॥
बभूव तज्जोऽखिलमान्यभट्टाचार्योऽतिशास्त्रे निपुणः पवित्र. ।
सदा मुदा सेवितभर्गसूनुर्दिवाकरस्तत्तनयो बभूव ॥८॥

इस वंश के विश्वनाथ, नृसिंह और मल्लारि प्रभृति ग्रन्थकारों के लिखे हुए कुल-वृत्तान्त से ज्ञात होता है कि राम ज्योतिषी थे, भट्टाचार्य उत्तम मीमासक तथा नैयायिक थे और दिवाकर उत्तम ज्योतिषी थे। वे ग्रहलाघवकार गणेश दैवज्ञ के शिष्य थे। दिवाकर के पाँच पुत्र थे। विश्वनाथ उनमे सबसे छोटे थे। ताजिकनीलकण्ठी की टीका मे उन्होने अपने भाइयों के गुणादिकों का निम्नलिखित बड़ा सुन्दर वर्णन किया है।

दिवाकरो नाम बभूव विद्वान् दिवाकराभो गणितेषु मन्ये ।
स्वकल्पितैर्येन निबन्धवृन्दैर्बद्ध जगद्दर्शितविश्वरूपम् ॥२॥
तस्यात्मजा. पञ्च समा बभूवु. पञ्चेन्द्रकल्पा गणितागमेषु ।
पञ्चानना वादिगजेन्द्रभेदे पञ्चाग्निकल्पा द्विजकर्मणा च ॥३॥
अजनिष्ट कृष्णनामा ज्येष्ठस्तेषा कनिष्ठानाम् ।
विद्यानवद्यवाचा वेत्ता स स्याज्जगत्ख्यात ॥४॥
तस्माज्जात. कनिष्ठो विबुधबुधगणात् खेष्टता प्राप जाग्र-
ज्ज्योति शास्त्रेण शश्वत्प्रकटितविभवो यस्य शिष्य. प्रशिष्य ।
विष्णुर्ज्योतिर्विदुर्वीपतिविदितगुणो भूमिदर्वीकरेन्द्रो
ग्रन्थव्याख्यानखर्वीकृतविबुधगुरुर्गर्वहा गर्वभाजाम् ॥५॥
आसीदासिन्धुदासीकृतगणकगणग्रामनीगर्वभेत्ता
नेता ग्रन्थान्तराणा मतिगुरुरनुजस्तस्य कस्याप्यतेजाः ।
मल्लारिर्वादिवृन्दप्रशमनविधये कोऽपि मल्लारिनामा
व्यक्ताव्यक्तप्रवक्ता जगति विशदयत् सर्वसिद्धान्तवक्ता ॥६॥
तस्यानुज केशवनामधेयो ज्योतिर्विदानन्दसमुद्रचन्द्र. ।
वाणीप्रवीणान् वचनामृतेन सजीवयामास कलाविलासी ॥७॥
तस्यानुज सम्प्रति विश्वनाथो विष्णुप्रसादाद् गुणमात्र विष्णु : ।
सर्वज्ञदैवज्ञविलाससुज्ञात् नृसिहत. साधितसर्वविद्य :॥८॥

कमलाकर के ऊपर लिखे हुए श्लोकों के बाद के श्लोक ये हैं—

अस्यार्यवीर्यस्य दिवाकरस्य श्रीकृष्णदैवज्ञ इति प्रसिद्ध ।।९।।
तज्जस्तु सद्गोलविदा वरिष्ठो नृसिंहनामा गणकार्यवन्द्य. ।।१०।।
बभूव येनात्र च सौरभाष्य शिरोमणेर्वार्तिकमुत्तम हि।
स्वार्थं परार्थञ्च कृत त्वपूर्वसद्युक्तियुक्त ग्रहगोलतत्त्वम् ।।११।।
तज्जस्तु तस्यैव कृपालवेन स्वज्येष्ठसद्बन्धुदिवाकराख्यात्।
सावत्सरार्याद् गुरुत. प्रलब्धशास्त्रावबोधो गणकार्यतुष्टचै ।।१२।।
दृग्गोलजक्षेत्रनवीनयुक्त्या पूर्वोक्तित श्रीकमलाकराख्य:।
समस्तसिद्धान्तसुगोलतत्त्वविवेकसज्ञ किल सौरतत्त्वम् ।।१३।।
खनागपञ्चेन्दुशकेष्वतीते सिद्धान्तमार्याभिमतं समग्रम्।
भागीरथीसौम्यतटोपकण्ठवाराणसीस्थो रचयाम्बभूव ।।१४।।

इसके तथा कुछ अन्य वर्णनो के आधार पर इनकी निम्नलिखित वंशावली निश्चित होती है।
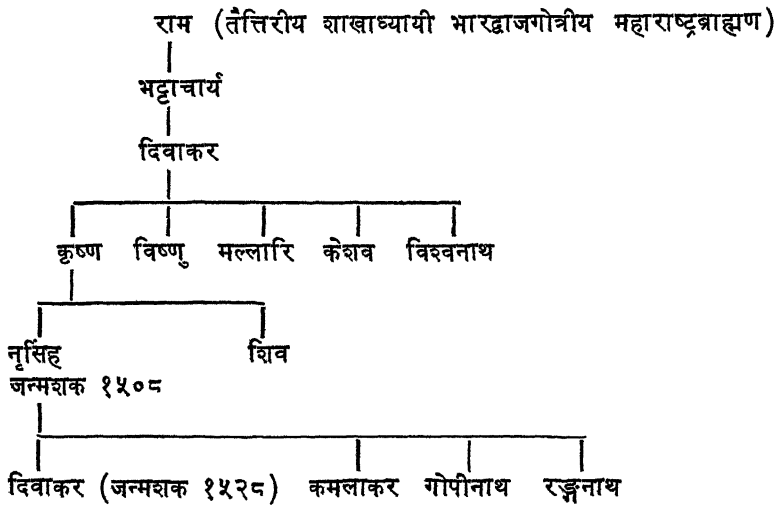
दिवाकर के ज्येष्ठ पुत्र कृष्ण के विषय में उनके ज्येष्ठ पुत्र नृसिंह ने सूर्यसिद्धान्त

---

१. काशी में सुधाकर द्विवेदी के छपाये हुए सिद्धान्ततत्वविवेक का पृष्ठ ४०७-८ देखिए।

की टीका मे लिखा है कि इन्होने बीजगणित का सूत्रात्मक ग्रन्थ बनाया है। इनके कनिष्ठ पुत्र शिव ने अपने मुहूर्तचूडामणि मे और पौत्र दिवाकर ने अपने ग्रन्थ मे लिखा है कि ये त्रिकालज्ञ थे, राजसभा मे इनकी बडी प्रतिष्ठा थी और इन्होने अन्य शास्त्रो के भी ग्रन्थ बनाये है। आफ्रेचसूची से ज्ञात होता है कि दिवाकर के पुत्र और शिव के पितृव्य केशव ने सन् १५६४ (शक १४८६) मे ज्योतिषमणिमाला नामक ग्रन्थ बनाया था। नामो से तो ये इसी वश के केशव ज्ञात होते है परन्तु मल्लारि और विश्वनाथ के समयो से —जो कि निश्चित ज्ञात है—इनके इस समय की सगति नही लगती। इस वंश के शेष ग्रन्थकारो का वर्णन आगे है। मल्लारि के लेख से ज्ञात होता है कि इस वश के कुलदेवता मल्लारि थे।

नृसिह ने शक १५४३ मे बनायी हुई सिद्धान्तशिरोमणि की अपनी टीका मे लिखा है कि दिवाकर का देहान्त काशी मे हुआ। वे गणेश दैवज्ञ के साक्षात् शिष्य थे अत लगभग शक १५०० तक दक्षिण मे ही रहे होगे। इस वश के ग्रन्थकारो के शक १५३३ के बाद के ग्रन्थ काशी मे बने है, इससे ज्ञात होता है कि यह विद्वत्-कुल शक १५०० के बाद २०-२५ वर्ष के भीतर ही काशी गया होगा। इनमे से किसी विद्वान को दिल्ली दरबार का प्रत्यक्ष आश्रय होने का कोई प्रमाण नही मिलता, पर इस वश के राजमान्य होने का वर्णन है।

मल्लारि

ये उपर्युक्त विष्णु के कनिष्ठ भ्राता है। इन्होंने ग्रहलाघव की टीका की है। उसमे टीकाकाल बडी विलक्षण रीति से लिखा है। वह यह है—

> बाणोनाच्छकत कुरामविहृतान्मूल हि मास स युक्
> बाणैर्भञ्च दशोनित दिनमितिस्तस्या दल स्यात्तिथि।
> पक्ष स्यात्तिथिसमितोऽखिलयुति . सप्ताब्धितिथ्युन्मिता
> बालाख्यो गणको लिलेख च तदा टीका परार्थ त्विमाम्॥
> (१५२४+७+१+१+२+१२=१५४७)

इसका अभिप्राय यह है कि शके १५२४, आश्विन (सप्तम) मास, शुक्ल (प्रथम) पक्ष, प्रतिपदा (१), सोम (द्वितीय) वार, उत्तराफाल्गुनी (१२वें) नक्षत्र मे बाल नामक गणक ने यह टीका लिखी है। इसका रचनाकाल भी यही होगा, क्योकि यह इनके भाई विश्वनाथ के समय से मिलता है।

इस टीका में मल्लारि ने ग्रहलाघव की उपपत्ति लिखी है। ग्रहलाघव सरीखे ग्रन्थ

की उपपत्ति लिखना सिद्धान्त की उपपत्ति की अपेक्षा कठिन है तथापि मल्लारि ने यह कार्य उत्तम रीति से सम्पन्न किया है।

विश्वनाथ

ये भटोत्पल सरीखे एक टीकाकार हुए है। गोलग्रामस्थ दिवाकर के ये पुत्र हैं। इनका कुलवृत्तान्त विष्णु के वर्णन मे लिखा है। ताजिकनीलकण्ठी की टीका में इन्होने टीकाकाल इस प्रकार लिखा है—

चन्द्रबाणशरचन्द्र १५५१ सम्मिते हायने नृपतिशालिवाहने।
मार्गशीर्षसितपञ्चमीतिथौ विश्वनाथविदुषा समापितम्॥

नीलकण्ठी की इनकी टीका की मैंने अनेक पुस्तकें देखी, यह श्लोक उन सबो में नही है पर कुछ मे है। हम लोग ग्रन्थरचना-कालज्ञान के विषय मे उदासीन रहते हैं, इसका यह एक उदाहरण है। अधिक लोगो ने उपेक्षाबुद्धि से यह श्लोक नही लिखा है। इस शक मे सन्देह बिलकुल नही है। उसी टीका के अन्य दो-चार स्थलो के उल्लेखो से उसकी सत्यता स्पष्ट हो जाती है। विश्वनाथ ने सूर्यसिद्धान्तादि अनेक ग्रन्थो की उदाहरणरूपी टीकाएँ की है। उदाहरण मे मुख्यतया शक १५३४ लिया है और कारण-वशात् शक १५३०, ३२, ४२, ५५ भी लिये है। पातसारणी की टीका मे उदाहरणार्थ शक १५५३ और केशवी-जातकपद्धति मे १५०८ लिया है। जातकपद्धति से लोग जन्मपत्रिका बनाते हैं अत १५०८ अनुमानत विश्वनाथ का जन्मशक होगा और इनके ग्रन्थों का रचनाकाल शक १५३४ से १५५६ पर्यन्त होगा। ग्रहलाघवटीका का इनका एक वाक्य ऊपर दिया है। उसमे इन्होने गणेश दैवज्ञ को गुरु कहा है। यह कथन केवल औपचारिक है, जैसे कि शक १२३८ की महादेवीसारणी के टीकाकार धनराज ने अपनी शक १५५७ की टीका मे महादेव को गुरु कहा है।

कृष्णशास्त्री गोडबोले ने ग्रहलाघव के अन्त मे ३ श्लोक दिये है। उन्होने लिखा है कि उनमे ग्रह लाघव बनने के २११ वर्ष बाद विश्वनाथ ने दृक्प्रत्यय के लिए बीज-संस्कार दिया है। इस प्रकार विश्वनाथ का काल शक १६५३ होता है परन्तु ग्रहलाघव-टीकाकार विश्वनाथ के वशवृत्त और ग्रन्थो से यह निर्विवाद सिद्ध हो चुका है कि उनका काल शक की १७ वी नही बल्कि १६ वी शताब्दी है। ग्रहलाघव की विश्वनाथकृत टीका की मैंने अनेक पुस्तकें देखी हैं। उपर्युक्त श्लोक उनमे से मुझे एक मे भी नही मिले। इन श्लोको के कर्ता विश्वनाथ दूसरे होगे। गोपालात्मज विश्वनाथ दैवज्ञ सगमेश्वरकर ने काशी मे शक १६५८ मे व्रतराज नामक ग्रन्थ बनाया है। ये श्लोक उन्ही के होंगे।

ग्रन्थ

विश्वनाथ के उदाहरणरूप टीकाग्रन्थ ये हैं—(१) सूर्यसिद्धान्त पर इनकी गहनार्थप्रकाशिका नाम्नी टीका है। उसमें इन्होंने लिखा है कि मैं सूर्यसिद्धान्त पर उदाहरण लिख रहा हूँ, इसकी उपपत्ति नृसिंह दैवज्ञ ने लिखी है। नृसिंह का सौरभाष्य शक १५३३ का है अतः विश्वनाथ का उदाहरण इसके बाद का होगा। इसकी ग्रन्थसंख्या ५००० है। (२) सिद्धान्तशिरोमणि-टीका, (३) करणकुतूहलटीका, (४) मकरन्दटीका, (५) ग्रहलाघवटीका, (६) गणेशदैवज्ञकृत पातसारणीटीका, (७) अनन्तसुधारसटीका, (८) रामविनोदकरणटीका, (९) अपने भाई विष्णु के करण की टीका, यह शक १५४५ की है। (१०) केशवीजातकपद्धति की टीका, (११) ताजिकनीलकण्ठी की समातन्त्रप्रकाशिका नाम्नी शक १५५१ की टीका। आफ्रेचसूची में इनकी ये अन्य टीकाएँ लिखी हैं—(१२) सोमसिद्धान्तटीका, (१३) तिथिचिन्तामणिटीका, (१४) चन्द्रमानतन्त्रटीका, (?) (१५) बृहज्जातकटीका, (१६) श्रीपतिपद्धति-टीका, (१७) वसिष्ठसंहिताटीका, (१८) बृहत्संहिताटीका।[1]

टीकाओं में विश्वनाथ ने उदाहरण दिये हैं अतः वे अभ्यास करने वालों के लिए बड़े उपयोगी हैं। कृष्णशास्त्री गोडबोले ने मराठी में सोदाहरण ग्रहलाघव छपाया है, वह विश्वनाथी टीका का प्रायः अनुवाद है। विश्वनाथ ने टीकाओं में यद्यपि उपपत्ति नहीं लिखी है पर उनसे ज्ञात होता है कि ये सिद्धान्त के अच्छे ज्ञाता थे। ये सब ग्रन्थ इन्होंने काशी में बनाये हैं।

नृसिंह, जन्मशक १५०८

गोलग्रामस्थ दिवाकर के ज्येष्ठ पुत्र कृष्ण के ये पुत्र थे। इनका जन्म शक १५०८ में हुआ था। इन्होंने अपने पितृव्य विष्णु और मल्लारि से अध्ययन किया था। शक १५३३ में इन्होंने सूर्यसिद्धान्त पर सौरभाष्य नाम की टीका की है, उसमें उपपत्ति है। इसकी ग्रन्थसंख्या ४२०० है। सिद्धान्तशिरोमणि पर इनकी वासनावार्तिक नाम की शक १५४३ की टीका है। उसे वासनाकल्पलता भी कहते हैं। इसकी ग्रन्थसंख्या ५५०० है। इन दोनों टीकाओं से ज्ञात होता है कि इन्हें ज्योतिषसिद्धान्त का अच्छा ज्ञान था। इनके पुत्र दिवाकर के लेख से ज्ञात होता है कि ये अच्छे मीमांसक भी थे।

---

१. इनमें से २, ७, ८, ९ ये चार टीकाएँ मैंने देखी हैं। इनके नाम गणकतरङ्गिणी से लिखे हैं।

शिव

ये ऊपर के पृष्ठ ३८३ मे दिये हुए विष्णु के वशज कृष्ण के पुत्र और नृसिंह के भ्राता हैं। इनका जन्मशक १५१० होगा। सुधाकर ने लिखा है कि इन्होंने अनन्तसुधारस की टीका की है। मुहूर्तचूडामणि नामक इनका एक मुहूर्त ग्रन्थ है। इनके शिष्य और भ्रातृपुत्र दिवाकर ने अपनी जातकपद्धति मे इन्हे जगद्गुरु कहा है। इनके दूसरे भतीजे रङ्गनाथ ने भी सिद्धान्तचूडामणि मे इनकी बडी बड़ाई की है। सुधाकर ने लिखा है कि एक अन्य शिव ने, जो कि राम दैवज्ञ के पुत्र थे, जन्मचिन्तामणि नामक ग्रन्थ बनाया है।

कृष्ण

इनका कुल बड़ा प्रसिद्ध है। इसमे बहुत से विद्वान् हुए हैं। उनके किये हुए वशंवर्णन के आधार पर यह वशवृक्ष दिया है—
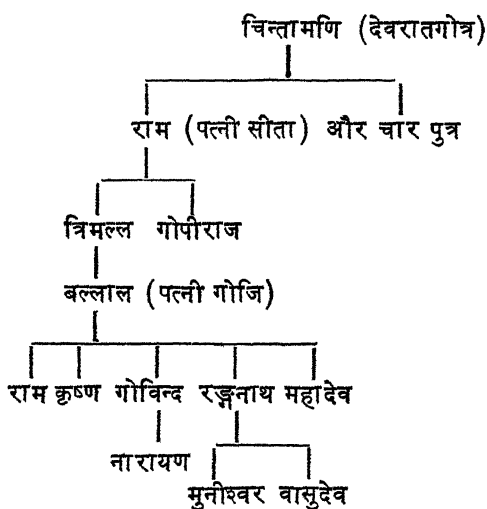
स्थान

चिन्तामणि यजुर्वेदी ब्राह्मण थे। ये विदर्भ देश में पयोष्णी-तट पर दधिग्राम मे रहते थे। इसके विषय मे मुनीश्वर ने मरीचि टीका के अन्त मे लिखा है—'एलिचपुरसमदेशे तटे पयोष्ण्या शुभे दधिग्रामे।' गोविन्द के पुत्र नारायण की जातककेशवी की टीका से ज्ञात होता है कि दधिग्राम की पलभा ४।। अर्थात् अक्षाश २१।१५ है। एलिचपुर के अक्षाश इतने ही हैं अतः इसी अक्षवृत्त पर एलिचपुर के पूर्व या पश्चिम

दहीगाव होना चाहिए। बल्लाल काशी चले गये। इनके बाद के इनके वशजो के ग्रन्थो से ज्ञात होता है कि वे काशी मे ही रहते थे, तथापि जातककेशवी की नारायणकृत टीका से ज्ञात होता है कि वह दधिग्राम मे ही बनी है।

पूर्वजवृत्त

कृष्ण और मुनीश्वर ने लिखा है कि चिन्तामणि के पुत्र राम को इतना अच्छा भविष्यज्ञान था कि विदर्भ देश के राजा उनकी आज्ञानुसार चलते थे। कृष्ण, रङ्गनाथ इत्यादिकों के कालानुसार राम का काल लगभग शक १४४० होगा। सन् १५०० (शक १४२२) के लगभग ब्राह्मणी राज्य के ५ भाग हुए। उनमे से एक राज्य बरार (विदर्भ देश) मे हुआ। उसकी राजधानी एलिचपुर थी। राम के निदेशवर्ती विदर्भ-राज एलिचपुर के ही राजा होगे। बल्लाल रुद्र के बडे भक्त थे। रङ्गनाथ ने सूर्य-सिद्धान्त की टीका मे लिखा है कि बल्लाल के ज्येष्ठ पुत्र राम ने अनन्तसुधाकर की उपपत्ति लिखी है। यह अनन्तसुधाकर गत पृष्ठो मे वर्णित अनन्त का सुधारस ही होगा। मरीचिटीका से ज्ञात होता है कि राम भी शिव के बडे भक्त थे और वे शक १५५७ मे विद्यमान थे।

स्ववृत्त

कृष्ण बल्लाल के द्वितीय पुत्र है। इन्होने भास्कराचार्य के बीजगणित की बीज-नवांकुर नाम्नी टीका की है। इसे बीजपल्लव और कल्पलतावतार भी कहते है। इसमे इन्होने कुछ स्वकीय नवीन युक्तियाँ भी लिखी है। प्राचीन टीकाओ मे यह टीका उत्कृष्ट और विद्वन्मान्य है। इसमे इन्होने अपने को ग्रहलाघवकार गणेश दैवज्ञ के भतीजे नृसिह के शिष्य विष्णु का शिष्य बताया है। पता नही, ये गोल ग्रामस्थ विष्णु है या अन्य कोई। इन दोनो का काल बिलकुल पास-पास है। कृष्ण ने श्रीपतिकृत जातक-पद्धति की उदाहरण रूप टीका की है, उसमे उदाहरणार्थ खानखाना नामक प्रधान का जन्मकाल शक १४७८ लिया है। शक १५०० के पूर्व खानखाना के प्रधान होने की सम्भावना नही है। रङ्गनाथ ने शक १५२५ की सूर्यसिद्धान्त की टीका में कृष्ण-कृत दोनो टीकाओं का उल्लेख किया है और वही यह भी लिखा है कि दिल्ली के बादशाह जहांगीर के दरबार मे कृष्ण की बडी प्रतिष्ठा थी। जहागीर शक १५२७ से १५४९ पर्यन्त गद्दी पर थे अत. कृष्ण ने ये दोनो टीकाएँ लगभग शक १५०० और १५३० के मध्य में बनायी होगी। इनका छादकनिर्णय नामक एक और ग्रन्थ है, उसे सुधाकर द्विवेदी ने छपाया है। मरीचिटीका से ज्ञात होता है कि ये नूरदिन नामक यवन अधिकारी के प्रिय थे और शक १५५७ मे विद्यमान नही थे।

वंशज

गोविन्द के पुत्र नारायण ने केशवी जातक-पद्धति की टीका की है, उसमे उदाहरणार्थ शक १५०९ लिया है। यह कदाचित् उनका जन्मशक होगा। नारायणीय बीज नामक एक बीजगणित का ग्रन्थ है, उसमे सब सूत्र आर्याबद्ध है। सुधाकर द्विवेदी का कथन है कि यह ग्रन्थ इन्ही नारायण का होगा। मुनीश्वर के गुरु नारायण ये ही होगे। इस वश के कुछ पुरुषो का वर्णन आगे किया है।

रङ्गनाथ

इनका वंशवृत्त ऊपर कृष्ण के वर्णन मे लिख चुके है। सूर्यसिद्धान्त की इन्होने गूढार्थप्रकाशिका नाम की टीका की है। उसका बहुत-सा विवेचन पहले प्रसगवशात् हो चुका है। उसमे उसके रचनाकाल के विषय मे लिखा है—

शके तत्त्वतिथ्युन्मिते १५२५ चैत्रमासे सिते शभुतिथ्या बुधेऽर्कोदयान्मे।
दलाढ्यद्विनाराचनाडीषु ५२।३० जातौ मुनीशार्कसिद्धान्तगूढप्रकाशौ ॥

इसका अर्थ यह है कि शक १५२५ चैत्र सित (या असित) पक्ष मे शिवतिथि बुधवार को सूर्योदय से ५२ घटी ३० पल पर मुनीश्वर नामक पुत्र और गूढार्थप्रकाशिका टीका, ये दोनो हुए। इस टीका मे यह भी लिखा है कि कृष्ण जहाँगीर के मान्य थे। जहाँगीर के राज्यकाल का आरम्भ शक १५२७ से होता है, इसके पहिले वे राजा नहीं थे, अत. इस शक के विषय मे सन्देह होता है। परन्तु मुनीश्वर के ग्रन्थ शक १५५७, १५६८, १५७२ के है, अत यह शक असम्भव नही है। रङ्गनाथ ने शक १५२५, मे टीका आरम्भ की होगी। शक १५२५ गत चैत्र की शुक्ल या कृष्ण किसी भी एकादशी को बुधवार नही आता है। शुक्लपक्ष मे बुधवार को १० घटी चतुर्दशी थी, अत शिव का अर्थ चतुर्दशी करने से ठीक सगति लगती है। गत शक १५२४ के चैत्र कृष्ण मे बुधवार को दशमी ८ घटी थी और इसके बाद एकादशी थी, अत वर्तमान शक १५२५, असित पक्ष और एकादशी अर्थ करने से भी ठीक सगति लगती है। साराश यह कि शक १५२५ मे रङ्गनाथ थे। मरीचिटीका से ज्ञात होता है कि वे शक १५५७ मे नही थे।

रङ्गनाथ ने सूर्यसिद्धान्त की टीका काशी मे बनायी है। उसमें सर्वत्र उपपत्ति दी है। उससे ज्ञात होता है कि इन्हे ज्योतिषसिद्धान्त का और विशेषत. भास्करीय सिद्धान्त का अच्छा ज्ञान था और इन्होने गोलादि यन्त्र स्वय बनाकर उनके द्वारा शिष्याध्यापन इत्यादि किया था।

ग्रहप्रबोध, शक १५४१

यह करणग्रन्थ है। इसमे आरम्भवर्ष शक १५४१ और सब ३८ श्लोक हैं। इनमें केवल ग्रहस्पष्टीकरण है। अहर्गणसाधनरीति, ११ वर्ष का चक्र इत्यादि इसकी सभी बाते ग्रहलाघव सदृश ही हैं। अन्त मे ग्रन्थकार ने लिखा है

> आसीत् गार्य (? र्ग्य) कुलैकभूषणमणिर्विद्वज्जनानन्दकृत्
> शिष्याज्ञानतमोनिवारणरविर्भूमीपतिप्रार्थितः।
> ज्योति शास्त्रमहाभिमानमहिमास्पष्टीकृतब्रह्मधी-
> धैर्योदार्यनिधिस्तुकेश्वर इति ख्यातो महीमण्डले ॥३६॥
> तदात्मजस्तच्चरणैकभक्तिस्तद्वत् प्रसिद्धः शिवनामधेय ।
> तदङ्गजो दृग्गणितानुसार ग्रहप्रबोध व्यतनोच्च नाग ॥३७॥

इससे ज्ञात होता है कि ग्रन्थकार का नाम नागेश, उनके पिता का नाम शिव और पितामह का नाम तुकेश्वर था। तुकेश्वर और शिव का वर्णन पता नही कहा तक सत्य है, पर ग्रन्थकार का यह कथन कि मैंने दृग्गणितानुसार ग्रन्थ बनाया है उनके ग्रन्थ को देखने से निरर्थक जान पडता है। इन्होने अपना स्थान नही लिखा है, पर चर-खण्ड ४$\frac{1}{2}$ पलभा के दिये हैं। ग्रन्थ मे क्षेपक या चक्रध्रुवक नही है, परन्तु अनुमानत वे सारणीयुक्त ग्रन्थ मे होगे। मेरी देखी हुई पुस्तक (डेक्कन कालेज सग्रह, न० ४२२, सन् १८८१-८२, आनन्दाश्रम न० २६१६) मे सारणियाँ नही है। नागनाथ के शिष्य यादव ने इस पर शक १५८५ का उदाहरण दिया है।

मुनीश्वर

गूढार्थप्रकाशिकाकार रङ्गनाथ के ये पुत्र हैं। उस टीका का काल (शक १५२५) ही इनका जन्मकाल है। इनके तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध है। एक भास्कराचार्य की लीलावती की निसृष्टार्थदूती लीलावतीविवृति नाम्नी टीका, दूसरा सिद्धान्तशिरोमणि के गणिताध्याय और गोलाध्याय की मरीचि नाम्नी टीका और तीसरा सिद्धान्तसार्वभौम इनका स्वतन्त्र सिद्धान्तग्रन्थ है। गणकतरङ्गिणीकार ने लिखा है कि इनके अतिरिक्त पाटीसार नामक इनका एक ग्रन्थ है। यह इनका पाटीगणित का स्वतन्त्र ग्रन्थ होगा। मरीचिटीका के अन्त मे इन्होंने पूर्वार्धसमाप्तिकाल बडी विलक्षण रीति से लिखा है। वह यह है'—

> शको भूयुतो नन्दभूहृत् फलस्य निलेकस्य मूलं निरेकं भवेद् भम्।
> तदर्धं भवेन्मास इन्दूनितोऽय तिथिर्द्विचूनिता पक्षवारौ भवेताम् ॥

नक्षत्रवारतिथिपक्षयुतिश्च योगो विश्वैर्युताखिलयुति पदमभ्रवेदाः।
अस्या यदात्र परिपूर्तिमितो मरीचि श्रीवासुदेवगणकाग्रजनिर्मितोऽयम् ॥१३॥

इससे सिद्ध होता है कि शक १५५७ आषाढ़ (४) शुक्ल पक्ष (१) तृतीय (३) रविवार (१) पुष्य नक्षत्र (८) व्याघात योग (१३) मे टीका समाप्त हुई। मरीचि का उत्तरार्ध शक १५६० मे समाप्त हुआ है।

सुधाकर ने लिखा है कि सिद्धान्तसार्वभौम शक १५६८ मे और मुनीश्वरकृत उसकी टीका शक १५७२ मे समाप्त हुई है। मरीचिटीका बड़ी विस्तृत है। उसकी ग्रन्थसख्या २५००० है। उसमे प्राचीन वचनो का बहुत बड़ा सग्रह है। लीलावती-टीका लगभग ७००० है। वह भी विद्वन्मान्य है। सार्वभौम के पूर्वार्ध की टीका ८००० है। मुनीश्वर के ग्रन्थो के अनेक स्थलो से ज्ञात होता है कि वे भास्कर के बड़े अभिमानी थे। सार्वभौमसिद्धान्त मे वर्षमान, ग्रहभगण इत्यादि मान सूर्यसिद्धान्त के ही लिये हैं।

मुनीश्वर का दूसरा नाम विश्वरूप था। मरीचिटीका मे उन्होने लिखा है कि कार्तिक स्वामी की कृपा से मुझे ज्ञान प्राप्ति हुई। कृष्ण के शिष्य नारायण को इन्होने अपना गुरु बताया है। ये दोनो इसी वश के होगे। मुनीश्वर के ग्रन्थो से ज्ञात होता है कि इन्हे बादशाह शाहजहा का आश्रय था। इन्होने सिद्धान्तसार्वभौम मे शाहजहा के राज्याभिषेक का हिजरी सन्, समय और उस समय की लग्नकुण्डली दी है। उससे ज्ञात होता है कि हिजरी सन् १०३७, शक १५४९ माघ शुक्ल १० इन्दुवार, ता० ४ फरवरी सन् १६२८ ई० को सूर्योदय के ३ घटी बाद मुहूर्त मे राज्याभिषेक हुआ।

दिवाकर जन्मशक १५२८

ये गोलग्रामस्थ विद्वत्कुलोद्भूत नृसिह के पुत्र हैं। इनका जन्म शक १५२८ है। इन्होने अपने काका शिव से अध्ययन किया था। शक १५४७ मे १९ वर्ष की अवस्था मे इन्होने 'जातकमार्गपद्म' नामक ग्रन्थ बनाया। उसे पद्मजातक भी कहते है। केशवीय जातकपद्धति की इन्होने शक १५४८ मे प्रौढ़मनोरमा नाम की और अपनी जातकपद्धति की शक १५४९ मे गणितत्त्वचिन्तामणि नाम्नी सोदाहरण टीका की है। पञ्चाङ्गसाधक ग्रन्थ मकरन्द की इन्होंने मकरन्दविवरण नाम की सोदाहरण टीका की है। इनके ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि ये व्याकरण, न्याय, काव्य और साहित्य मे निपुण थे। मकरन्दविवरण मैंने देखा है। शेष

	अक्षाश	तूलाश		अक्षाश	तूलाश
काबुल	३४।४०	१०४।०	अहमदाबाद	२३।०	१०८।२०
खम्बायत	२२।२०	१०९।२०	बरारपुर	२१।०	१११।०
उज्जयिनी	२२।१	११२।०	लाहौर	३१।५०	१०९।२०
इन्द्रप्रस्थ	२८।१३	११४।१८	अर्गलापुर	२६।३५	११५।०
सोमनाथ	२२।३५	१०६।०	बीजापुर	१७।२०	११८।०
काशी	२६।५५	११७।२०	गोलकुण्डा	१८।४	११४।१९
लखनऊ	२६।३०	११४।१३	अजमेर	२६।५	१११।५
देवगिरि	२०।३०	१११।०	मुलतान	२९।४०	१०७।३५
कन्नौज	२६।३५	११५।०	माण्डव	२७।०	१२१।०
कश्मीर	३५।०	१०८।०	समरकन्द	३९।४०	९९।०

तुरीययन्त्र से वेध करने की इन्होने विस्तृत विधि लिखी है। त्रिप्रश्नाधिकार और ग्रहणाधिकार मे बहुत से नवीन प्रकार दिये है। लिखा है कि सूर्यग्रहण के समय चन्द्रपृष्ठनिवासियो को पृथ्वीग्रहण दिखायी देता है और यवनो ने शुक्रकृत सूर्यबिम्ब-भेद देखा है। मेघ, ओला, भूकम्प और उल्कापात के कारण बताये है. वे पूर्ण सत्य तो नही पर बिलकुल भोलेपन के भी नही है। वास्तविक कारण के वे बहुत कुछ सन्निकट है। अकगणित, रेखागणित, क्षेत्रविचार और ज्यासाधन सम्बन्धी बहुत-से नवीन प्रकार इनके ग्रन्थ मे है। अन्य सिद्धान्तो मे ३४३८ त्रिज्या मानकर प्रति पौने चार अश की भुजज्याएँ दी है, पर इसमे ६० त्रिज्या मानकर प्रति अश की भुजज्याएँ दी है। इससे गणित मे बडी सुविधा होती है। ग्रहभोग द्वारा विषुवाश लाने की इन्होने सारणी दी है। यह सारणी अथवा इसे बढाने की रीति अन्य सिद्धान्तो मे नही है, केवल केरोपन्तीय ग्रहसाधन कोष्ठक मे है। साराश यह कि इनके ग्रथ मे बहुत-सी नवीन रीतियाँ है। इनमे से कितनी इनकी स्वकीय है, यह जानना बड़ा कठिन है। दुःख की बात है कि इनके ग्रथ मे वर्णित नवीन शोधो की बाद मे वृद्धि नही हुई।

कमलाकर के ज्येष्ठ बन्धु दिवाकर इनके गुरु थे, इत्यादि बातो के द्योतक इनके श्लोक पहिले लिख चुके है। सिद्धान्त सार्वभौमकार मुनीश्वर से इनका अत्यन्त विरोध था। दोनों समकालीन थे। पता नही, मुनीश्वर से द्वेष होने के कारण ही ये उनके और भास्कर के ग्रन्थो का विरोध करने लगे अथवा इसका अन्य कोई कारण था। ग्रहस्पष्टीकरण के लिए बनायी हुई मुनीश्वर की भङ्गी का कमलाकर के कनिष्ठ बन्धु

रङ्गनाथ ने भङ्गी-विभङ्गी नामक खण्डन किया था और मुनीश्वर ने उसका प्रतिखण्डन किया था (गणकतरङ्गिणी पृष्ठ ९२)।

रङ्गनाथ

ये गोलग्रामस्थ प्रसिद्ध विद्वत्कुल मे हुए है। इनका जन्मशक लगभग १५२१ होगा। सिद्धान्तशिरोमणि की इनकी मितभाषिणी नाम की टीका है। सुधाकर ने लिखा है कि इनका सिद्धान्तचूडामणि नामक स्वतन्त्र ग्रन्थ है। उसमे १२ अधिकार और ४०० श्लोक है। वह सूर्यसिद्धान्तानुयायी है। रङ्गनाथ ने उसके रचनाकाल के विषय मे लिखा है—

> मासाना कृतिरब्धिहृद्युतिरसौ खाब्जैर्विहीना तिथि-
> र्बाणैर्हृद्द्विहतोडुवासरामितिर्वाराङ्गभागात्पदम्।
> पक्षः सर्वयुति शको द्विखदिनैर्युक्ता ॥[1]

इससे सिद्ध होता है कि शके १५६५ पौष (१०) शुक्ल (१) पूर्णिमा (१५) आर्द्रानिक्षत्र (६) ब्रह्मयोग (२५) शुक्रवार (६) को ग्रन्थ समाप्त हुआ।

नित्यानन्दकृत सिद्धान्तराज, शक १५६१

नित्यानन्द ने विक्रमसवत् १६९६ (शक १५६१) मे 'सर्वसिद्धान्तराज' बनाया है। इनका निवासस्थान कुरुक्षेत्र के समीप इन्द्रपुरी, गोत्र मुद्गल, गौड़कुल और अनुशासन डुलीनहट्ट था। सुधाकर ने लिखा है कि डुलीनहट्ट इनका परम्परागत मूलस्थान था। इनके पिता-पितामह इत्यादिकों के नाम क्रमश. देवदत्त, नारायण, लक्ष्मण और इच्छा हैं।

सिद्धान्तराज मे गणिताध्याय और गोलाध्याय मुख्य दो भाग हैं। प्रथम में मीमांसा, मध्यम, स्पष्ट, त्रिप्रश्न, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, शृङ्गोन्नति, भग्रहयुति, छाया ये ९ अधिकार और द्वितीय में भुवनकोश, गोलबन्ध तथा यन्त्राधिकार है। अब तक वर्णित सिद्धान्तादि सब ग्रन्थो से इसमें एक विशेषता यह है कि यह ग्रन्थ सायन मान का है। आरम्भ मे ही मीमासाध्याय में इस बात का विस्तृत विवेचन किया है कि सायन

---

१. सुधाकर ने इस श्लोक द्वारा शक १५६२ निकाला है परन्तु दृष्टिदोष के कारण ऐसा हुआ है। उस शक में पौष की पूर्णिमा को तीसरा नक्षत्र होना—जैसा कि उन्होंने लिखा है—असम्भव है, छठा आता है। उससे योग १५६२ नहीं आता।

गणना ही मुख्य और देवर्षिसम्मत है। ग्रहों की प्रदक्षिणासख्या प्रभृति इस ग्रन्थ के मान ये है—

कल्प मे अर्थात् ४३२०००००००० वर्षों में—

रवि	४३२००००००००	शनि	१४६८३५९८१
रव्युच्च	१७१९४५	सावनदिन	१५७७८४७७४८१०१
चन्द्र	५७७५०९६८९६५	सौरमास	५१८४०००००००
चन्द्रोच्च	४८८३२७१०३	अधिमास	१५९०९६८९६५
मङ्गल	२२९६९६८६३९	चान्द्रमास	५३४३०९६८९६५
बुध	१७९३९५३४११४	तिथि	१६०२९२९०६८९५०
गुरु	३६४३५६६९८	क्षयाह	२५०८१३२०८४९

शुक्र ७०२२१८०५३८ कल्पारम्भ से सृष्ट्युत्पत्ति पर्यन्त दिव्य वर्ष ९०४१०
वर्षमान ३६५ २४२५३४२८=३६५।१४।३३।७.४०४४८
आधुनिक सूक्ष्म सायन वर्षमान ३६५।१४।३१।५३ ४२

स्पष्ट है कि पीछे वर्णित प्रत्येक सिद्धान्त के अको से ये अक बहुत भिन्न हे। इसके कल्प-दिन कम हैं, इस कारण वर्षमान भी दूसरो से न्यून है और प्रदक्षिणासख्याएँ अधिक है। शुक्र की प्रदक्षिणासख्या कम है, परन्तु उसमे कुछ अशुद्धि मालूम होती है। ग्रहो में निम्नलिखित बीजसस्कार दिया है।

> सृष्ट्यादितो गतसमा खयुगाङ्गनागैं ४ (?) ६४० स्तष्टा गतैष्यत
> इहाब्दचयोऽल्पको य। ग्राह्य स एव विबुधैर्ग्रहबीजसिध्यै।।
> बीजाब्दास्त्र्यगसिन्धुभि ४७३० क्षितिभुजै २१० रष्टाब्धिभि ४८०
> दोंरसै. ६२० पञ्चाङ्गै ६५० ४९० रूपाभ्रचन्द्रै १०१० क्रमात्।।
> भूविश्वैर्दशसगुणैश्च विहृता लब्ध कलाद्यं वियुक्
> सूर्यादिद्युचरेषु युक्तमथ तच्चन्द्रोच्चपाताख्यया।।
> सूर्योच्चे पञ्च लिप्ता सदा स्वम्।।

ग्रन्थकार ने आरम्भ में ही लिखा है—

> दृष्ट्वा रोमकसिद्धान्त सौरञ्च ब्रह्मगुप्तकम्।
> पृथक् स्पष्टान् ग्रहान् ज्ञात्वा सिद्धान्तं निर्ममे स्फुटम्।।१४।।

पता नही चलता, यह रोमकसिद्धान्त कौन-सा है। मानों की भिन्नता से स्पष्ट है कि यह पञ्चसिद्धान्तिकोक्त अथवा टालमी का रोमक नही है। सिद्धान्तसम्राट्

(शक १६५१) मे रोमकसिद्धान्त का उल्लेख है। वह सिद्धान्त कौन-सा है और नित्यानन्दकथित रोमक वही है या दूसरा कोई—यह जानने का मेरे पास सम्प्रति साधन नही है। मालूम होता है, नित्यानन्द स्वय वेध करते थे। उनके समय (सन् १६३९ ई०) दिल्ली दरबार मे मुसलमान ज्योतिषी रहे होगे और उनके पास मुसलमानी ज्योतिष के कुछ ग्रन्थ रहे होगे। सिद्धान्तसम्राट् मे इस प्रकार के कुछ ग्रन्थो का उल्लेख है। नित्यानन्द ने ये ग्रन्थ भी देखे होगे।

इस ग्रन्थ की प्रति मुझे कैलाशवासी रावसाहब विश्वनाथ नारायण मण्डलीक के पास मिली। उन्होने यह जयपुर के एक विद्वान् की पुस्तक से लिखायी थी। इससे अनुमान होता है कि उस प्रान्त मे यह सिद्धान्त प्रसिद्ध होगा। पता नही, पञ्चाङ्गादि गणित मे इसका प्रत्यक्ष उपयोग कभी होता था या नही।

कृष्ण, शक १५७५

काश्यपगोत्रीय महादेवात्मज कृष्णकृत 'करणकौस्तुभ' नामक एक करणग्रन्थ शक १५७५ का है। इसमे यह नही लिखा है कि यह ग्रन्थ अमुक सिद्धान्तानुसार बना है, तथापि ग्रहकौतुक और ग्रहलाघव मे थोडा-सा फेर-फार करके इसमे ग्रहगतियाँ और क्षेपक दिये है। ग्रन्थकार ने ग्रहकौतुककार केशव की वन्दना की है और आरम्भ मे लिखा है—

प्रकुरु तत्करण ग्रहसिद्धये सुगमदृग्गणितैक्यविधायि यत्।
इति नृपेन्द्रशिवाभिधनोदित प्रकुरुते कृतिकृष्णविधिज्ञराट्।।

इससे ज्ञात होता है कि इन्होने उपर्युक्त दोनो ग्रन्थ और स्वकृत वेध के आधार पर यह ग्रन्थ बनाया है। इसमें लिखित 'शिव' मराठा राज्य के सस्थापक शिवाजी है। शक १५७५ (सन् १६५३ ई०) में कृष्ण ग्रन्थलेखन और वेधादि मे प्रवृत्त हो गये थे, इसमे सन्देह नही है। उस समय शिवाजी २६ वर्ष के थे और वे राजस्थापन के ही प्रपञ्च में लगे थे। उस स्थिति में भी उन्होने ग्रन्थकार से दृक्प्रत्ययद ग्रन्थ बनाने को कहा यह बात बडे महत्व की है। ग्रन्थकार ने लिखा है—'कृष्ण कोङ्कणसत्तटाकनगरे देशस्थवर्यो वसन्।' इससे ज्ञात होता है कि ये सह्याद्रिनिकटस्थ मावल नामक स्थान के निवासी देशस्थ महाराष्ट्र ब्राह्मण थे।

इस करण में मध्यग्रहसाधन वर्षगण द्वारा किया है। शक ४५० में शून्य अयनाश और वार्षिकगति ६० विकला मानी है। ग्रहलाघव में ज्याचाप की सहायता नही ली गयी है, पर इसमे ली है। तन्त्ररत्न नामक इनका एक बहुत बड़ा ग्रन्थ है। इन्होंने अपने करण को इसका भाग कहा है। मैंने तन्त्ररत्न नही देखा है।

रत्नकण्ठकृत पञ्चाङ्गकौतुक, शक १५८०

सुलभ रीति से पञ्चाङ्ग बनाने का यह एक सारणीग्रन्थ है। इसमे आरम्भशक १५८० है। यह खण्डखाद्यानुसारी है। इसके कर्ता रत्नकण्ठ है। इनका जन्मकाल शक १५४६ है। इनके पिता का नाम शकर था। शिवकण्ठ नामक पुत्र के लिए इन्होने यह ग्रन्थ बनाया है। ग्रन्थकार ने लिखा है कि इस ग्रन्थ से पूरा पञ्चाङ्ग दो दिन मे बनाया जा सकता है। ऊपर हम लिख चुके है कि ये काश्मीरवासी होगे।

इस ग्रन्थ मे सूर्यचन्द्रगति और तिथ्यादि भोग्यमानो द्वारा तिथ्यादिको के घटी-पल लाने के लिए कोष्ठक बनाये है। स्पष्ट सूर्य-चन्द्र और उनकी गति लाने के बाद तिथ्यादि बनाने मे इस ग्रन्थ का उपयोग होगा अर्थात् इसमे तिथिचिन्तामणि की अपेक्षा अधिक परिश्रम करना पडेगा।

विद्दणकृत वार्षिक तन्त्र

यह ग्रन्थ प्रथम मुझे शोलापुर मे मिला। इसमे कलियुगारम्भ से गणित का आरम्भ किया है, इसलिए इसे तन्त्र कहा है। कौण्डिन्य गोत्रीय मल्लय के पुत्र विद्दण ने इसे बनाया है। इसमे ग्रन्थकार का काल और स्थान नही लिखा है। इसकी एक टीका है, उसमे उदाहरणार्थ शक १६३४ लिया है। टीकाकार ने अपना नाम नही लिखा है। टीका से उनका स्थान बकापुर ज्ञात होता है। बकापुर की पलभा ३।१८ (अक्षाश लगभग १५।२५) और देशान्तर कार्तिक पर्वत से पश्चिम १३ योजन (लगभग १ अश) लिखा है, अत यह धारवाड जिले मे है। इससे और ग्रन्थकार के नाम से ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ कर्नाटक मे प्रचलित था और इसका रचनाकाल शक १६०० से प्राचीन है। बहुत प्राचीन भी हो सकता है। इसमे ग्रहलाघव का एक श्लोक है। पता नही, ग्रहलाघवकार ने वह इससे लिया है या इसी मे ग्रहलाघव से लिया गया है।

इसमे वर्षमान और ग्रहभगण, सब वर्तमान सूर्यसिद्धान्तानुसार है और तदर्थ बीजसंस्कार लिखा है। मकरन्द मे बुधसस्कार ऋण और इसमे धन है। मकरन्द म मङ्गल मे सस्कार नही दिया है, पर इसमे २$\frac{3}{4}$ भगण धन दिया है। शेष बाते मकरन्द की तरह ही है। इस सस्कार से ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ शक १४०० से प्राचीन नही होगा। आफ्रेचसूची मे विद्दणकृत एक ग्रहणमुकुर नामक ग्रन्थ लिखा है।

जटाधरकृत फत्तेशाहप्रकाश, शक १६२६

यह करणग्रन्थ है। बदरी, केदार और श्रीनगर के चन्द्रवशीय राजा फत्तेशाह के राज्य का ४८वॉ वर्ष अर्थात् शक १६२६ इस करण का आरम्भ वर्ष है। इसके

रचयिता का नाम जटाधर, गोत्र गर्ग और उनके पिता, पितामह, प्रपितामह, के नाम क्रमश वनमाली, दुर्गामिश्र और उद्धव है। जटाधर सरहिन्द निवासी थे (प्रो० भण्डारकर की पु० स० रिपोर्ट सन् १८८३–८४ का पृष्ठ ८४ देखिए)।

दादाभट

दादाभट अथवा दादाभाई नामक चितपावन महाराष्ट्र ब्राह्मण ने शक १६४१ मे सूर्यसिद्धान्त की किरणावली नाम की टीका की है। इनके पिता का नाम माधव और उपनाम गांवकर था। सूर्यसिद्धान्तविचार में इस टीका का वर्णन कर चुके है। आफ्रेचसूची मे माधव का सामुद्रिकचिन्तामणि नामक एक ग्रन्थ लिखा है। दादाभट के पुत्र नारायण ने ताजकसुधानिधि के उपसहार मे लिखा है कि माधव पशुपतिनगर मे श्रीशपादाब्जसेवी थे, अत वे कदाचित् काशी मे रहे होगे। माधव के दो पुत्र थे, दादाभट उनमे ज्येष्ठ थे। दादाभट के दो पुत्र थे, नारायण उनमे कनिष्ठ थे। नारायणकृत ग्रन्थ ये है—होरासारसुधानिधि, नरजातकव्याख्या, गणकप्रिया नामक प्रश्नग्रन्थ, स्वरसागर नामक शकुनग्रन्थ और ताजकसुधानिधि। इन ग्रन्थो का काल लगभग शक १६६० होगा।

जयसिंह

भारतवर्षीय ज्योतिषशास्त्र के सम्बन्ध मे जयसिंह एक अपूर्व पुरुष हुए। जिस समय हमारे देश मे केशव और गणेश दैवज्ञ अन्वेषक ज्योतिषी हुए, उसी समय यूरोपखण्ड में कोपर्निकस का जन्म हुआ। उस समय तक दोनो देशो मे ज्योतिष शास्त्र की स्थिति प्रायः समान थी, परन्तु यूरोप मे बाद मे क्रमश उन्नति होते-होते उसमे बहुत बडा परिवर्तन हो गया। ग्रहगतिस्थिति के सम्बन्ध में तो यहाँ तक कह सकते है कि यूरोपीय ज्योतिष अपनी पूर्णावस्था को पहुँच चुका है। यद्यपि यह सत्य है कि ऐसा स्थित्यन्तर होने में दूरबीन की कल्पना और नौकागमन की आवश्यकता, ये दो बातें अधिक सहायक हुईं, तथापि इसका मुख्य कारण यह है कि उस देश में उद्योगी और बुद्धिमान पुरुष बहुत से हुए। मुझे अपने देश मे उनकी जोडी के पुरुष एक मात्र जयसिंह ही दिखाई देते है।

जयसिंह राजपूताने के एक राजा थे। विक्रमसवत् १७५० (शक १६१५, सन् १६९३ ई०) मे ये आमेर मे गद्दी पर बैठे। बाद में इन्होंने वर्तमान जयपुर शहर बसाया और उसे अपनी राजधानी बनाया। इनके सिद्धान्तसम्राट् में इन्हे मत्स्यदेशाधिपति कहा है। भारतीय, मुसलमानी और यूरोपीय ज्योतिषग्रन्थों से दृक्प्रत्यय न होता देख-

कर इन्होने वेधशालाएँ और नवीन यन्त्र बनवाकर उनके द्वारा वेध करके नवीन ग्रन्थ बनाना चाहा और तदनुसार बनवाया। जयपुर, इन्द्रप्रस्थ[1] (दिल्ली), उज्जैन, काशी और मथुरा मे वेधशालाएँ बनवायी, धातुओ के यन्त्र छोटे होते है और वे घिसते है, इत्यादि कारणो से वेधोपयोगी पत्थर और चूने के बडे-बडे सुदृढ यन्त्र बनवाये, जयप्रकाश, यन्त्रसम्राट्, भित्तियन्त्र, वृत्तषष्ठाश इत्यादि कुछ नवीन यन्त्रो की कल्पना की और उत्तम ज्योतिषियो द्वारा सात-आठ वर्ष वेध कराकर अरबी मे जिजमहम्मद और सस्कृत मे सिद्धान्तसम्राट् नामक ग्रन्थ बनवाया। उस समय दिल्ली का बादशाह महम्मदशाह था। प्रथम ग्रन्थ उसी के नाम पर बना है। इसी का नाम शायद मिजस्ति भी है, इसका रचनाकाल हिजरी सन् ११४१ (शक १६५०) है। सिद्धान्तसम्राट् शक १६५३ (सन् १९३१ ई०) मे इन्होने जगन्नाथ पण्डित द्वारा बनवाया है। मुख्यत. यह मिजस्ति का ही अनुवाद है। इसमे १३ अध्याय, १४१ प्रकरण और १९६ क्षेत्रो का विवेचन है। इसमे शक १६५०, ५१, ५२ मे किये हुए वेधो का उल्लेख है और उलूगबेग इत्यादिको के कुछ प्राचीन वेधों की अपने वेधो से तुलना करके ग्रहगत्यादिक मान लाये गये है।

इस प्रान्त मे मुझे सम्पूर्ण सिद्धान्त सम्राट नही मिला। कोल्हापुर के राज्यज्योतिषियो की अपूर्ण पुस्तक से लिखायी हुई इसकी एक प्रति आनन्दाश्रम मे है। उसके आरम्भ के दो अध्यायो मे भूमिका रूप मे खगोल और भूगोल का समान्य विवेचन है। प्रथमाध्याय मे १४ प्रकरण, १६ क्षेत्र और द्वितीयाध्याय मे १३ प्रकरण २५ क्षेत्र है। इनके अतिरिक्त पुस्तक मे यन्त्र, ज्याचापादि रेखागणितसाध्य, त्रिप्रश्न, मध्यम और स्पष्टाध्याय है। स्पष्टाध्याय अपूर्ण है। इतने मे ६७ क्षेत्र है और इन सबो की ग्रन्थसख्या लगभग ५५०० है, अत· सम्पूर्ण ग्रन्थ लगभग १० सहस्र होगा। उसकी ग्रन्थसख्या ५० सहस्र होने की दन्तकथा का उल्लेख सुधाकर ने किया है, पर यह असम्भव है। उन्होने भी सम्पूर्ण ग्रन्थ नही देखा है।

जयसिंह की वेधशाला, वेध, ग्रन्थ और उनकी अदृष्टपूर्व बातो का विस्तृत वर्णन करने से एक छोटा-सा ग्रन्थ बन जायगा। यहाँ इतना ही कह देना पर्याप्त है कि उस समय यूरोपवालों की ग्रहगति-स्थिति की अपेक्षा जयसिंह की अधिक सूक्ष्म होती थी। यह बात उनके और हमारे देश के लिए बडी भूषणास्पद है। इस ग्रन्थ मे वर्षमान सायन लिया है और वार्षिक अयनगति लगभग ५१.४ मानी है। मालूम होता है ग्रन्थ से सायन ग्रह आते है। सायन ग्रहों में अयनाश का संस्कार करके अर्थात् निरयन

१ इन्द्रप्रस्थ के अक्षांश २८।३९ दिये हैं। ये वर्तमान अक्षांशतुल्य ही है।

ग्रह लाना कहा गया है। सूर्यसिद्धान्तानुसार भी भगणादि मान देकर, मालूम होता है तदर्थ बीजसस्कार दिया है।

अरबी का सम्पूर्ण ग्रन्थ जयसिह ने ही नही बनाया होगा। उनके यहाँ बहुत से विद्वान् रहते थे, उन्ही से उन्होने बनवाया होगा। सिद्धान्तसम्राट् मे उसी के अधिकाश प्रकरणो का जगन्नाथ पण्डितकृत अनुवाद है। जयसिह स्वय भी वेधकुशल, गणितज्ञ और ज्योतिषज्ञ थे। ग्रन्थ मे लिखा है कि कुछ विषयो की उपपत्ति नवीन प्रकार से उन्होने स्वय की है। वेध करके दृक्तुल्य नवीन ग्रन्थ बनाने की कल्पना प्रथम उन्होने की। उन्होने अपने यहाँ उत्तम कारीगर और अरबी, सस्कृत दोनो अथवा एक भाषा जाननेवाले विद्वान् रखे थे। वेध करने के लिए अन्य देशो मे भी ज्योतिषी भेजे थे। वेध का कार्य अनेक स्थानो मे और अनेक मनुष्यो द्वारा होता है, यह स्पष्ट ही है। जयसिह निर्मित नवीन यन्त्रो का वर्णन सिद्धान्तसम्राट् मे है। उनकी वेधशालाओ और यन्त्रो का वर्णन आगे वेधप्रकरण मे किया है।

सिद्धान्तसम्राट् मे प्राचीन सस्कृत ग्रन्थो के अतिरिक्त तैमूरलग के पौत्र उलूगबेग के हिजरी सन् ८४१ (शक १३५९) के ग्रन्थ का उल्लेख है। बूसनस्सर के ग्रन्थ का भी वर्णन है। इसका काल जयसिह के ग्रन्थ से ६१६ वर्ष पूर्व ज्ञात होता है। ये वर्ष हिज्री सन् के होगे। रोमकसिद्धान्त तथा बतलमजुष और अवरवस नामक यवनाचार्यों का भी उल्लेख है। युक्लिड की भूमिति की १५ पुस्तको का रेखागणित नामक सस्कृत ग्रन्थ जयसिह की आज्ञा से जगन्नाथ पण्डित ने शक १६४१ मे बनाया है। वह जयपुर प्रान्त मे प्रसिद्ध है। पूना के आनन्दाश्रम मे उसकी एक प्रति (ग्रन्थाक ३६९३) है। इसमे युक्लिड का नाम नही है। लिखा है कि यह ग्रन्थ ऋषिप्रणीत ग्रन्थो द्वारा बनाया है, परन्तु वह युक्लिड के ग्रन्थ के आधार पर बना है, इसमे सन्देह नही है। यह किसी अरबी ग्रन्थ के आधार पर बना होगा। मूल ग्रन्थ मे उसके कर्ता के विषय मे कुछ नही लिखा रहा होगा अथवा उसे अपौरुष बताया होगा, इसी कारण सस्कृत ग्रन्थ मे भी ऐसा ही लिखा गया होगा।

सुधाकर ने लिखा है कि जयसिह ने जगन्नाथ को कुछ गाव दिये थे, वे अभी भी उनके वंशजों के पास हे। जयसिह ने नयन सुखोपाध्याय नामक पण्डित से 'कटर' नामक एक और ग्रन्थ बनवाया है। वह युक्लिड के ग्रन्थ सरीखा ही पर उससे भिन्न स्वतन्त्र ग्रन्थ है। उसमे ३ अध्याय और उनमे क्रमश. २२, २३ (या २२), १४ अर्थात् सब ५८ या ५९ क्षेत्र (सिद्धान्त) है। प्रथम दो अध्यायो मे गोलीय वृत्त सम्बन्धी सिद्धान्त हे। इसमे लिखा है कि मूल ग्रन्थ यूनानी (ग्रीक) भाषा मे सावजू - सयूस ने बनाया था। तदनन्तर अबुलअच्चास अहमद की आज्ञा से उसका अरबी मे अनु-

बाद हुआ, नसीर ने उसकी टीका की और उसके बाद अरबी से सस्कृत मे बना है।

जयसिह के आरम्भ किये हुए उद्योग बाद मे बन्द हो गये। उनकी वेधशालाओ का उपयोग कोई नही करता और अब वे बेमरम्मत भी हो गयी है। न तो उनके ग्रन्थ ही प्रचलित हुए और न उनके अनुसार पञ्चाङ्गो का सशोधन ही हुआ। पहिले का ही वर्षमान अब भी चल रहा है। जयसिह के पहिले जिन ग्रन्थो से पञ्चाङ्ग बनते थे उन्ही से आज भी प्राय सर्वत्र बनते है। राजपूताने मे भी इनके ग्रन्थो का प्रचार होने का प्रमाण नही मिलता। यह बात बडी शोचनीय और विचारणीय है।

शंङ्करकृत वैष्णवकरण, शक १६८८

शङ्कर वसिष्ठगोत्रीय रैवतकाचल-वासी थे। इनके पिता इत्यादिको के नाम शुक्र, धनेश्वर, राम और हरिहर थे। शक १६८८ मे इन्होने वैष्णवकरण नामक करणग्रन्थ बनाया है। यद्यपि इन्होने लिखा है कि मे विष्णुगुप्त के मतानुसार ग्रन्थ बना रहा हूँ तथापि इनका ग्रन्थ भास्कराचार्य के मतानुसार है। सम्भव है, विष्णुगुप्त के स्थान में इनका उद्देश्य जिष्णुसुत ब्रह्मगुप्त कहने का हो। इसमे लगभग ३०० श्लोक है। शून्यायनाशवर्ष शक ४४५ माना है। यद्यपि लिखा है कि इस ग्रन्थ के ग्रह दृक्तुल्य है तथापि प्राचीन ग्रन्थो की अपेक्षा इसमे कोई विशेषता नही दिखाई देती (गणक-तरङ्गिणी, पृष्ठ ११०–११ देखिए)।

मणिरामकृत ग्रहगणितचिन्तामणि, शक १६९६

मणिराम भारद्वाजगोत्रीय यजुर्वेदी ब्राह्मण है। इनके पिता इत्यादिको के नाम लालमणि, देवीदास और लीलाधर थे। काश्यपगोत्रीय वत्सराज नामक पण्डित इनके गुरु थे। इन नामो से ये गुर्जर ज्ञात होते है। इनके कुलवृत्त सम्बन्धी श्लोको से अनुमान होता है कि इनका नाम कदाचित् केवल 'राम' भी रहा होगा।

ग्रहगणितचिन्तामणि मे शक १६९६ चैत्र शुक्ल १ रविवार (ता० १३ मार्च सन् १७७४) के प्रात काल के क्षेपक दिये है। वे ये है—

सू०	च	च०उ०	रा०	म०	बु०शी०	गु०	शु०शी०	श०
११	११	१	५	१०	१	११	४	४
०	४	२९	१	१३	१७	२९	२३	२७
१५	५०	६	३६	४	५	५७	५४	४
१	६	२१	५५	५१	१२	०	५४	१२

ग्रहलाघव से न्यूनाधिक अंशादि (ग्रहलाघवचक्र २३ अहर्गण ३८८)

+	+	+	−	−	+	+	−	−
०	०	१	०	०	१	०	२	०
०	०	३६	१७	६	१४	२०	५६	९
२४	५१	८	२२	३७	३१	३३	३४	१७

अहर्गण न बढने देने के लिए ग्रहलाघव मे जो युक्ति की है, वही इसमे भी है, अर्थात् ११ वर्षो का चक्र मानकर तत्सम्बन्धी ग्रहगति को चक्रशुद्ध कर उसका नाम ध्रुव रखा है। इसके ध्रुवाक ग्रहलाघव से सूक्ष्म है। ग्रन्थकार सूर्यसिद्धान्तानुयायी है तथापि उन्होने पूर्णतया सूर्यसिद्धान्त के ही ग्रह नही लिये है। इसी प्रकार इस ग्रन्थ की पद्धति प्राय ग्रहलाघव सदृश है तो भी इसमे ग्रहलाघवागत ग्रह नही लिये गये है। इससे और उपसहार के---विद्वानो की लिखी हुई वेधपद्धति द्वारा वेध करके मैने यह ग्रन्थ बनाया है, विद्वान् यन्त्रो द्वारा इसका अनुभव करे---इस कथन से ज्ञात होता है कि ग्रन्थकार ने स्वय वेध करके तदनुसार क्षेपक दिये है।

इस ग्रन्थ मे मध्यमग्रहो मे रेखान्तरसस्कार दिया है और भुजान्तर तथा चर का सस्कार सब ग्रहो मे किया है। अयनाश सूर्यसिद्धान्तानुसार और ग्रहस्पष्टीकरण ग्रहलाघव की भाँति है। केवल मन्दाङ्क और शीघ्राङ्क कुछ भिन्न है। इसमे मध्यम रविचन्द्रस्पष्टीकरण, ग्रहस्पष्टीकरण, लग्नादिसाधन, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, परिलेख चन्द्रदर्शन, नलिकाबन्धादि, शृङ्गोन्नति, उदयास्त, पात ये १२ अधिकार और उनमे क्रमश १९, ११, १४, ७, ५, ३, ७, ३, २६, ४, ६, १५ अर्थात् सब १२० श्लोक है। पूना के आनन्दाश्रम मे इसकी एक प्रति (ग्रन्थाङ्क ३१०३) है।

ग्रहलाघव के बाद वैसा ग्रन्थ बनाने का प्रयत्न बहुतो ने किया है पर मुझे उनमे इसके ऐसा सुन्दर दूसरा ग्रन्थ नही मिला। इस ग्रन्थ के कर्ता की स्वतन्त्र योग्यता ग्रहलाघवकार सरीखी तो नही है, पर इन्होने अपने मत से ग्रह वेधतुल्य दिये है और केवल करणग्रन्थ की दृष्टि से देखा जाय तो इसकी योग्यता ग्रहलाघव से कम नही है, तथापि ग्रहलाघव का सर्वत्र प्रचार है और इतना समय बीतने पर भी अभी उससे गणित करने में कठिनाई नही होती। इसके अतिरिक्त ज्योतिषियो ने थोडे परिश्रम से उससे गणित करने के लिए अनेक सारणियाँ बनायी है। इसी कारण ग्रहलाघव बाद में निर्मित ग्रन्थों के कारण नही दबा।

ब्रह्मसिद्धान्तसार, शक १७०३

इस नाम का एक ब्रह्मपक्षीय ग्रन्थ है। इसमे १२ अधिकार है और आरम्भवर्ष

शक १७०३ है। प्रथम अधिकार मे १२४ श्लोक है। उनमे सिद्धान्तशिरोमणि के मध्यमाधिकार का सक्षेप है। इसके बाद मूल ग्रन्थ है। इसमे अहर्गण द्वारा ग्रहसाधन किया है। इसकी पद्धति कुछ ग्रहलाघव सरीखी है। ग्रन्थकार देवीभक्त थे। उनका नाम भुला और उनके पिता का नाम नारायण था। वे गार्ग्यगोत्रीय ब्राह्मण थे। नर्मदासगम से ३ कोस पूर्व दधीचि नामक इनका निवास स्थान था।

मथुरानाथकृत यन्त्रराजघटना, शक १७०४

ये मालवीय ब्राह्मण थे। काशी सस्कृतपाठशाला[1] के पुस्तकालय मे ये सन् १८१३ से १८१८ तक (शक १७३५–४०) थे। ये ज्योतिषसिद्धान्त के अच्छे ज्ञाता थे और फारसी भी जानते थे। यन्त्रराजघटना इन्होने शक १७०४ मे बनायी है। इसकी ग्रन्थसख्या लगभग १००० है। काशी के सुप्रसिद्ध व्यक्ति राजा शिवप्रसाद के पितामह दयालुचन्द्र (डालचन्द) का इन्हे आश्रय था। इस ग्रन्थ मे कुछ तारो के शक १७०४ के वेधागत शरभोग दिये है (गणकतरङ्गिणी, पृष्ठ ११४–६)।

यन्त्रराज नामक एक वेधोपयोगी यन्त्र है। तद्विषयक यन्त्रराज नाम का ही एक शक १२९२ का ग्रन्थ है। उसका वर्णन आगे वेध प्रकरण मे किया है। मथुरानाथ की यन्त्रराजघटना मे उस यन्त्र की रचना, उससे वेध करने की रीति इत्यादि का वर्णन होगा।

इनका ज्योतिषसिद्धान्तसार नामक एक ग्रन्थ शक १७०४ का है। इसमे ८ अध्याय है। मालूम होता है, यह ग्रन्थ यूरोपियन ग्रन्थो के आधार पर बना है। इनके पिता सदानन्द का मूल स्थान पटना था। बाद मे वे काशी मे रहने लगे थे।[2]

---

१. काशी के रेजिडेण्ट जीनाथन डंकन साहब ने सन् १७९१ (शक १७१३) २८ अक्टूबर को काशी संस्कृत पाठशाला की स्थापना की। वह अभी तक (सं० विश्व वि०) है। उसमे प्राचीन शास्त्र और आधुनिक गणितादि शास्त्र संस्कृत में पढ़ाये जाते है।

२. निम्नलिखित कुछ गणित ग्रन्थो के नाम बाद में ज्ञात हुए हैं। Notes on the Hindu Astronomy By J. Burgess. 1893 द्वारा)—

(१) यूरोपियन लोगों को हिन्दू ज्योतिष का उल्लेखनीय ज्ञान प्रथम स्याम में मिले हुए एक ज्योतिष ग्रन्थ द्वारा हुआ। इसमें वर्षमान ३६५।१५।३१।३० (अर्थात् मूलसूर्यसिद्धान्त, खण्डखाद्य इत्यादिकों जितना) है और क्षेपक २१ मार्च सन् ६३८ शनिवार अमावस्या के है—ऐसा क्यासिनी नामक फ्रेंच ज्योतिषी ने लिखा है। (मूलसूर्यसिद्धान्तानुसार शक ५६० में मध्यम मेषसंक्रान्ति वैशाख शुक्ल २ तदनुसार

चिन्तामणि दीक्षित

इनका जन्मकाल लगभग शक १६५८ और मृत्युकाल शक १७३३ है। पेशवा के समय इन्हे १२५ रुपया दक्षिणा मिलती थी। ये सतारा के निवासी थे। इन्होने

---

२२ मार्च सन् ६३८ रविवार को १२ घटी ५८ पल पर आती है और उसके पूर्व चैत्र का मध्यम अमान्त शुक्रवार को ४६ घटी ३५ पल पर अर्थात् यूरोपियन मान मे २१ मार्च शनिवार को आता है।) मूलक्षेपक गोदावरी जिले के पीठापुर-निकटस्थ नरसिंहपुर के अथवा काशी के होने चाहिए। इस ग्रन्थ मे सूर्योच्च ८० अंश, रविपरमफल २।१४ और चन्द्रपरमफल ४।५६ है। इससे ज्ञात होता है कि यह मूलसूर्यसिद्धान्त अथवा उसके आधार पर निर्मित आर्यभट के अनुपलब्ध करणग्रन्थ के अनुसार बना है। (२) डल्लुमुडयन का करण—शक ११६५। (३) वाक्यकरण, कृष्णापुर—शक १४१३। इसमें क्षेपक पूर्व के फाल्गुन की अमावस्या—१० मार्च के हैं। वारन का कथन है कि इसके रचयिता वररुचि हैं। (४) पञ्चाङ्गशिरोमणि, नरसापुर—सन् १५६६ (अथवा १६५६)। इन दो ग्रन्थो मे वर्षमान ३६५।१५।३१।१५ अर्थात् प्रथम आर्य सिद्धान्त के अनुसार है पर रविफल २।१०।३४ और चन्द्रफल ५।२। २६ हैं। (५) ग्रहतरङ्गिणी—शक (?) १६१८। (६) सिद्धान्तमञ्जरी—१६१९।

वारन के कालसंकलित द्वारा—(७) मल्लिकार्जुन का करण—शक ११००, इसमें अब्दप इत्यादि रामेश्वर की रेखा के हैं। मल्लिकार्जुन तैलंग थे अतः यह ग्रन्थ, सूर्यसिद्धान्तानुसार बना होगा। (८) बालादित्य कल्लू का करण ग्रन्थ—शक १३७८, रामेश्वर की रेखा।

केम्ब्रिज स्थित बेंटली के पुस्तकसंग्रह की सूची द्वारा—(९) ब्रह्मसिद्धान्त—इसमे २६ अभ्यास हैं उनमे से ११ गणित के हैं। शेष मे मुहूर्त इत्यादिको का विचार है। आरम्भ का श्लोक है—ओंश्यर्कः परमो ब्रह्मा श्यर्कः परमः शिवः। (१०) विष्णुसिद्धान्त—इसमे ११ अधिकार हैं। उपर्युक्त ब्रह्मसिद्धान्त का ही श्लोक इसके भी आरम्भ मे है। (११) सिद्धान्तलघुखमाणिक—यह ईसवी सन् की १५वीं शताब्दी में बना है। इसके कर्ता का नाम केशव है। इसमे ९ अधिकार हैं और यह सूर्यसिद्धान्तानुयायी है। (१२) सूर्यसिद्धान्तरहस्य—शक १५१३। इसके रचयिता राघव हैं। (१३) सूर्यसिद्धान्तमञ्जरी—शक १५३१। इसे शत्रुजित् राजा के ज्योतिषी मथुरानाथ ने बनाया है। (१४) ग्रहमञ्जरी—इसका रचनाकाल लिखा है पर समझ में नहीं आता।

सूर्यसिद्धान्त की सारणी बनायी है और शक १७१३ मे गोलानन्द नामक वेधयन्त्रविषयक ग्रन्थ बनाया है। उसका वर्णन आगे वेधप्रकरण मे करेगे। उस पर यज्ञेश्वर अथवा बाबा जोशी रोडे की टीका है। चिन्तामणि दीक्षित के वशज इस समय सतारा मे रहते है। इनके पौत्र भाऊ दीक्षित चिपलूणकर मुझे शके १८०९ मे पूना मे मिले थे। उन्होने कहा था कि मेरे पास पीतल का गोलानन्द यन्त्र है और वेध के लिए दिक्साधन इत्यादि सतारा मे किया है। उनकी बतलायी बातो और चिन्तामणि के ग्रन्थ के आधार पर मैने यह वृत्त लिखा है। गोलानन्द मे इनका गोत्र, वत्स, पितृनाम विनायक और पूर्वजो का वसतिस्थान चिपलूण लिखा है।

राघव

ये ताप्ती से दो योजन दक्षिण खानदेशान्तर्गत पारोले नामक स्थान मे रहते थे, नगर जिले मे गोदातट पर पुण्यस्तम्भ (पुणताबे) मे भी ये रहते थे। इन्होने कुछ ग्रन्थ यही बनाये है। इनका उपनाम खाडेकर और पितृनाम आपा पन्त था।

इन्होने खेटकृति और पञ्चाङ्गार्क नामक गणितग्रन्थ और पद्धतिचन्द्रिका नामक जातकग्रन्थ बनाया है। खेटकृति शक १७३२ की है। यह प्राय ग्रहलाघवानुयायी ही है। इसमे ग्रहलाघव के आवश्यक विषय लिये गये है। गति इत्यादि कुछ मान ग्रह-लाघव से स्थूल है। मध्यमग्रहादि लाने के लिए भिन्न-भिन्न युक्तियाँ दी है, इससे गणित करने मे कही कही ग्रहलाघव से कुछ सरल पड जाता है। इसमे तिथिचिन्तामणि के श्लोक और स्वकालीन क्षेपको द्वारा तिथ्यादिसाधन भी किया है, तथापि इसकी योग्यता ग्रहलाघव से बहुत कम है। राघव का दूसरा ग्रन्थ पञ्चाङ्गार्क इससे अच्छा है। यह शक १७३९ का है। प्राचीन गणको ने पञ्चाङ्गसाधन किया पर उन्होने अब्दपादि सज्ञाओ के कारण गुप्त रखे, इसलिए राघव ने पञ्चाङ्गार्क बनाया है। इस पर ग्रन्थकार की ही टीका है। यह पुणताबे मे बना है। केवल इसी ग्रन्थ से निर्वाह नही हो सकता, क्योंकि इसमे पराख्य सस्कार लघुचिन्तामणि का लेने के लिए कहा है और केवल मध्यम ग्रहसाधन किया है। स्पष्टीकरण बिलकुल नही है। पता नही, मध्यम ग्रह किसको कहा है। वर्षमान ३६५।१५।३१।३१ लिया है और मध्यम ग्रहसाधन वर्षगण द्वारा किया है। इसकी वर्षगतियाँ सूर्यसिद्धान्त की अपेक्षा बहुत स्थूल है। वे किसी कारण से बदली है, यह बात भी नही है। द्वितीय अध्याय मे लग्नसाधन और तृतीय-चतुर्थ मे नक्षत्र द्वारा चन्द्रसूर्यग्रहणसाधन किया है। चारों अध्यायो में सब १०३ पद्य है।

जातकग्रन्थ पद्धतिचन्द्रिका शक १७४० का है। वह पुण्यस्तम्भ मे पूर्ण हुआ है।

उस पर शक १७४१ मे कृष्णातीरान्तर्गत रेवडाग्रामस्थ खिरे इत्युपनामक रामात्मज आप्पा गोस्वामी ने ललिता नाम की टीका की है।

शिवकृत तिथिपारिजात

शिव विश्वामित्रगोत्रीय महादेव के पुत्र थे। इनका निवासस्थान लक्ष्मेश्वर था। इन्होने शक १७३७ मे तिथिपारिजात नामक ग्रन्थ बनाया है। वह ग्रहलाघवानुसारी है। उसमे तिथिसाधनार्थ तिथिचिन्तामणि सरीखी सारणियाँ दी है (देखिए गणकतरङ्गिणी)। पता नही, इनका निवासस्थान लक्ष्मेश्वर धारवाड जिले का ही लक्ष्मेश्वर है या अन्य कोई।

दिनकर

पूना के आनन्दाश्रम मे दिनकर-विरचित और पूनानिवासी माधवराव पेडसे लिखित बहुत से ग्रन्थ है। एक ग्रन्थ मे उदाहरणार्थ पलभा ४ और देशान्तर योजन २८ पश्चिम लिये है। ये पूना के है अत दिनकर पूना के ही निवासी रहे होगे। दिनकरकृत यन्त्रचिन्तामणि टीका मे इनके पिता का नाम अनन्त और गोत्र शाण्डिल्य है।

इन्होने सब गणितग्रन्थ ग्रहलाघवानुसार सरल रीति से ग्रहगणित करने के लिए बनाये है। वे प्राय सारणी रूप है। उनमे उदाहरण भी करके दिखाये है, अत अध्ययन करनेवालो के लिए वे बडे उपयोगी है। ग्रन्थ ये है—(१) ग्रहविज्ञानसारणी—इसमे मध्यम और स्पष्टग्रहोपयोगी सारणियाँ है। उदाहरणार्थ शक १७३४, ३९ और ४४ लिये है। (२) मास प्रवेशसारणी—इसमे ताजिकसम्बन्धी वर्षप्रवेश, मासप्रवेश और दिनप्रवेश लाने के लिए दैनन्दिन स्पष्ट रवि दिया है। उदाहरणार्थ शक १७४४, पलभा ४ और देशान्तरयोजन २८ पश्चिम लिया है। (३) लग्नसारणी, (४) क्रान्तिसारणी, उदाहरणशक १७५३, (५) चन्द्रोदयाङ्कजाल, उदाहरणशक १७५७, (६) दृक्कर्मसारणी, उदाहरणशक १७५८, (७) ग्रहणाङ्कजाल, उदाहरणशक १७५५—१७६१, (८) गणेशकृत पातसारणी (शक १४४४) की टीका, उदाहरणशक १७६१, (९) यन्त्रचिन्तामणिटीका—यह चक्रधरकृत यन्त्रग्रन्थ की टीका है।

दिनकर के ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि ये उत्तम कल्पक गणितज्ञ थे और इन्हे वेध का भी ज्ञान था।

ग्रहलाघव द्वारा प्रत्येक गणित करने के लिए, मुख्यतः मध्यम और स्पष्टग्रहानयनोपयोगी दिनकर सरीखी सारणियाँ बहुत-से ज्योतिषियो के पास मिलती है।

ग्रहलाघव के श्लोकों में बतायी हुई रीतियों द्वारा गणित करने में इन सारणियों से पाँच छः गुना समय लगता है। वामन कृष्ण जोशी कन्नडकर ने शक १८०३ में ऐसी सारणियों का 'बृहत्पञ्चाङ्गसाधनोदाहरण' नामक ग्रन्थ छपाया है। केशवी में भी ऐसी सारणियाँ छपी हैं। ऐसे भी ज्योतिषी बहुत हैं जिन्हें इन युक्तियों की कल्पना तक नहीं है और वे अत्यन्त परिश्रमपूर्वक गणित करते हैं।

यज्ञेश्वर अथवा बाबा जोशी रोडे

इनके पिता का नाम सदाशिव पितामह का राम और गोत्र शाण्डिल्य था। चिन्तामणि दीक्षित मतारकर के ये दौहित्र थे। महाराष्ट्र में अँगरेजी राज्य होने के बाद पूना में एक सस्कृत पाठशाला स्थापित हुई थी, उसमें ये सन् १८३८ के सितम्बर (शक १७६०) तक अध्यापक थे।[1] कब से थे, इसका पता नहीं है। मालवा प्रान्त में सिहोर में एक सस्कृत पाठशाला थी। वहाँ के मुख्य पण्डित सुबाजी बापू ने 'सिद्धान्तशिरोमणि-प्रकाश' नाम का एक छोटा सा ग्रन्थ बनाया है। उसमें ज्योतिषसम्बन्धी, सस्कृतज्योतिष-सिद्धान्तमत और कोपर्निकस के मतों की तुलना की है। भारतीय अर्वाचीन इतिहास के कर्ता र० भा० गोडबोले ने लिखा है कि यज्ञेश्वर ने अपने 'ज्योतिषपुराणविरोध-मर्दन' नामक ग्रन्थ में इस ग्रन्थ का खडन किया है। क्याडीसाहब ने लिखा है कि ये बडे बुद्धिमान् और विद्वान् परन्तु दुराग्रहवश पुराणमत के अभिमानी थे। परन्तु नीलकण्ठकृत अविरोधप्रकाश नामक एक ग्रन्थ है, उसमें यह दिखलाया है कि ज्योतिष और पुराण के मतों में विरोध नहीं है। सिहोर के पोलिटिकल एजेंट विलकिनसन को भारतीय ज्योतिष का अच्छा ज्ञान था। उन्होंने सन् १८४१ (शक १७६३) में सिद्धान्त-शिरोमणि कलकत्ते में छपाया है। उनके आदेशानुसार सुबाजी बापू ने अविरोधप्रकाश-खण्डनात्मक अविरोधप्रकाशविवेक नामक ग्रन्थ शक १७५९ में बनाया और उसे पूना में बाबा जोशी के पास भेजा। उन्होंने उसका मण्डन किया। गणकतरङ्गिणी में इस सम्बन्धी पत्रव्यवहार यथामूल दिया है।[2] यह वर्णन उसी के आधार पर लिखा है।

---

१. पूना संस्कृत पाठशाला (Poona Sanskrit College) की स्थापना सन् १८२१ में दक्षिण के कमिश्नर चापलेल साहब ने की। सन् १८५१ में उसका स्वरूप बिलकुल बदल गया—या यों कहिए कि उस समय उसका सर्वथा लोप हो गया। (बोर्ड आफ एजुकेशन १८४०, ४१, ५१, ५२ की रिपोर्ट देखिए)।

२. काशी में शिवलाल पाठक ने अविरोधप्रकाशखण्डन पर सिद्धान्तमञ्जूषा नामक

यज्ञेश्वरकृत ग्रन्थ ये है—यन्त्रराज पर इनकी शक १७६४ की यन्त्रराजवासना नाम की टीका है। चिन्तामणिदीक्षित-कृत गोलानन्द पर अनुभाविका नाम्नी टीका है। लघुचिन्तामणि की यज्ञेश्वरकृत मणिकान्ति नाम्नी टीका इन्ही की होगी। इन ग्रन्थो से ज्ञात होता है कि इन्हे ज्योतिषसिद्धान्त का अच्छा ज्ञान था। गोलानन्द की टीका मे इन्होने प्रश्नोत्तरमालिका नामक स्वकृत ग्रन्थ का उल्लेख किया है।

नृसिंह अथवा बापूदेव शास्त्री, जन्मशक १७४३

अगरेजी राज्य होने के बाद हमारे देश मे भारतीय और यूरोपीय दोनो गणितो और ज्योतिषशास्त्र मे जिन विद्वानो ने नैपुण्य प्राप्त किया बापूदेव शास्त्री भी उन्ही मे है। ये ऋग्वेदी चितपावन ब्राह्मण थे। इनका मूल-निवासस्थान अहमदनगर जिले मे गोदातट पर टोके नाम का था। इनका जन्म शक १७४३ कार्तिक शुक्ल ६ तदनुसार सन् १८२१ की पहिली नवम्बर को हुआ था। इनके पिता का नाम सीताराम और माता का सत्यभामा था। इनका अध्ययन प्रथम नागपुर मे मराठी पाठशाला मे हुआ, वही इन्होने ढुण्ढिराज नामक कान्यकुब्ज विद्वान् से भास्करीय लीलावती और बीज-गणित पढे। शक १७६० मे सिहोर के एजेट एल० विलकिनसन साहब इन्हे गणित मे निपुण देखकर सिहोर की सस्कृतपाठशाला मे पढने के लिए ले गये। वहाँ इन्होने सेवाराम से रेखागणित इत्यादि पढे। इसके बाद शक १७६३ (सन् १८४१) मे विलकि-नसन द्वारा काशीसस्कृतपाठशाला मे रेखागणित पढाने के लिए इनकी नियुक्ति हुई। तब से अन्त तक वही रहे। इसी पाठशाला मे ये शक १७८१ मे मुख्य गणिताध्यापक हुए। शक १८११ मे इन्हे पेशन मिली और शक १८१२ मे वैशाख मे ६९ वर्ष की अवस्था मे परलोकवासी हुए।

इन्होने बहुत से शिष्य तैयार किए। सन् १८६४ मे ये ग्रेटब्रिटेन और आयरलैण्ड की रायल एशियाटिक सोसायटी के और सन् १८६८ मे बगाल की एशियाटिक सोसायटी के आदरकृत (Honorary) सभासद हुए। सन् १८६९ मे कलकत्ता-विश्वविद्यालय के पारिषद (Fellow) हुए। इलाहाबाद-विश्वविद्यालय के भी ये पारिषद थे। अगरेजी सरकार की ओर से इन्हे सन् १८७८ मे सी० आई० ई० और सन् १८८७ मे महारानी विक्टोरिया के शतार्धोत्सव के समय महामहोपाध्याय पदवी मिली थी। जम्बू के

और शिवलाल के लघु भ्राता के शिष्य बालकृष्ण ने दुष्टमुखचपेटिका, नामक ग्रन्थ बनाया था। ये दोनों ग्रन्थ शक १७५९ के पहिले के है।

राजा ने एक बार इन्हे ठीक ठीक चन्द्रग्रहण लाने के पुरस्कार मे एक सहस्र रुपया दिया था।

इनके बनाये हुए ग्रन्थ ये है—रेखागणित प्रथमाध्याय, त्रिकोणमिति का कुछ भाग, सायनवाद, प्राचीन ज्योतिषाचार्याशयवर्णन अष्टादशविचित्रप्रश्नसग्रह सोत्तर तत्वविवेकपरीक्षा, मानमन्दिरस्थ यन्त्रवर्णन, अङ्कगणित। इनमे से कुछ छोटे है और कुछ बडे। ये सस्कृत मे है और सब छप चुके है। इनके सस्कृत के अमुद्रित छोटे-बडे ग्रन्थ ये है—चलनकलनसिद्धान्तबोधक २० श्लोक, चापीयत्रिकोणमितिसम्बन्धी कुछ सूत्र, सिद्धान्तग्रन्थोपयोगी टिप्पणियाँ, यन्त्रराजोपयोगी छेद्यक, लघुशकुच्छिन्नक्षेत्रगुण। हिन्दी मे इन्होने अङ्कगणित बीजगणित और फलितविचार ग्रन्थ बनाये है। ये छप चुके है। सिद्धान्तशिरोमणि के विलकिनसनकृत इगलिश अनुवाद का इन्होने सशोधन किया है और सूर्यसिद्धान्त का इगलिश मे अनुवाद किया है। ये दोनो आर्च डीकन प्राट की देखरेख मे सन् १८६१-६२ मे छपे है। इन्होने भास्करीय सिद्धान्तशिरोमणि के गणिताध्याय और गोलाध्याय का सशोधन करके टिप्पणियो सहित उन्हे शक १७८८ और इसी प्रकार लीलावती को सन् १८०५ मे छपाया है।[1]

शक १७९७ से १८१२ पर्यन्त ये नाटिकल आल्मनाक द्वारा पञ्चाङ्ग बनाकर छपाते थे। उसका वर्णन आगे पञ्चाङ्गविचार मे किया है। इन्होने कोई ऐसा ग्रन्थ नही बनाया है जिससे वह पञ्चाङ्ग बनाया जाय।

नीलाम्बर शर्मा, जन्मशक १७४५

गङ्गागण्डकी के सङ्गम से दो कोस पर पाटलिपुत्र (पटना) नगर इनका निवास स्थान था। ये मैथिल ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम शम्भुनाथ था। ज्येष्ठबन्धु जीवनाथ से और कुछ दिनो तक काशीसस्कृतपाठशाला मे इन्होने अध्ययन किया था। अलवर के राजा शिव के ये प्रधान ज्योतिषी थे। काशी मे शक १८०५ में इनका देहान्त हुआ। पाश्चात्य पद्धति के अनुसार इन्होने सस्कृत मे गोलप्रकाश नामक ग्रन्थ बनाया है। शक १७९३ में इसे काशी मे बापूदेव शास्त्री ने छपाया है। इसमे पाँच अध्याय है। उनमे ज्योत्पत्ति, त्रिकोणमितिसिद्धान्त, चापीयरेखागणितसिद्धान्त चापीयत्रिकोणमितिसिद्धान्त और प्रश्न विषय है। इगलिश न जाननेवालो के लिए यह ग्रन्थ बडा उपयोगी है। भास्करीय ग्रन्थो के कुछ भागो की इन्होने टीकाएँ की है। इनके ज्येष्ठ बन्धु जीवनाथ ने भास्करीय बीज की टीका की है और भावप्रकाशादि फलग्रन्थ बनाये है।

---

१. यह वृत्तान्त मुख्यतः गणकतरङ्गिणी द्वारा लिखा है।

विनायक अथवा केरो लक्ष्मण छत्रे, जन्मशक १७४६

भारत मे अग्रेजो का राज्य होने के बाद महाराष्ट्र के जिन लोगो ने पाश्चात्य विद्या मे नैपुण्य प्राप्त किया उनमे केरोपन्त नाना का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है। ये मुख्यत गणित, ज्योतिष और सृष्टिशास्त्रो मे प्रवीण थे। इनका जन्म बम्बई से १३ कोस दक्षिण अष्टागर प्रान्त के समुद्रतटवर्ती नागाव नामक गाव मे सन् १८२४ की मई मे हुआ था। ये काश्यपगोत्रीय ऋग्वेदी चितपावन ब्राह्मण थे। इन्होने अगरेजी भाषा और तदन्तर्गत शास्त्रो का अध्ययन बम्बई के एल्फिन्स्टन इन्स्टिटचूशन नामक विद्यालय मे किया था। प्रोफेसर आर्लिबार साहब के ये प्रिय शिष्य थे। सन् १८४० मे अन्तरिक्ष चमत्कार और लोहचुम्बक का अनुभव करने के लिए बम्बई मे कुलाबा समुद्रतट पर एक वेधशाला बनी। उसके सस्थापक आर्लिबार साहब थे। उन्होने केरोपन्त को वहाँ असिस्टेंट पद पर नियुक्त किया था। सन् १८५१ के जून की सातवी तारीख को पूना-सस्कृतपाठशाला के स्थान मे पूना कालेज बना। उसके कुछ मास बाद वहाँ के मराठी और नार्मलस्कूल-विभाग मे सृष्टिशास्त्र और गणित पढाने के लिए असिस्टेट प्रोफेसर पद पर इनकी नियुक्ति हुई। उस कालेज मे ये उन विषयो को मराठी और इगलिश मे पढाते थे। कुछ दिनो बाद उस कालेज का नार्मल स्कूल विभाग अलग कर दिया गया। उसमे ये कुछ दिनो तक अध्यापक रहे और बाद मे उसके सुपरिन्टेन्डेन्ट हो गये। उस समय वह विद्यालय वर्नाक्यूलर कालेज भी कहा जाता था। आजकल उसे ट्रेनिग कालेज कहते है। केरोपन्त उन दिनो इजीनियरिग कालेज मे भी सृष्टिशास्त्र पर व्याख्यान दिया करते थे। बीच मे कुछ दिनो तक अहमदनगर के अगरेजी स्कूल मे हेडमास्टर थे। सन् १८६५ में पूना कालेज मे गणित और सृष्टिशास्त्र के अध्यापक हुए। वहाँ इन विषयो को ये इगलिश मे पढाते थे। उसी कालेज का नाम बाद मे डेक्कन कालेज पडा। सन् १८७९ मे इन्होने पेशन ले ली। उस समय इनका मासिक वेतन एक सहस्र रुपया था। भारतीयो को मिलने वाली बहुत बडी पेशन ५ सहस्र रुपया वार्षिक इन्हे मिली। सन् १८७७ मे दिल्ली-दरबार के समय अगरेजी सर-कार की ओर से इन्हे रावबहादुर की पदवी मिली। सन् १८८४ के १९ मार्च को ६० वर्ष की अवस्था मे इनका देहान्त हुआ। इनका लोकप्रिय नाम नाना था। इनके अनेक सद्गुणो मे से सतत विद्याव्यासङ्ग और स्वभावसौजन्य विशेष प्रशसनीय है।

शक १७७२ के लगभग इन्होंने फ्रेच और इगलिश ज्योतिषग्रन्थो के आधार पर मराठी में 'ग्रहसाधनकोष्ठक' नामक ग्रन्थ बनाया है और उसे शक १७८२ (सन् १८६०

ई०) मे छपाया।[1] इसके पहिले मराठी या सस्कृत मे ऐसा ग्रन्थ नही था इसलिए इसकी उपयोगिता बहुत बडी है।

इस ग्रन्थ मे वर्षमान सूर्यसिद्धान्तीय और ग्रहगतिस्थिति सायन ली गयी है इसलिए इससे सायन ग्रह आते है। रेवती योगतारा जीटापीशियम माना है। वह शक ४९६ मे मेषसम्पात मे था इसलिए ४९६ मे शून्य अयनाश माना है और अयनगति प्रतिवर्ष ५०.२ विकला मानकर तदनुसार अयनाश लाकर उसका सायन ग्रहो मे सस्कार करके निरयन ग्रह लाने को कहा है। ऐसा करने से निरयन वर्षमान शुद्ध अर्थात् ३६५।१५।२३ मानने सरीखा हो जाता है। यह वर्षमान और ५० २ विकला अयनगति मान कर नाना ने शक १७८७ से नाटिकल आल्मनाक द्वारा अपना स्वतन्त्र पञ्चाङ्ग बनाना आरम्भ किया। कैलाशवासी आबा साहब पटवर्द्धन इनके बहुत बडे सहायक थे। उपर्युक्त ग्रन्थ भी उन्ही की प्रेरणा से बना था। नाना ने अपने पञ्चाङ्ग का नाम पट-वर्धनी ही रखा। ग्रहसाधनकोष्ठक द्वारा ग्रहस्थिति बहुत शुद्ध आती है परन्तु उसका और पटवर्धनी पञ्चाङ्ग का प्रचार नही है। उस पञ्चाङ्ग को प्राय कोई नही मानता। उसका विस्तृत वर्णन आगे करेंगे।

तिथिसाधन के लिए नाना ने चिन्तामणि सरीखा एक ग्रन्थ बनाया है वह काशी मे छपा है। यहाँ उसे छपानेवाला कोई नही मिला। इधर लोग प्राय उसे जानते भी नही है और न तो वह कही मिलता ही है। ग्रहसाधनकोष्ठक भी अब नही मिलता। उसमे वर्षशुद्ध निरयन नही है और ग्रहसायन है इसलिए उससे ग्रहलाघवीय निरयन, शुद्ध निरयन या सायन कोई भी पञ्चाङ्ग नही बनाया जा सकता। इसके अतिरिक्त उससे पञ्चाङ्ग बनाने मे लाग्रथम और त्रिकोणमिति की आवश्यकता पडती है। प्राचीन ज्योतिषियो के लिए वह बिलकुल निरुपयोगी है। उससे गणित करने वाले दस पाँच नवीन शिक्षित भी शायद ही मिलेगे। नाना ने मराठी पाठशालोपयोगी पदार्थ-विज्ञान शास्त्र और अकगणित नाम की दो पुस्तकें लिखी है। महाराष्ट्र मे उनके प्रत्यक्ष और परम्परागत शिष्य सहस्रो है।

विसाजी रघुनाथ लेले, जन्मशक १७४९

हमारे देश मे ये एक अत्यन्त बुद्धिमान् तथा कल्पक पुरुष हो गये है। इनका जन्म शक १७४९ मे ग्रहलाघवीय मान से श्रावण कृष्ण १० शुक्रवार को मकर लग्न मे नासिक

---

१. R S. Vince ने सन् १८०८ मे एक ग्रन्थ बनाया था। कृष्णशास्त्री गोडबोले का कथन है कि यह ग्रन्थ उसी के आधार पर बना है।

मे हुआ था। ये काश्यपगोत्रीय हिरण्यकेशीय शाखा के महाराष्ट्र चितपावन ब्राह्मण थे। लडकपन मे ११ वर्ष की अवस्था तक इन्होने नासिक के एक मराठी स्कूल मे पूर्णांक-अपूर्णांक इत्यादि सीखा और अपने मामा के यहाँ थोडा सा सस्कृत का अभ्यास किया। गुरु-मुख से इन्होंने बस इतना ही अध्ययन किया था, परन्तु अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और सतत् प्रयत्न द्वारा अपनी योग्यता इतनी बढा ली थी कि गणित सम्बन्धी उन प्रश्नो को जो कि विश्वविद्यालय के पदवी-प्राप्त लोगो के लिए भी असाध्य थे—सुलझा दिया करते थे। नासिक मे कुछ दिन फुटकर नौकरियाँ करने के बाद ये शक १७८२ के लगभग ग्वालियर गये। बाद मे सिंधिया सरकार के राज्य मे पैमाइश और हिसाबी खाते मे नौकर हो गये थे। ये नागरी और मोडी लिपियो के अक्षर बडे सुन्दर लिखते थे और नकशा बडा अच्छा बनाते थे। इनके हिसाब मे तो अशुद्धि कभी होती ही नही थी। ३३ वर्ष नौकरी करने के बाद शक १८१६ के लगभग पेंशनर हुए और शक १८१७ कार्तिक कृष्ण ६ शुक्रवार को ६९ वर्ष की अवस्था मे ग्वालियर मे स्वर्गवासी हुए।[1]

सायन पञ्चाङ्ग

बहुत से लोग ऐसा सोचते है कि पञ्चाङ्ग सायन होना चाहिए। लेले के पहिले बहुतो का ऐसा विचार रहा होगा और था। इनके मन मे भी यह बात स्वभावत ही आयी। इनका यह निश्चिय हो गया था कि सायन पञ्चाङ्ग धर्मशास्त्रानुकल है। कुछ दिन तक ये ग्रहलाघव की सहायता से साधारण सायन पञ्चाङ्ग बनाते थे। बाद में नाटिकल आल्मनाक द्वारा बनाने लगे, परन्तु कई वर्ष तक उसे प्रकाशित करने का सुयोग प्राप्त नही हुआ। नाटिकल आल्मनाक के समझने योग्य साधारण इंगलिश का ज्ञान इन्होंने स्वय सम्पादित किया था। शक १७८७ से केरोपन्त ने शुद्ध निरयन पञ्चाङ्ग बनाना आरम्भ किया। वे सायन मान स्वीकार करे—इस उद्देश्य से लेले ने "स्फुटवक्ता अभियोगी" नाम से समाचार-पत्रो द्वारा कई वर्ष तक विवाद किया, परन्तु उन लेखो पर तथा पञ्चाङ्ग की धर्मशास्त्रानुकूलता की ओर उनका ध्यान आकृष्ट न होते देख उनसे वादविवाद करना छोडकर शक १८०६ से कुछ लोगो के साथ ये अपना स्वतन्त्र सायन पञ्चाङ्ग बनाने लगे। आगे पञ्चाङ्ग प्रकरण मे उसका वर्णन किया है।

---

१. इनसे मेरा प्रत्यक्ष और पत्र द्वारा परिचय था। यह चरित्र प्रायः उसी के आधार पर लिखा है। सन् १८८८ के अक्टूबर की बालबोध मासिक पत्रिका में इनका जीवन-चरित्र प्रकाशित हुआ है।

इन्होने कोई ऐसा ग्रन्थ नही बनाया जिससे सायन पञ्चाङ्ग बनाया जा सके अत. उसका प्रचार होना पराधीन है।

चिन्तामणि रघुनाथ आचार्य, जन्मशक १७५०

इनका जन्म सौरमान से शक १७४९ सर्वजित् सवत्सर मे पगुणि मास के छठे दिन अर्थात् चान्द्रसौर मान से शक १७५० चैत्र शुक्ल २ तदनुसार १७ मार्च मन् १८२८ को हुआ था। इनकी जन्मभाषा और देश तमिल (द्रविड) प्रतीत होता है। महाराष्ट्र मे केरोपन्त और काशी की ओर बापूदेव शास्त्री की भाँति मद्राम प्रान्त मे इनकी विशेष प्रसिद्धि थी। ये मद्रास की ज्योतिष-वेधशाला मे १७ वर्ष तक फर्स्ट असिस्टेट पद पर थे। इन्होने स्वय लिखा है कि मुझे सस्कृत भाषा नही आती, पर यूरोपियन गणित और ज्योतिष का उत्तम ज्ञान होने के कारण इन्हे भारतीय ज्योतिष का ज्ञान सहज ही हो गया और ये वेध मे तो वडे प्रसिद्ध थे। सन् १८७२ से ये विलायत की रायल ऐस्ट्रानामिकल सोसायटी के फेलो थे। सन् १८४७ मे मद्रास की वेधशाला मे नियुक्त हुए और अन्त तक वही रहे। शक १८०१ पौष तदनुसार ५ फरवरी को ५२ वर्ष की अवस्था मे इनका देहावसान हुआ। ज्योतिष इनका वशपरम्परागत विषय था। इनके पिता भी मद्रास की वेधशाला मे असिस्टेट थे। मद्राम वेधशाला के तारास्थितिपत्रक (कैटलाग) के बहुत से वेध इन्होने किये है। सन् १८६७ और १८६८ मे इन्होने दो रूपविकारी तारो की खोज की। ऐसे आविष्कार करने वाले हिन्दुओ की सूची मे आपका नाम प्रथम है।

इन्होने 'ज्योतिष-चिन्तामणि' नामक ग्रन्थ बनाया है। मालूम होता है यह द्राविडी (तमिल) भाषा मे है। इसमे तीन भाग है। प्रथम मे मध्यमगति तथा पृथ्वी प्रभृति ग्रहो के आकार और विस्तार इत्यादि का वर्णन है और द्वितीय मे स्फुट गति-स्थिति इत्यादि है। इस ग्रन्थ का सस्कृत मे अनुवाद करके उसे तमिल, तैलगु और देवनागरी लिपियो में छपाने के विषय मे विचार करने के लिए सन् १८७४ मे मद्रास मे एक सभा हुई थी। उसमे अनुमान किया गया था कि इसकी ५०० प्रतियाँ छपाने मे लगभग ७००० रुपये लगेगे और ग्रन्थ मे अठपेजी साचे के लगभग ८०० पृष्ठ होगे, परन्तु ग्रन्थ छपा नही।[1]

---

१. सन् १८७४ मे शुक्रग्रस्त सूर्यग्रहण हुआ था। रघुनाथाचार्य ने उसका गणित करके उसे अनेक भाषाओ मे प्रकाशित कराया था। उनके अंगरेजी ग्रन्थ में इस उद्योग का वर्णन है। मैने उनका यह जीवन-चरित्र मुख्यतः उस ग्रन्थ के आधार पर तथा मद्रास

शक १७९१ से ये नाटिकल आल्मनाक के आधार पर दृग्गणित-पञ्चाङ्ग नामक पञ्चाङ्ग बनाते थे। इनके बाद इनके दो पुत्रो द्वारा बनाया हुआ शक १८०८ का पञ्चाङ्ग मैने देखा है। उसमे अयनांश २२।५ और वर्षमान सूर्यसिद्धान्त का ज्ञात होता है। इनके ज्येष्ठ पुत्र सी० राघवाचार्य शक १८११ मे स्वर्गवासी हुए। आजकल इनके कनिष्ठ पुत्र तथा मद्रास वेधशाला के वर्तमान फर्स्ट असिस्टेट पी० राघवाचार्य वह पञ्चाङ्ग बनाते है।

कृष्णशास्त्री गोडबोले, जन्मशक १७५३

ये कौशिक गोत्रीय हिरण्यकेशीय शाखाध्यायी महाराष्ट्र चितपावन ब्राह्मण थे। इनका जन्म शक १७५३ मे श्रावण कृष्ण १० तदनुसार १ सितम्बर को वाई मे हुआ था। विद्याभ्यास पहिले पूना के एक मराठी स्कूल मे और उसके बाद सस्कृत पाठशाला तथा पूना कालेज में हुआ। गणित की रुचि इन्हे बाल्यावस्था से ही थी। शकर जोशी से इन्होने ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन किया। १९ अक्टूबर सन् १८५५ को पूनाकालेज के नार्मल स्कूल मे ये अध्यापक पद पर नियुक्त हुए, वहाँ मुख्यत गणित पढाते थे। १८६४-६५ मे कुछ दिन बम्बई मे कुलाबा वेधशाला मे, १८६५ मे फिर पूना के ट्रेनिंग कालेज मे, १८६६ मे सिध के हैदराबाद हाईस्कूल में और १८६७ में कराची हाईस्कूल मे नियुक्त हुए। १८७२ मे कुछ दिन पूना हाईस्कूल मे और बाद मे कुछ दिन बम्बई के एल्फिन्स्टन हाईस्कूल मे असिस्टेट मास्टर थे। उसके बाद उसी साल से १८८२ के मार्च तक बम्बई मे फणसवाड़ी ऐंग्लो -मराठी स्कूल के हेडमास्टर थे। इसके बाद पेंशन लेकर पूना मे अपने घर ही रहने लगे थे। १८८६ की २२ नवम्बर को इनका देहान्त हुआ। सिन्ध प्रान्त मे रहते समय इन्होने सिन्धी भाषा का अच्छा अध्ययन किया था, साथ ही साथ कुछ फारसी भी सीखी थी। १८७१ से १८७९ तक बम्बई की विश्वविद्यालयपरीक्षा मे ये सिन्धी भाषा के परीक्षक थे।

शक १७७८ मे इन्होने और वामन कृष्ण जोशी गद्रे ने मिलकर ग्रहलाघव का सोदाहरण मराठी अनुवाद किया। इसकी दो आवृत्तियाँ छप चुकी है। अधिकतर यह विश्वनाथी टीका का अनुवाद हैं। इन्होंने मराठी मे ग्रहलाघव की उपपत्ति भी लिखी है। मालूम होता है, उसमे मल्लारि की टीका के दोष सुधारे है। यह छपाने योग्य है। शक १८०७ के लगभग लिखा हुआ इनका ज्योतिषशास्त्र के इतिहास का एक छोटा सा

* श्री एस० एम० नटेश शास्त्री द्वारा भेजी हुई सामाचारपत्र इत्यादि में छपी बातों के आधार पर लिखा है।

लेख मेने देखा है। सन् १८६२ मे चेम्बर्स की अगरेजी पुस्तक के आधार पर इन्होंने मराठी मे 'ज्योतिशशास्त्र' नामक एक पुस्तक लिखकर छपवायी हे। आजकल वह प्रचलित नही है। हडन के बीजगणित के प्राचीन मराठी अनुवाद का सशोधन करके इन्होने उसे सन् १८५४ मे छपाया। वह बहुत दिनो तक स्कूल मे चलता रहा। सन् १८७४ मे इन्होने और गोविन्द विट्ठल करकरे ने मिलकर युक्लिड के रेखागणित की प्रथम चार पुस्तको का मराठी मे अनुवाद किया। इसके पहिले मराठी स्कूलो मे युक्लिड की पुस्तको का नाना शास्त्री आपटेकृत अनुवाद पढाया जाता था। बाद मे सन् १८८५ मे कैलाशसवासी रा० मो० देवकुले की पुस्तक पढायी जाने लगी। इन्होने सन् १८८२ मे अगरेजी मे 'वेदो का प्राचीनत्व' शीर्षक एक निबन्ध थियासोफिस्ट मासिक पत्रिका मे दिया था वह अलग छपा है। मै समझता हूँ, उसमे कोई ऐसा प्रबल हेतु नही दिखाया गया है जिससे वेदकाल शकपूर्व १२०० वर्ष से प्राचीन निर्विवाद सिद्ध किया जा सके। गीता के 'मासाना मार्गशीर्षोऽहम्' वाक्य द्वारा मार्गशीर्ष मे वसन्त मानकर उसमे यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि वेद शकपूर्व ३० सहस्र वर्ष से प्राचीन है। इन्होने सन् १८६८ मे सिंधी भाषा विषयक एक पुस्तक लिखी और सन् १८६९ मे सिन्धी भाषा मे अकगणित की एक पुस्तक बनायी। सन् १८६७ मे मराठी का एक उत्तम तथा लोकप्रिय व्याकरण बनाया। सन् १८९५ मे उसकी तृतीय आवृत्ति छपी है।[1]

एक बार इनका यह मत प्रकाशित हुआ था कि पञ्चाङ्ग मध्यम सूर्य-चन्द्र द्वारा बनाना चाहिए।

पूर्वोक्त वामन कृष्ण गद्रे ने शक १७९१ मे पञ्चाङ्गसाधनसार नामक ग्रन्थ छपाया है। उसमे लघु चिन्तामणि का सोदाहरण मराठी अनुवाद है। सारणियो मे अशुद्धिया बहुत है।

---

१. वह शास्त्रीजी के सुपुत्र अनन्त कृष्ण ने छपवायी है। उसमे उन्होंने कृष्ण शास्त्री का जीवन-चरित्र लिखा है। उसके आधार पर तथा स्वयं प्राप्त की हुई जानकारियों द्वारा मैंने इनका यह जीवनचरित्र लिखा है।

विद्यमान ज्योतिषगणित ग्रन्थकार

वेंकटेश बापूजी केतकर

इनका जन्मकाल शक १७७५ पौष शुक्ल १४ शुक्रवार है। ये गार्ग्य गोत्रीय ऋग्वेदी महाराष्ट्र चितपावन ब्राह्मण है। इस प्रान्त के शिक्षा-विभाग मे ये सन् १८७४ से शिक्षक है। इधर कुछ वर्षो से बागलकोट के अगरेजी स्कूल मे हेडमास्टर है। इनका अध्ययन प्राय बेलगाव मे हुआ। इनके पिता भी अच्छे ज्योतिषी थे। केरोपन्तीय ग्रहसाधन कोष्ठक का उन्होने सस्कृत मे अनुवाद किया है। वह अभी छपा नही है। इनके पूर्वजो की पॉच छ पीढियॉ पैठण मे रही थी। बापू शास्त्री वहॉ से नरगुन्द और बाद मे रामदुर्ग गये। वहॉ के सस्थानिको का उन्हे आश्रय था।

इन्होने 'ज्योतिर्गणित' नामक एक बडा उपयोगी सस्कृत ग्रन्थ शक १८१२ के लगभग बनाया है। उसमे आरम्भवर्ष शक १८०० है। नाटिकल आल्मनाक जिस फ्रेंच ग्रन्थ द्वारा बनता है उसी के आधार पर यह बनाया गया है। इससे लाये हुए ग्रह अत्यन्त सूक्ष्म होते है। उनमे और नाटिकल आल्मनाक द्वारा लाये हुए ग्रहो मे एक कला से अधिक अन्तर नही पडता। हमारे देश मे आज तक ऐसा ग्रन्थ नही बना था। इसमे वर्षमान शुद्ध नाक्षत्र अर्थात् ३६५।१५।२२।५३ और अयनगति वास्तव अर्थात लगभग ५०२ विकला मानी गयी है। जीटापिशियम को रेवती का योग तारा मानकर उसका भोग अयनाश माना गया है, अर्थात् शक १८०० मे १८°।१०'।२५" अयनाश माने गये है। ग्रहलाघवोक्त अयनाश के पास के अयनाश ग्रहण करने की सूचना मैने इन्हे दी थी। रेवती के जिस तारा का भोग ग्रहलाघवीय अयनाश तुल्य है, उसे भगणारम्भ-स्थान माना जा सकता था। अथवा चित्रा-तारा का भोग १८० अश मानने से भी ग्रहलाघव के पास के अयनाश आ सकते थे और यह बात केतकर के ध्यान मे आ चुकी है। साराश यह कि शक १८०० मे यदि २२ के लगभग अयनाश माने होते, तो मै समझता हूँ इनका ग्रन्थ सहज प्रचलित हो गया होता।[1] इसमे मुख्य चार भाग है। प्रथम मे पञ्चाङ्ग गणित

---

१. इन्होंने ऐसा ही किया है। बाद मे इनका मत बदल गया था और ये चित्रा पक्ष के समर्थक तथा जीटा-पक्ष के कट्टर विरोधी हो गये थे। इस विषय मे समाचारपत्रों द्वारा महाराष्ट्र के अन्य विद्वानों से इनका बहुत दिनों तक शास्त्रार्थ होता रहा, पर अन्त तक कोई निर्णय नही हो सका और न तो निकट भविष्य में होने की कोई आशा है। इन्होने ज्योतिर्गणित की द्वितीय आवृत्ति मे कुछ सुधार करने का आदेश किया था, उनमें एक यह भी था। इनके उद्देश्य के अनुसार ज्योतिर्गणित की द्वितीय संशोधित आवृत्ति में

है। क्षेपक सर्वत्र स्पष्ट मेषसक्रान्ति-कालीन है। द्वितीय मे ग्रहस्थानगणित है। उसमे ग्रहो के मध्यम और स्पष्ट भोग, विषुवाश, नक्षत्र-ताराओ के भोगादि तथा खस्थो के उदय-अस्त इत्यादि विषय है। तृतीय में ग्रहण, युति, शृङ्गोन्नति इत्यादि चमत्कारो का गणित है। चतुर्थ मे त्रिप्रश्नाधिकार के लग्नमान इत्यादि विषय है। ग्रन्थ मे प्राय· सर्वत्र रीति, उदाहरण, कोष्ठक और उपपत्ति—यह क्रम है। प्राय सभी गणितो के लिए कोष्ठक बना दिये जाने के कारण त्रिकोणमिति, लाग्रथम इत्यादि न जाननेवाला गणक भी इससे गणित कर सकता है। इससे केरोपन्तीय पञ्चाङ्ग भी बनाया जा सकता है। यह ग्रन्थ अभी छपा नही है।

बाल गङ्गाधर तिलक

इनका जन्मकाल शक १७७८ आषाढ कृष्ण ६ बुधवार, कर्कलग्न है। इनकी इस देश मे ही नही परदेश मे भी बडी प्रसिद्धि है। ये फर्ग्युसन कालेज मे बहुत दिनो तक गणित, ज्योतिष इत्यादि विषयो के अध्यापक थे।

इन्होने सन् १८९३ (शक १९१५) मे इगलिश मे Orion नामक ग्रन्थ बनाया है। उसमे ऋग्वेद के सूक्तो और अन्य श्रुत्यादि प्रमाणो के आधार पर इस बात का सूक्ष्म और विस्तृत विवेचन किया है कि जिस समय Orion (मृग) नक्षत्रपुञ्ज मे वसन्त-सम्पात था अर्थात् शकपूर्व ४००० वर्ष के लगभग ऋग्वेद के कुछ सूक्तो की रचना हुई।

श्री दत्तराज ने चित्रा के ठीक सामने १८० अंश पर भगणारम्भ मानकर शके १८०० में २२।९ अयनांश को शास्त्रीय प्रमाणो द्वारा गणितशुद्ध, शास्त्रशुद्ध तथा परम्पराशुद्ध सिद्ध किया है—

"तस्मात् खखाष्टभू १८०० शाके द्वाविशत्ययनांशकाः।
कलाभिर्नवभिर्युक्ताः सिद्धास्ते स्वीकृता मया॥"

फिर भी यह विषय अभी वाद-ग्रस्त ही है। बहुत-से विद्वान् इसे शास्त्रीय वचनो के आधार पर अशास्त्रीय और अशुद्ध सिद्ध करते हुए जीटापिशियम की ही रेवती-योगतारा मानने की सलाह देते है। इस विषय मे ज्योतिर्गणित की भूमिका मे वेकटेश और दत्तात्रय केतकर के लेख, श्री रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन द्वारा सम्पादित साप्ताहिक पत्र भविष्य-चिन्तामणि के सन् १९३५ के अगस्त, सितम्बर, अक्टूबर और नवम्बर के सब अङ्क तथा मराठी केतकर-चरित्र इत्यादि के लेख पठनीय है। दोनो पक्षो की ओर से संप्रयुक्त शास्त्रार्थ की भाषा इतने बड़े-बड़े विद्वानों को शोभा नही देती।

(—अनुवादक)

विनायक पाण्डुरङ्ग खानापुरकर

इनका जन्मकाल शक १७८० है। ये जामदग्न्यगोत्रीय ऋग्वेदी महाराष्ट्र देशस्थ ब्राह्मण है। इनका स्थान सतारा जिले मे खानापुर नामक है। इन्होने प्राचीन पद्धति से सस्कृतभाषा और ज्योतिष इत्यादि का अध्ययन किया है, साथ ही साथ केरोपन्त, नाना छत्रे और रावजी मोरेश्वर देवकुले से यूरोपियन गणित और ज्योतिष का भी अध्ययन किया है। पूना की वेदशास्त्रोत्तेजक सभा मे—जिसकी स्थापना शक १७९६ मे हुई है—इनकी भारतीय ज्योतिष और सस्कृत व्याकरण की परीक्षा हुई है।

इन्होने 'वैनायकीय द्वादशाध्यायी' नामक वर्षफलोपयोगी बडा ही सरल ताजिक-ग्रन्थ बनाया है। इनके सस्कृत ग्रन्थ है कुण्डसार, अर्धकाण्ड, युक्लिड की दो पुस्तको की प्रतिज्ञाओ का श्लोकबद्ध सस्कृत अनुवाद और सिद्धान्तसार। सिद्धान्तसार मे आधुनिक मतानुसार पृथ्वी की गति इत्यादि का विवेचन किया गया है। इन्होने भास्करीय लीलावती, बीजगणित और गोलाध्याय के मराठी मे सोपपत्तिक अनुवाद किये है और इस समय गणिताध्याय का कर रहे है। ये ग्रन्थ अभी छपे नही है।

सुधाकर द्विवेदी

इनका जन्मकाल शक १७८२ चैत्र शुक्ल ४ सोमवार है। ये इस समय काशी के राजकीय सस्कृत कालेज मे गणित और ज्योतिष के मुख्य अध्यापक है। शक १८११ मे बापूदेव शास्त्री के पेशन लेने पर उनके स्थान मे इनकी नियुक्ति हुई। इसके पहिले ये वही पुस्तकालयाध्यक्ष थे। इगलिश सरकार की ओर से इन्हे महामहोपाध्याय पदवी मिली है। इनके बनाये हुये सस्कृत ग्रन्थ ये है —

(१) दीर्घवृत्तलक्षण, शक १८००—इसमे दीर्घवृत्त के नियम विस्तारपूर्वक सोपपत्तिक बतलाये है। (२) विचित्रप्रश्न सभङ्ग, शक १८०१—इसमे गणितसम्बन्धी २० कठिन प्रश्न और उनके उत्तर है। (३) वास्तव-चन्द्र-शृङ्गोन्नति-साधन, शक १८०२—इसमे लल्ल, भास्कर, ज्ञानराज, गणेश, कमलाकर और बापूदेव के शृङ्गोन्नतिसाधन के दोष दिखलाकर यूरोपीय ज्योतिषशास्त्र के अनुसार सूक्ष्म शृङ्गोन्नति-साधन बतलाया गया है। इसमे ९२ श्लोक है। (४) द्युचरचार, शक १८०४—इसमे आधुनिक यूरोपीय ज्योतिषशास्त्रानुसार ग्रहकक्षा-मार्ग का विवेचन है। (५) पिण्ड-प्रभाकर, शक १८०७—यह वास्तुविषयक ग्रन्थ है। (६) भाभ्रमरेखा निरूपण—इसमे सूचीछेदविचारपूर्वक छाया के भ्रमणमार्ग का ज्ञान कराया गया है। (७) धराभ्रम—इसमे पृथ्वी के दैनन्दिन भ्रमण का विचार है। (८) ग्रहणकरण—इसमे ग्रहण का गणित करने की रीति बतलायी है। (९) गोलीय रेखागणित। (१०) युक्लिड की ६, ११, १२ पुस्तको का सस्कृत श्लोकबद्ध अनुवाद है। (११) गणकतरङ्गिणी,

शक १८१२—इसमे भारतीय गणको का इतिहास है। पहिले यह काशी के 'पण्डित' नामक मासिक पत्र मे छपी थी, शक १८१४ मे अलग छपी है। इसमे अठपेजी साँचे के १२४ पृष्ठ है। शेष प्राय. सब ग्रन्थ छप चुके है। इन्होने शक १७९५ की अपनी 'प्रतिभाबोधक' नामक टीका तथा मलयेन्दु सूरिकृत टीकासहित यन्त्रराज का सशोधन करके उसे शक १८०४ मे छपाया है। नवीन उपपत्ति और अनेक विशेष प्रकारो से युक्त भास्करीय लीलावती शक १८०० मे छपायी है और नवीन टीकासहित भास्करीय बीजगणित भी छपाया है। अपनी 'वासनाविभूषण' नामक टीकासहित करणकुतूहल शक १८०३ मे छपाया है। शक १८१० मे इन्होने वराहमिहिर की पञ्चसिद्धान्तिका की 'पञ्च-सिद्धान्तिकाप्रकाश' नामक टीका की। बनारस सस्कृत कालेज के उस समय के प्रिंसिपल डाक्टर जी० थीबो कृत इगलिश अनुवाद और उस टीकासहित पञ्चसिद्धान्तिका सन् १८८९ मे छपी है। ये सब टीकाएँ सस्कृत मे है। इसके अतिरिक्त इन्होने कृष्णकृत छादकनिर्णय , कमलाकरकृत सिद्धान्ततत्वविवेक और लल्लकृत धीवृद्धिदतन्त्र सशोधन करके क्रमश शके १८०६, १८०७ और १८०८ मे छपाये है। इस समय ये उत्पलटीका सहित बृहत्सहिता का सशोधन करके उसे छपा रहे है। सस्कृत मे इन्होने भाषाविषयक 'भाषा-बोधक' नामक ग्रन्थ बनाया है। हिन्दी गणित की चलन-कलन (Calculas) नाम की दो पुस्तकें लिखी है और हिन्दी भाषा का व्याकरण बनाया है।

द्विवेदी जी की गणकतरङ्गिणी उपयोगी ग्रन्थ है। उससे और उनके अन्य ग्रन्थो से भारतीय और यूरोपीय गणित ज्योतिष मे उनका उत्कृष्ट ज्ञान प्रकट होता है तथापि गणकतरङ्गिणी मे कही-कही "आर्यभट ने किसी परदेशी यवन पण्डित को देवतारूप मानकर उसके कृपालव से प्राप्त की हुई भगणादि सख्याएँ गुप्त रखने के विचार से नवीन सकेतो द्वारा बतलायी है। "भास्कराचार्य ने ग्रन्थ समाप्त होने के बाद बिना उपपत्ति के ज्योत्पत्ति लिखी है, इससे अनुमान होता है कि उन्होने परदेश आये हुए किसी यवन से केवल ज्योत्पत्तिसम्बन्धी रीतियाँ सीख ली, उनकी उपपत्तियाँ नही सीखी।" इस प्रकार की उनकी निराधार कल्पनाएँ उमड आयी है।" अगरेजी नाटिकल आल्मनाक जिस फ्रेंच ग्रन्थ द्वारा बनाया जाता है उसके आधार पर सस्कृत ग्रन्थ बनाने की इनकी योग्यता है। यदि ये उसे बनाये तो अच्छा होगा।